कबीरोपासना-पद्धति



सत्य

कबीरोपासना-पद्धति

(कबीरपंथियोंके नित्यस्मरणका पूर्णविधान)

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष – 'श्रीवेंकटेश्वर' प्रेस,

बम्बई.

संस्करण : मार्च २०१८, संवत् २०७४

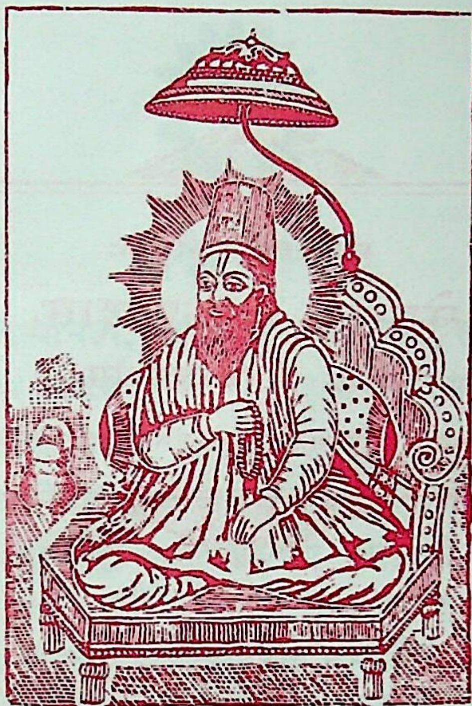
मूल्य : १८० रुपये मात्र

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass Prop: Shri Venkateshwar Press, Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013



कबीर साहब.



मुद्रक एवं प्रकाशक:

खेमराज श्रीकृष्णदास™,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.





अर्पणपत्रिका

सत्याचार्य, अतुल्य प्रौढ प्रतापवान्, सत्य-कबीर स्वरूप श्री ॥ १०८ हजूर पं० उग्रनाम साहबकी सेवामें ।

बन्दीछोड !

आपकीही कृपा कटाक्षसे आपकेही शुद्ध प्रकाशकी ज्योतिके प्रतापसे सत्य धर्मका सत्य राज फिरसे प्रभावशाली होने लगा है ।

आपके इसी प्रतापसे और दयारूपी डोरेसे खिंचा हुआ सेवक पिछले चैत्र मासमें आपकी

सेवामें पहुँचकर आपके दर्शनोंसें कृतार्थ हुआ था। उसी आनन्दके स्मरणार्थ और कृतज्ञान प्रकाशके हेतु यह लघु ग्रन्थ छपाकर आपकी सेवामें समर्पण करता हूँ।

अपना लघुसेवक जानकर स्वीकार कीजिये।

आपका दासानुदास,
मकनजी कुबेर पेन्टर.

सत्यनाम

देवनागरी और गुजराती वर्णमाला

व्यञ्जन

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ક	ખ	ગ	ઘ	ઙ	ચ	છ	જ	ઝ	ઞ
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
ટ	ઠ	ડ	ઢ	ણ	ત	થ	દ	ધ	ન
प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श
પ	ફ	બ	ભ	મ	ય	ર	લ	વ	શ
		ष	स	ह	ळ	क्ष	त्र	ज्ञ	
		ષ	સ	હ	ળ	ક્ષ	ત્ર	જ્ઞ	

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ
અ	આ	ઇ	ઈ	ઉ	ઊ	ઋ	ૠ
ऌ	ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
ઌ	ૡ	એ	ઐ	ઓ	ઔ	અં	અઃ

नोट–देवनागरी और गुजरातीकी बारा-खडी एक समानही होती हैं। संयुक्त अक्षरभी समानही हैं। देवनागरी अक्षर जाननेवालोंको गुजराती और गुजराती जाननेवालोंको देव-नागरी सीखनेमें उपयुक्त वर्णमाला सीख लेना ठीक होगा।

सत्यशब्द टकसार

श्लोक–अपारे संसारे कथमपि समासाद्य नृभवं न धर्मं यः कुर्याद्विषयसुखतृष्णातरलितः। ब्रुडन्पारावारे प्रवरमपहायप्रवहणम्, स मुख्यो-मूर्खाणामुपलमुपलब्धुं प्रयतते ॥ पद–मोरी मानु कही मूरख गँवार । है मनुष जन्म नहि बार-बार ॥ तज काम क्रोध तृष्णा अपार । पद परखि देखु टकसार ।।टे०।। श्लोक-आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः । शेषं व्याधि वियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते, जीवे वारि-तरङ्गबुद्बुदसमे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ।। पद–दुःखरूप सकल यह है प्रपंच । नहीं तीन काल सुख जानु रंच ।। ताते तजु यह सब लखि असार । पद परखि देखु ।। टेक ।। १ ।।

श्लोक—आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितम्, व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते ॥ दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते, पीत्वामोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥ पद—वरणाश्रमको अभिमान धार नहीं करत आत्माको विचार । यह मूल अविद्याको विकार । पद परखि० ॥२॥ श्लोक-स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले दत्तापि सर्वावनिर्यज्ञानां च कृतं सहस्रमखिला देवाश्च सम्पूजिताः । संसाराच्च समुद्धृता स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्योप्यसौ, यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात् ॥ पद—यह लोक लाज मरजाद फन्द । तजि कर्म धर्म सब हो स्वच्छन्द ॥ एक

नित्य अनित्यको करु विचार पद परखि दे० ॥ ३ ॥ श्लोक-वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः शुष्कं सरः सारसा निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका भ्रष्टं नृपं मंत्रिणः । पुष्पं पर्य्युषितं त्यजंति मधुपा दग्धं वनान्तं मृगाः सर्वः कार्य-वशाज्जनोऽभिरमते कस्यास्ति को वल्लभः ॥

पद–सुत मात पिता तिरिया अनूप । अति होत सुखी लखि मूढ भूप ॥ ये स्वारथके हैं दिनचार । पदपर० ॥ ४ ॥ श्लोक–यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो, यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ॥ आत्मश्रेयसि तावदेव महता कार्यः प्रयत्नो महान् संदीप्ते भवने तु कूपखनने प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥ पद–जिमि रंग पतंगको नाशमान । तिमि

यौवनको मद झूठ जान ॥ नहि बिगरत लागत तनक वार ॥ पद पर० ॥ ५ ॥ श्लोक-विदलयति कुबोधं बोधयत्यागमार्थम् सुगतिकुमतिमार्गौ पुण्यपापे व्यनक्ति ॥ अवगमयतिकृत्याकृत्य-भेदं गुरुर्यो भवजलनिधिपोतस्तं विना नास्ति कश्चित्। पद—सद्गुरु कबीर गुण गण गँभीर॥ दुख हरणहेतु धरचो शरीर ॥ निरद्रोह मोह मद निर्विकार । पद परखि देखु टकसारसार॥ ६ ॥

॥ इति ॥

प्रस्तावना

गुरुधर्मदास साहबनेसद्गुरु कबीर साहबसे पूछा हे साहेब ! आपका यह आगम ज्ञान जीवोंको कैसे समझमें आवेगा ! उनको कैसे समझाना होगा ? सो आप कहिये। तब सद्गुरु कबीर साहबने कहा था कि—

सत्य कबीर वचन

तब कबीर अस कहिये लीन्हा । ज्ञान भेद सकल कहि दीन्हा ।। धर्मदास मैं कहौं विचारी । जिहिंसे निबहे सब संसारी ॥ प्रथमे शिष्य होय जो आई । ता कहँ पान देहु तुम भाई ॥ जब देखहु तुम दृढता ज्ञाना । ताकहँ कहहु शब्द प्रमाना ॥ शब्द मांहिं जब निश्चय आवे । ता कहँ ज्ञान अगाध सुनावे ॥

यहि मतितो हम तुमको दीन्हा। विरला शिष्य कोइ पावे चीन्हा।। धर्मदास तुम कहो सन्देशा ।

जो जस जीव ताहि उपदेशा ॥ बालक सम जाकर है ज्ञाना । तासों कहहु बचन प्रमाना ॥

तुम कहँ शब्द दीन्हा टकसारा । सो हंसनको कहो पुकारा ॥ शब्द सारका सुमिरन करिहैं । सहजे सत्यलोक निस्तरिहैं ॥ सुमिरनका बल ऐसा होई । कर्म काट सब पलमहँ खोई ॥

अमरमूल ॥

इसी प्रकारसे सर्व ग्रन्थोंमें सद्गुरुने गुरुधर्मदास साहबसे कहा है । जबतक प्रथम टकसार और सुमिरन में जीवकी प्रवृति न होगी तबतक गुरुमतका पाना वैसे ही कठिन है जैसे एक बालकका पहाड उठाना ॥

यद्यपि कबीर पंथमें सद्गुरु कबीर साहबकी दया और गुरुधर्मदाससाहबकी कृपासे ग्रन्थोंकी कमती नहीं है । धर्म तत्त्वके सब विषयके ग्रन्थ अनन्त भरे पड़े हैं परन्तु समयके प्रभावसे वे ग्रन्थ ऐसे लुप्त हो गये हैं

कि, उनसे श्रद्धालुओंको लाभ होना तो अलग रहा उन्हें उनका दर्शन तक नहीं होता था। परंतु धन्य है पं० श्रीहजूर साहबको जिनके उग्रप्रकाशमें अब सत्य पंथके पुस्तकोंका आविर्भाव होने लगा है। यह पुस्तक भी पं० श्रीहजूर साहबकी ही कृपाका फल है। इस पुस्तकमें क्या है? सो ग्रन्थ देखनेसे ही प्रगट हो जायेगा। यद्यपि इस ग्रन्थके विषय सत्य धर्म ग्रन्थोंहीके हैं तथापि इन सब विषयोंका भिन्न २ ग्रन्थोंसे और स्तोत्रोंको भिन्न २ स्थानोंमें संग्रह करनेमें श्रीयुगात्मानंदजी कबीरपंथी भारत पथिकने पूर्ण परिश्रम उठाया है। छपते समय प्रूफ आदिके देखने विषयोंके क्रमस्थित करने आदिमें अपना बहुत कुछ समय लगायके मुझे सहायता दी है, इस कारण वे मेरे तथा इस ग्रंथसे लाभ उठानेवाले सर्व सज्जनों द्वारा धन्यवादके पात्र हैं।

यदि इनहींके समान और २ महाशय गण भी मान बड़ाई और रागद्वेष छोड़कर प्रयत्न करेंगे तो स्वधर्मोन्नतिमें किसी प्रकारका संदेह नहीं रहेगा ।

१ इसके प्रथम कबीर स्मृति, कबीर मुक्तासार संग्रह गुजराती अक्षरोंमें और कबीरमन्शूर देवनागरी अक्षरोंसे सद्गुरुकी दयासे प्रगट हो चुका है जिसमेंसे कबीर स्तुति तो धर्मार्थ वितरित होगई, अब उसकी प्रति शेष नहीं है परन्तु शेष दोनों पुस्तकें हैं ।

यद्यपि कबीरपंथकी पुस्तकें सर्व हिंदी भाषा और देवनागरी अक्षरोंमें हैं परंतु आजकल प्रायः देवनागरी और गुजराती दोनों अक्षरोंमें पुस्तकें प्रकाशित होने लगी हैं । जिससे जो पुस्तकें गुजराती अक्षरोंमें छपी हैं उनको केवल देवनागरी अक्षर जाननेवाले नहीं बांच सकते और जो पुस्तकें देवनागरीमें छपी हैं उनको गुजरातीवाले नहीं बांच सकते ॥

यद्यपि देवनागरी और गुजराती वर्णमाला की बारा-खड़ी और संयुक्त अक्षरोंकी बनावट सब एक समान ही है तथापि अक्षरोंके स्वरूपमें थोडासा भेद है, इस कारण मैंने विचार किया है कि, इस पुस्तकमें दोनों (गुजराती और देव-नागरी) अक्षरों की वर्णमाला दे दूं जिससे हमारे स्वधर्म-बन्धुओंको छपी हुई सर्व पुस्तकोंके पाठका लाभ प्राप्त हो।

मकनजी कुबेर पेन्टर

अनुक्रमणिका



प्रथम विश्राम

विषय	पृष्ठ.
वंशनामानि	१
मङ्गलाचरण	२
अनुबंध वर्णन	३
प्रवेश	५

द्वितीय विश्राम

प्रातःकालिक कर्म	११
ध्यानका श्लोक	१३
मलमूत्र त्यागनविधि उपवीत	१७
पात्र	१८
दातौनविधि	२५
निषिद्ध दातौन	२७
दातौन निषेध	२९

विषय.	पृष्ठ.
स्नान विधि	३१
तेल लगानेकी विधि और गुण	३२
स्नान वर्जित	३५
वस्त्र धारण	३७
तिलक लगानेकी विधि	३९
तिलकके द्वादश स्थान तिलकके पश्चात् कर्तव्य (पंक्ति १ से)	४१

तृतीय विश्राम

प्रभातसन्ध्या (उपासना)	४८
आसन	४९
सिद्धासन	४९
सहज आसन	५०

चतुर्थ विश्राम

जानने योग्य आवश्यक बात	५४
चतुर्दश वर्ग	५६

विषय. पृष्ठ.

पञ्चम विश्राम

भोजन विधि भक्ष्याभक्ष्य पदार्थ निर्णय ६२
मादक पदार्थ ७०
मांस ७७
माखन (पंक्ति ४ से) ९२
मधु ९३
नवीन नवनीतगुण ९४
भोजन बनानेका स्थान ९४
वर्तन (पंक्ति ८ से) ९६
जल (पंक्ति १४ से) ९६
अमानिया करना पंक्ति १५ से ९७
गृहस्थोंको पांच पाप (पंक्ति १) ९८
पंचपाप निवारण उपाय १००
अतिथि सत्कार १००
भोजन करनेकी विधि १०५
मिताहार १०९

विषय.	पृष्ठ.
आहारमें सदा ध्यान रखने योग्य ४ बातें	१०९
भंडारीके ध्यान देने योग्य चार बातें	१११
भोजनके समय ध्यान देने योग्य २६ बातें	१११
भोजनके पूर्व भक्षणीय	११७
भोजनका क्रम	११८
जल	११९
नित्य कैसा भोजन करना	१२०

षष्ठ विश्राम

भोजनके पश्चात्साधु और गृहस्थका कर्तव्य	१२२
गृहस्थको संत सेवा परम धर्म	१२३
साधुको भीख मांगना निषेध	१२५
भिक्षाके विषयमें सद्गुरुकी आज्ञा	१२८
मध्याह्न सन्ध्या विधि	१२९

सप्तम विश्राम

सायं सन्ध्याविधि	१३२
सत्संग माहात्म्य	१३४

विषय	पृष्ठ
दृष्टान्त	१३८
सत्संगके तीन प्रकार	१५१

अष्टम विश्राम

सूचना	१५७
सुमिरण रत्नाकर	१५८
सुमिरण आदि गायत्री	१५८
प्रभात गायत्री	१५९
मध्याह्न गायत्री	१६०
सन्ध्या गायत्री	१६०
मध्याह्न गायत्री	१६१
सोवनेका	१६१
प्रात:उठनेका	१६२
दिशा जानेका	१६३
मलद्वार धोनेका	१६३
जल पात्रका	१६३
तूम्बा प्रक्षालनेका	१६४

विषय.	पृष्ठ.
हाथ मटिआवनका	१६४
दातौन तोरनेका	१६४
दातौन करनेका	१६५
दातौन फारनेका	१६५
मुख धोनेका	१६५
अमरी उतारनेका	१६६
जलमें पैठनेका	१६६
स्नान करनेका	१६६
स्नान करके बन्दगीका	१६७
कौपीन पहिरनेका	१६७
जल भरनेका	१६८
जल छाननेका	१६८
तिलक करनेका	१६८
दर्पण देखनेका	१६९
चरणामृत महाप्रसाद पानेका	१६९
चरणामृत देनेका	१६९

विषय	पृष्ठ०
महाप्रसाद देनेका	१७०
महाप्रसाद पानेका	१७०
चरणामृत पानेका	१७१
जल पीनेका	१७१
घर बुहारनेका	१७२
घर पोतनेका	१७२
चूल्हेमें अग्नि बारनेका	१७२
रसोई बनानेका	१७२
थारी पारस करनेका	१७३
प्रसाद अर्पनेका	१७३
अचवन करनेका	१७४
पाकर बन्दगी करनेका	१७४
सुपारी मोरनेका	१७४
पान पानेका	१७५
टोपी लगानेका	१७५

विषय.	पृष्ठ
दीपक बारनेका	१७५
आसन करनेका	१७६
कमर कसनेका	१७६
रास्ता चलनेका	१७६
सात शिकारीका	१७७

नवमविश्राम

श्री गुरु सहस्रनाम १८०

दशमविश्राम

स्तुतिरत्नाकर	१९६
सन्ध्यावंदन स्तुति	१९६
कबीरं भानं भाकर निकरज्ञान	१९६
कबीर भानु वियोग सवैया	१९७
विनय पत्रिका	२०४
सुरति दूतिप्रति	२०५

विषय.	पृष्ठ
सन्ध्या साखी	२०५
विज्ञानस्तोत्र	२१०
सत्तसत्तके नामसों सतसागर भरा	२१०
दयासागर स्तुति	२१५
चितावनी	२१७
यमने जाय पुकारिया धर्मराय दरबार	२१७
ज्ञान गूदरी	२२१
पिछले रातको बिरह वर्णन	२२५
प्रातः सन्ध्या साखी	२२५
प्रभाती स्तुति	२३८
कबीरं रविं ज्ञान गो मुक्ति हस्ते	२३८
कबीर भानु उदय सवैया	२४१
सत्य कबीरको और मन राजाको झूठ, दोनोंका युद्ध वर्णन	२४२
मध्याह्न सन्ध्या साखी	२४९
मध्याह्न दिनकी स्तुति	२५४
प्रभुं परं परायणं समस्त ज्ञान सागरं	२५४

विषय	पृष्ठ
मध्याह्न संध्या	२५८
स्तोत्र	२६६
सतगुरु शरणं पंकज चरणं मनवच कर्म सदा गहियं	२६६
दिनबन्धु करुणामय सागर	२६९
गुरु ध्यान सार भज बारबार	२७१
साव गुरुज्ञानी, समरथध्यानी	२७३
नमो शब्दरूपी सोहै जक्त करता	२७४
जै जै कबीर धीर हरन सकल कालपीर	२७७
नमो आदिब्रह्मंअरूपं अनामं	२७८
कबीरसृष्टिकारणं स्थूलसूक्ष्म धारणं	२८२
नत्वातं पदपंकजं सद्गुरुं प्रनतपालं दयालं	२८३
नमामि कलातीत कामादि रहितं	२८६
नमामि सर्व संत जिनको मनाऊं	२८९
नमस्कारं बार बार सुन हमारं सतगुरं	२९३
जय दीन दयाल कृपाल हितं	२९६

विषय.	पृष्ठ.
जै जै भवतारण भर्म निवारण हंस	३००
भो कबीरहरण पीर धीर बुद्धि धारण	३०१
विभुं सिन्धु बुद्धे विमलवचसा शांति बरदं	३०३
नमामि सर्व लायकं सुभक्ति मुक्तिदायकं	३०४
कृपालं चित्त नन्दनं	३०६
परमं सदयं भवताप हरं	३०८
विभुं व्यापकं शुद्ध धीरं गभीरं	३०९
जयति जय धर्मधुर धरि कबीर गुरु	३१२
जयति जय कंज पर्णज	२१३
जय धीर वीर कबीर भवजल	३१५
कबीर सांबराजस्तोत्र (संस्कृत)	३१६
गुरुस्तुति (संस्कृत)	३२१
वंशगुरुस्तुति सवैया	३२७
चरणारविन्दं सद्गुरुं कृपालं नामं कबीरं	३३६
पाक नामाष्टक	३३८
भो बयाल जगत पाल	३३८

विषय.	पृष्ठ
प्रकट नामाष्टकम्	३४०
हो कृपाल दीन पाल पुष्ट काल भंजनम्	३४०
उग्रनामस्तुतिपंचक	३४३
जय उग्रनाम अकाम मंगल धाम	३४३
कबीर चालीसा	३४४
कबीर पञ्चाशिका	३५३

एकादशविश्राम

संज्ञा आरती नाम तुम्हारी	३६५
ज्ञान आरती अमृत बानी	३६६
कैसे मैं आरती करौं तुम्हारी	३६६
अखंड आरती खंड न होई	३६७
मंगल रूप आरती साजे	३६७
आरती सत् कबीर तुम्हारी	३६८
आरती कीजै बन्दी छोर समरत्थकी	३६९
आरती करहिं धनि धर्मादासा	३७०

विषय.	पृष्ठ.
ऐसी आरती देऊँ लखाई	३७०
आरती नाम निरंतर भावे	३७१
आरती सतनामकी कीजै	३७२
जाघर आरति दास करत हैं	३७२
मंगलरूप आरति होई	३७३
आरति सतगुरु साहेब कबीर	३७४
संझा आरती कीजे गुरु सेवा	३७५
संझा आरती सुकृत कीना	३७५
संझा आरति करो विचारी	३७६
संझा आरति सुकृति संजोई	"
जय जय सत्य कबीर	३७७
जय जय श्री गुरुदेव	३७८
संझा आपनी कीजे सेवा	३७९

विषय	पृष्ठ
आरति निज नाम तुम्हारी	३८०
संज्ञा आरति सुमरण सोई	३८०
आरति परम पुरुष निजदेवा	३८१
ऐसि आरति बुरे निसाना	३८२
ऐसी आरति गुरुहि लखाई	३८३
कैसे मैं आरति करौ तुम्हारी	३८४
आरती सद्गुरु करौं तुम्हारी	३८५
सिरपर राखिय सोई परमगुरुदेवा	३८५
आरति कीजे आतम पूजा	३८६
सत स्वरूपकी आरति कीजे	३८७
आरति कीजै अन्न ब्रह्मकी	३८९
आरति अन्नदेव तुम्हारी	३८९
विनय रत्नावली	३९१
दोहा सवैया	३९१

विषय	पृष्ठ.
अर्जनामाप्रारंभ .	३९९
करतहों पुकार मेरे तुम ही हौ अधार	३९९
सतगुरु मिहरवान कीजै सहाय	४०३
सतगुरुमिहरवान कीजै करम	४१०
कवित्त	४१२
प्रभुजी तुम बिन (अष्टपदी)	४१३
तुम जाहु हो दयाल सकलो	४१४
हू सेवक अजान	४१५
सुख साहेब सुखरूप	४१६
ज्ञान स्वरूप अनुपम पूरन	४१८
आपेही आप गोसाई सुसाहब	४२०
कवित्त	४२४
दोहा, सोरठा, कवित्त	४२५
गुणवंद निधान सर्वज्ञ प्रभुं	४२६

विषय,	पृष्ठ.
गुरुजी कृपालो बड़ो तूं दयालो	४२७
विनयशब्दावली प्रारंभ	४२९
देखो अति सुंदर छबिनीकी	४२९
शरण तुम्हारी आयोजी गुरु	४३०
हो प्रभु दीन जनन प्रति पालक	४३०
पतित पावनको सुंदर ध्याना	४३०
कहूँलो कहौ गुरुपद प्रताप	४३१
तेरा दिल चाहे उधरे देख मैं	४३१
तेरी खुशी देख या न देख	४३२
मेरी प्रीतमें निवाहन हारे	४३३
धन सतगुरु तुमही बलहारी	४३४
मम बोहित तुम खेवनारा	४३४
तुमरिहि दरसको बनाहूँ	४३५
मैं लाचारके तुम रखवारी	४३५

विषय	पृष्ठ.
परचो है कष्ट अति भारी	४३६
तुम चरणाम्बुज विशद प्रयागे	४३६
तुम्हारे नामका भरोसो भारी	४३७
कैसे रहों जगमाहीं करुणायतन	४३८
क्यों न जपो मन लाई	४३९
गुरुते और नहिं कोई	४४०
बक बक्र सब खैराने	४४०
आप न बूझ कहै और बुझावे	४४१
गुरुजी तेरो भजन	४४२
मेरो मन वैरागी आज	४४२
होय रहु साहब शरण	४४३
भजुरे मन सद्गुरु कृपालको नाम	४४३
जायके सनमसे कहियो	३३४
प्रभु विनु दुख नरकको कौन हरे	४४४

विषय.	पृष्ठ
सुनिये दयानिधि अरज दासकी	४४५
तुम बिन समरथ को रखवारा	४४५
याहिसे प्रभु नाम दातारा	४४६
तुम बिनु अरज करौ केहि आगे	४४७
कृपा दृष्टि कब हेरो गुरुजी	४४८
कभी तोभी दरस दिखाओ गुरुजी	४४८
लीलाप्रभु तुम्हारी कही न जाय	४४९
मिले हैं दयाल कृपारथ भय हम	४४९
मन हर लीन्हों सत्य कबीर	४४९
मन हर लीन्हों दीन दयाल	४४९
गुनी अगुनी हौ तिहारो	४४९
हमारी लाज तुम्हारी हाथ	४५१
तुम बिनु कौन हमारो देश	४५१
गुरु तेरे दर्शन की बलिहारी	४५२

विषय.	पृष्ठ
तुम बिन कौन खबरिया मोरि	४५२
तुम हौ सतगुरु दाता मेरे	४५२
सबके जनैयाको कहा जनैये	४५३
बेगि खबरिया प्रभु लीजै	४५४
अपने हम भोगे निज भोग	४५५
करुणामय नाम तिहारो	४५५
दीननके हो दयाल दया	४५५
आराधना (गद्यमय)	५४६

इति अनुक्रमणिका समाप्त



सद्गुरुभ्यो नमः

श्री कबीर-धर्मदासाय नमः

सत्य सुकृत, आदि अदली अजर अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योगसन्तान, चर गुरु, धनी धर्मदास, वंश ब्यालीसकी दया ॥ मुक्तामनि नाम, चूरामणि नाम सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रमोधगुरुवाला पीर, केवलनाम, अमोल नाम सुरति स्नेही नाम, हक्कनाम, पाकनाम, प्रगटनाम, धीर्यनाम, पं० श्री उग्रनाम, साहब, पं० श्री दया नाम, साहबकी दया, सर्वसन्त महन्तकी दया।

मंगलाचरण



दोहा

सद्गुरु चरण वंदन करूँ,
बंदूं गुरु धर्मदास।
उग्र आचार्य्य बन्द बूं,
सत्य दया विश्वास ॥ १ ॥
गुरुके चरण बन्दन किये,
मङ्गल सब विधि काज।
गुरु उपासना वर्ण वूं,
राखो सद्गुरु लाज ॥ २ ॥
यू० क० पं० भा० पं०



अथ कबीरोपासनापद्धति



प्रथम विश्राम

अनुबन्ध वर्णन

जिसके द्वारा स्वेष्टदेवको अपने हृदयमें धारण करनेकी शक्ति होती है, उसे कहते हैं उपासना उस

उपासनाको प्राप्त करनेका जो मार्ग, उसे कहते हैं उपासनापद्धति और सद्गुरु कबीर साहबकी भक्तिकी जावे जिस मार्गसे उसे कहिये "कबीरोपासनापद्धति"

इस ग्रन्थमें सद्गुरु कबीर साहबको प्राप्त होनेके उपासनाके मार्गका वर्णन है। स्वात्माके कल्याणकी कामनावाले सर्व मनुष्योंको सद्गुरुकी प्राप्तिकी आवश्यकता है, इस प्रकारसे सामान्यतः मनुष्यमात्र इस ग्रन्थके अधिकारी हैं तथापि जो लोग सद्गुरु कबीरसाहबके वंशको अपना इष्टदेव मानते हैं और कबीरपन्थी कहलाते हैं, कबीरसाहिबनिमित आचार्य गुरु धर्मदाससाहबके वंशको अपना आचार्य मानते हैं वे इस ग्रन्थके विशेष रूपसे अधिकारी हैं। इस ग्रन्थ द्वारा नित्य नैमित्तिक अवश्य कर्तव्यका ज्ञान होकर उसके आचरण करनेसे क्या फल प्राप्त होता है उन सबका ज्ञान प्राप्त होगा।

ग्रन्थ और विषयका प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है, अधिकारी और फलका प्राप्य प्रापक भाव सम्बन्ध है, अधिकारी और विचारका, कर्तृ-कर्तव्यभाव सम्बन्ध है. ग्रन्थका और स्वनित्यनैमित्तिक कर्तव्य ज्ञानका जन्य जनकभाव संबन्ध है। इसी प्रकार अनेक संबन्ध हो सकते हैं.

प्रवेश.

लौकिक पारलौकिक अर्थात् शारीरिक और आत्मिक सर्व प्रकारके सुखोंके प्राप्त करनेका मूल साधन आचार अर्थात् टकसार है।

यद्यपि आत्मिक सत्य सुखकी प्राप्ति पारखसे होती है. तथापि पारख प्राप्त करनेके हेतु सद्गुरुकी विशेष कृपा अपेक्षित है, परन्तु सद्गुरुकी कृपा उसीको मिलती है जिसको सद्गुरुमें अटल श्रद्धा औरविश्वास

होता है, श्रद्धाभी उसीको प्राप्त होती है जिसकी सद्गुरुके चरणोंमें अटल भक्ति होती है, भक्ति उसी अन्तःकरणमें विराजती है, जिसमें तमोगुणी आसुरी सम्पत्तिका वास न हो, तमोगुणी आसुरी संपत्तिका नाम पाप है इसीको मल भी कहते हैं।

इससे यह सिद्ध हुआ कि, प्रथम अन्तःकरणसे तमोगुणी आसुरी संपत्ति अर्थात् मलका दूर करना अत्यन्त आवश्यक है। और अन्तःकरणके मलको दूर करनेके लिये नित्य नैमित्तिक कर्तव्यकी अत्यन्त आवश्यकता है इसको टकसार भी कहते हैं। और इसीका नाम आचार है।

इसी प्रकारसे लौकिक सुखकी प्राप्ति भी उसीको होती है. जिसका व्यवहार आचार शुद्ध होता है, जिसका शरीर आरोग्य होता है उसीको शारीरिक सुख प्राप्त

होता है, शरीर आरोग्य रखनेके लिये नित्य नैमित्तिक व्यवहारको नियमपूर्वक करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है; शरीरकी आरोग्यतासेही लौकिक पारलौकिक सर्व साधन हो सकता है, चित्तकीस्वस्थतासेही अन्तःकरण की शुद्धताद्वारा सत्यज्ञान प्राप्त होता है. सो चित्तकी स्वस्थता तभी प्राप्त होती है जब यह प्राणी अपने शारीरिक और मानसिक कर्मोंको नियमसे रखता है उपरोक्त शरीर व अन्तःकरणकी आरोग्यता और शुद्धताको प्राप्त करनेके लिये जो कर्तव्य किया जाय उसीको आचार कहते हैं। यही आचार धर्मकी प्रथम सीढी होनेके कारण साक्षात् धर्मरूपसे माना जाता है। अब इसी आचारका स्वरूप रूपान्तरको प्राप्त होकर इसका लक्षण यह होता है कि—

'देशदेशके महानुभाव ईश्वरस्वरूप महात्मागणोंने अज्ञानी जीवोंके कल्याणके अर्थ जो निश्चय, नियम

और कर्म्मविधान अर्थात् कर्त्तव्य वर्णन किया और बतलाया है, उसे धर्म कहते हैं।'

इसी प्रकार उन्होंने जिन कर्मोंके करनेको निषेध किया है उन्हें "अनाचार अथवा अधर्म कहते हैं।"

उपरोक्त प्रकारसे दैवी संपत्ति करि युक्त ईश्वर स्वरूप महात्माओंने जो कुछ विधान किया है, देश काल और गुणका विचार कर प्राणीके सुख प्राप्तिके लिये वर्णन किया है. जो मनुष्य उन नियम बन्धनोंको तोडकर चलता है अथवा अन्य देशियों परधर्मियोंके नियमको बरतता है वह अवश्य आधि व्याधिसे ग्रस्त हो दुःखका भागी होता है और बारम्बार जन्म मरणको प्राप्त हो चौरासी भोगता है।

क्योंकि प्राणिमात्र अपने पूर्वके गुणकर्मानुसार अमुक देश और लोकमें जन्म लेते हैं जन्म लेनेके

पश्चात् सहवास, संगति और बुद्धि, नीति के अनुसार, बहुत करके अपने लोकके जैसा ही होता है उसमें भी यदि उसके वर्ण आदिकीऽव्यवस्था बदल. दूसरे वर्ण और धर्ममें उसको प्रवेश कराया जावे तो, उससे जन्मसे पड़ा हुआ स्वभाव सर्वथाही छूटना तो असम्भव है और नवीन धर्मका सर्व नियम धारण होना भी असंभव है।

इस हेतु स्वधर्मकी ही श्रद्धा सतेज होनी चाहिये। स्वधर्मका ही आचरण करके मनुष्य परलोक और इस लोकका सच्चा सुख प्राप्त कर सकता है।

स्वधर्माचरणसेही आयु स्वधर्माचरणसेही सन्तान स्वधर्माचरणसे ही अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होता है।

धर्माचरणके प्रथम पगको आचार कहते हैं। शास्त्र और लौकिक बुद्धिसे धर्माचार तीन प्रकारका है।

१ अपनीं ओर अपना कर्तव्य ॥
२ दूसरोंके लिये अपना कर्तव्य ॥
३ ईश्वरके लिये अपना कर्तव्य ॥

इन तीनोंका परस्पर ऐसा ओत प्रोत सम्बन्ध है कि, कोई भी इन तीनोंके बिना नहीं हैं ।

शारीरिक धर्म. आत्मिक धर्म. सामाजिक धर्म, गुरु धर्म, ग्राम धर्म, देश धर्म, राज धर्म, आदि सब ही इन्हींका रूपान्तर हैं, विवेकीको सर्व विचारपूर्वक ग्रहण करना उचित है ।

इस ग्रन्थमें जो स्वधर्मपद्धतिका वर्णन किया जावेगा उसके आचरणसे सर्व ही धर्मका आचरण हो जावेगा । इसलिये सर्व साधारणके लाभार्थ अत्यन्त सरल भाषा में ग्रन्थ लिखा जावेगा ।

इति कबीरोपासनापद्धति प्रथमभागान्तर्गत धर्मव्याख्या और अनुबन्धवर्णन नाम प्रथमो विश्रामः ।।५।।

अथ द्वितीय विश्राम २.



नित्यकर्तव्यवर्णन

प्रातःकालिक कर्म

(प्रातःउत्थान)

स्वस्थ (आरोग्य) मनुष्य अपने शरीर, आयु धर्म अर्थात् लौकिक पारलौकिक सर्व कर्तव्योंको पूर्ण कर सर्व प्रकार के सुखको प्राप्त करनेके लिये और स्वधर्मकी रक्षाके लिये, ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर, अपने इष्टदेवका स्मरण करे. सो रात्रिके पिछले याम अर्थात् पहरके तीसरे मुहूर्तको ब्राह्ममुहूर्त जानना अर्थात साढे चार बजे रात्रिसे ब्राह्ममुहूर्त प्रारम्भ होता है। इसी समयमें मनुष्यको नित्य उठना चाहिये। इस समयमें उठनेका अभ्यास रखनेसे शरीरकी आरो-

ग्यता बढती है, दिनमें बहुत अवकाश मिलनेसे अपने काम काजमें सिद्धि पाकर संपत्ति तथा श्रेयकी प्राप्ति होती है। और स्वधर्मके नियमोंको भली प्रकार पालनेका अवसर मिलता है। जो इस समयमें नहीं उठता है उसके लिये, रत्नावलिकारका वचन है कि--

"ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी।" रत्नावल्याम्।

अर्थ-ब्राह्म मुहूर्तकी निद्रा पुण्यक्षय करनेवाली है।

साखी

पांच घडी बाकी रहे, पिछली पहरीरात।
भोर तहांतक कहत, हैं, सूरज जब उगिजात॥१॥
भोरहि उठि हरनाम ले, काम काज ले ठान।
ऐसे घर दारिद्र हो, झूठा वेद पुरान॥ २॥

प्रात दिवा सोया करे, ऐसी जिसकी बान ।
उसको सुखसम्पति मिले, झूठा वेद पुरान॥१३॥

इसप्रकार अतिशय सहज और अत्यन्त लाभकारक ब्राह्ममुहूर्तमें उठनेकी आदत डालना प्रथम कर्तव्य है।

उपरोक्त ब्राह्ममुहूर्त (साढे चार बजे) में उठकर सर्व विघ्नोंकी शान्तिके लिये सद्गुरुका स्मरण करे । प्रथम सद्गुरुके स्वरूपके ध्यानका श्लोक पढकर उसके अर्थका भी चिन्तन करें ।

श्लोक ध्यान

ध्यायेत् सद्गुरुं श्वेतरूपममलम् श्वेतांबरं शोभितम् । कर्णौकुण्डलश्वेतशुभ्रमुकुटम् हीरामणीमंडितम् ॥ नानामालमुक्तादिशोभितगला,

---

इसी विषयके अंग्रेजीमें कहावत है कि—

Early to bed and early to rise,
Makes the Man healthy wealthe andwise

पद्मासने सुस्थितम् । दयाब्धिधीरसुप्रसन्नवदनम्, सद्गुरुं तन्नमामि ॥१॥ द्वै पदम् द्वैभुजम् प्रसन्नवदनम् द्वै नेत्रम् दयालम् । सेली कंठ गाल ऊर्ध्वतिलकम्, श्वेताम्बरीमेखला ॥ चक्रांकित शिर टोप रत्नखचितम् द्वै पञ्चतारांधरं वंदेत् सद्गुरु योग दंड सहितम् कबीरं, करुणामयम् ॥ २ ॥

और आंख खुलनेपर बायां अथवा दहिना जो स्वर चलता हो उसी हाथको देखकर, मुखपर वही हाथ फेरता हुआ उठे अथवा सुषुम्ना अर्थात् दोनोंस्वर चलते हों तो दोनों हाथोंको देखे और मुखपर फेरे ।

यदि मलमूत्रका वेग न आया हो तो थोडी देरतक बिछावनेपर ही बैठा २ *"रविज्ञानगोमुक्तिहस्त"

* देखो इसी ग्रन्थसे स्तुतिरत्नाकर नामक विश्रामको उसीमें ये स्तुति मिलेगी वहांसे स्मरण करलो ।

इस स्तुतिको पाठ करे। यदि इसके पाठ कर लेनेपर भी मलका वेग न आया हो तो "कबीर भानु उदय सवया" का भी पाठ करे। परन्तु इसके पढनेके लालचसे मलमूत्रकेवेगको कदापि न रोके। मलके और मूत्रके वेगको रोकने वालेको अनेक रोग हो जाते हैं जिससे सब भजन स्मरण में विघ्न पड़ता है।

मलके वेगको रोकनेसे पेटमें गुडगुडाहट शब्द शूल तथा गुदामें करतनेकीसी पीडा, मलरोध, बहुत डकारोंका आना, मुखमार्गसे मलका निकलना आदि अनेक विकार होते हैं।

और मूत्रके रोकनेसे मूत्र मार्गमें शूल, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकशूल, शरीरका नवजाना, जंघाकी जड़में पीडा आदि अनेक घातक रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

मलमूत्रके वेगको जैसे बलात्कारसे अटकनेसे रोगकी उत्पत्ति होती है इसी प्रकार वेग आये विना

बलपूर्वक मल मूत्रके त्याग करनेसे अनेक दुःख प्राप्त होते हैं। इस वास्तेबुद्धिमानको उचित है कि, जिस समय मल मूत्रका वेग आवे उसी समय बिछावन छोडकर जो स्वर चलता हो प्रथम वही पग उठाकर (प्रातः*उठनेका सुमिरण पढता हुआ) बिछावनको छोडे, यदि शयन घरमें गुरु आचार्य अथवा किसी भी महानुभावका चित्र आदि हो तो उसका अथवा अपने दोनों हाथों तथा गृहस्थ अपना और अपनी स्त्रीका मुख देखकर घरसे बाहर निकले।

घरसे बाहर निकलनेपर प्रथम २ शुभ और उत्तम पदार्थोंको देखना चाहिये। माता,पिता, गुरु, आचार्य अथवा दही, घृत, दर्पण सफेद सरसों, वेल, गोरोचन

* सर्व प्रकारका सुमिरण एकत्रही अष्टम विश्रामसे मुखाग्रकर लेना चाहियें मखाग्र करनेकेही सुभीतासे एकत्रही रक्खा है ।

फूलमला, घोडा, हाथी, गौ, साधु, सन्त, ज्ञानी, हलदी और बांस वा दूब इनको देख इनका दर्शन और स्पर्श करना शुभ है। इसे लिखनेका यह प्रयोजन है कि, दुष्ट स्त्री, पुरुष, कुत्ता, बिल्ली व्याघ्र आदि हिंसक और दुष्ट प्राणियोंको न देखे।

सोके उठनेपर चित्त शांत और स्वस्थ होता है इस कारण प्रथम जैसे पदार्थके ऊपर दृष्टि पडती है वृत्ति समस्त दिन वैसी ही बनी रहती है। इस कारण ऐसे पदार्थ और मनुष्यका प्रथम दर्शन करना चाहिये कि, जिससे चित्तमें प्रसन्नता बनी रहे और समस्तदिनका लौकिक पारलौकिक कार्य आनन्दपूर्वक समाप्त हो

मल मूत्र त्यागन विधि

(उपवीत)

उपवीत धारण करनेवाले अर्थात जिनके गलेमें

जनेऊ है वे जनेऊको इस प्रकार धारण करें।

यज्ञोपवीतको मूत्रके समय बायें कानमें और मल त्यागनेके समय दायें कानमें धारण करना चाहिये। और मैथुनके समय ज्योंका त्यों रहने देवे। अथवा अनेक मत और देश देशकी परिपाटी है, इस कारण जिस देशमें रहता हो वहांहीके सदाचारी विद्वान् मनुष्योंकीरीति देखकर धारण करे।

(पात्र)

मल परित्यागके पश्चात् गुदादि शुद्ध करनेके लिये जल लेजानेका पात्र इतना बडा होना चाहिये कि, जिसमें कमसे कम पक्का सवासेर जल समाकरता हो उस पात्रमें जल लेकर यदि ग्राममें हो तो ग्रामसे बाहर जितनी दूर बलवान् पुरुषके हाथका तीर जा

सकता है अर्थात् कमसे कम आठसौ गजकी दूरी पर जाकर, एकान्त स्थानमें शौच फिरनेको बैठे।

मलमूत्र खडे २ कदापि भूलकरभी त्याग न करे. क्योंकि, ऐसे करनेसे मल मूत्रका छीटा अवश्य ही पैरोंपर पडेगा धूप अथवा साधारण मार्ग तथा भय वाले स्थानमें शौच करनेको न बैठे।

शौच करनेके प्रथमही जलके साथ २ मिट्टीका ढेला भी ले जावे।

जलपात्रको शौच फिरते समय यदि हाथमें लिये रहे तो वह जलमूत्रके समान होजाता है. इसकारण सन्मुख कुछ दूर पर रखकर शौचको बैठे।

शौच फिरनेके समय आधीरातसे दिनतक उत्तर मुख और आधे दिनसे आधीरात तक दक्षिणमुख अथवा प्रातःकालसे दोपहर दिन तक पश्चिम मुख

और दोपहरसे सार्वकालतक पूर्वमुख मध्याह्नमें उत्तर मुख और रातको दक्षिणमुख बैठे ।

हलसे जुते हुए खेतमें, जलमें ईंट आदिसे बनाये हुये अग्निके स्थानमें, पर्वतपर, पुराने देवस्थानमें, बांबीमें, भस्म तथा गौओंके स्थानमें 'जीवों सहित गडहामें. नदीके किनारे, पर्वतकेशिखरमें, चलता हुआ, खडा हुआ, अग्नि, ब्राह्मण, (साधु, गुरु.) सूर्य, जल और गौको देखता हुआ, कभी भी मल-मूत्रका त्याग न करे ।

दिनमें तथा दोनों सन्ध्याओंमें उत्तरमुख और रात्रिमें दक्षिणमुख करके मलका त्याग करे । रात्रिके समय छायामें अथवा अन्धकारमें दिनमें छाया तथा कुहिरआदिके अन्धकारमें दिशा विशेषकाज्ञान न होने

पर चोर व्याघ्र आदिसे उत्पन्न प्राण नाशके भयके समय इच्छा पूर्वक मुख करके मलमूत्रका त्याग करे।

काष्ठ, ढेला, फूस और सूखे पत्तों आदिसे भूमिको ढांकिके, मौन हो शरीरको वस्त्र आदिसे लपेटे हुए शिरमें वस्त्र बांधिके मलका त्याग करे।

शहरमें वास करनेवालोंको यथा प्राप्त सण्डास आदिकोंके हेतु कोई विशेष नियम नहीं है उनको जैसा प्राप्त हो वैसेही करना परन्तु जल तो सवा सेरसे कम न लेना।

अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, जल, ब्राह्मण, (साधु, गुरु) गौ, पवन इनके सन्मुख मलमूत्र त्याग करनेसे मनुष्यकी बुद्धिका नाश होता है।

उपरोक्त रीतिसे मलत्याग करता हुआ अपने

धर्मानुसार मलमूत्र त्यागनेके मंत्र (सुमिरण *) का मनही मन स्मरण करता जावे ।

मलमूत्र त्याग करनेके समय कदापि बोलना उचित नहीं है । मल त्याग करनेके पश्चात् गुदाको मिट्टीके ढेलसे तीन अथवा सातवार जिससे मल पुछ जावे, पोंछकर जलसे शुद्ध करे, जलसे गुदा शुद्धि करते समय गुदा धोनेका सुमिरण[२] पाठ करता जावे। शुद्धि करते समय चुल्लूसे जल लेकर गुदा अथवा लिंग धोवे, पात्रसे धार गिराकर कदापि शुद्ध न करे ।

शौचकर लेनेके पश्चात् दाहिने हाथसे धोतीका पछौडा खोंसकर जल पात्रको दाहिने हाथसे ही लेकर वहांसे हटे ।

---

* सब प्रकारका सुमिरण अष्टम विश्राममें देखना चाहिये।

२ सुमिरण अष्टम विश्राममें देखो ।

प्रायः देखा जाता है कि, साधारणतः लोग बायें हाथसेही पात्रको ले आते हैं और हाथ धोनेके प्रथम लोटाको ही धोने लग जाते हैं। यह बात बहुत बुरी है इस आदतको छोडना चाहिये। शौच जानेके पश्चात् लोटा दाहने हाथसे ही लाना चाहिये।

पश्चात् नदीके तटपर, तालावके किनारे, अथवा कूवां तथा घरमें, शुद्ध मिट्टीके साथ प्रथम हाथको इतने बार धोवे जिससे अपने और पराये मनकी ग्लानि दूर हो जावे।

मूषाकी खोदी हुई, पुरानी दीवारकी जलके भीतरकी, कूराकरकट जहां फेंका जाता है ऐसे अशुद्ध स्थान आदिकी मिट्टी न लेवे। वरना शुद्ध और स्वच्छ स्थानकी मिट्टी लेकर शुद्धि करे, हाथ मटियाते समय सुमिरण * पाठ करता जावे।

---

* सुमिरण अष्टम विश्राममें देखो।

गुदादि जो मलमूत्रके मार्ग हैं उनके स्वच्छ रखनेसे कांति तथा बल बढता है; हाथ पैरोंको मिट्टी लगाकर धोनेसे शुद्धि होती है मल, श्रम और रजोगुण दूर होता है नेत्रका तेज बढता है ।

तदुपरान्त जलपात्र आदि किसी धातुका हो तो जल और मिट्टीसे भीतर बाहर भलीप्रकार मलकर और धोकर शुद्ध करे और यदि तूम्बा हो तो जलसे भीतर बाहर मलकर साफ करे धातु पात्र और तूम्बाका अलग अलग सुमिरण है सो बोलता जावे ।

इस प्रकारसे जलपात्र शुद्धकर हाथ पैरोंको धोवे और बारह बार अथवा जितनेसे ग्लानि दूर हो उतना कुल्ला करके ऊपरसे मुँह धोनेका सुमिरण*पढता जावे

* सुमिरण अष्टम विश्राममें ।

दातौन विधि

शौच फिरकर हस्त पादादि शुद्ध करनेके पश्चात् दन्तधावन करे।

बारह अंगुल लंबी कनिष्ठिका उँगलीके बराबर मोटी, नरम और गांठरहित, भीतरसे पोला न होवे ऐसी दतोन लेकर उसे चबाकर अथवा कुचलकर कूचीके समान बनाकर धीरे२ एक२ दांतोंको रगडे दांतके मांसोंको सदा बचाकर घिसे यदि होसके तो सोंठ, मिरच. पोपल, तेल, सेन्धानमक इनका चूर्ण वनाकर नित्य दांत घिसे।

मीठी दातौनमें महुआ, तीक्ष्णमें करञ्ज, कडवियोंमें नीम और कसेलियोंमें खैर श्रेष्ठ है। समय, दोष और प्रकृतिको विचारकर योग्य शक्तिवाले वृक्षकी लकडोकी दातौन करे। इस प्रकार दातौन करनेसे

मुखकी विरसता और दांत जीभ तथा मुखके रोगनष्ट होते हैं। स्वच्छता और शरीरमें हलकापन होता है।

आकको दतौन करनेसे शक्ति बडकी दतौन करनेसे दीप्ति, करंजकी दतौन करनेसे जय, पीपलकी दतौन करनेसे धनकी संपत्ति, बेरकी दतौनसे मिष्ट-भोजन, खैरकी दतौन करनेसे मुखमें सुगन्ध, बेलकी दतौन करनेसे अत्यन्त धन. गूलरकी दतौन करनेसे वचनकी सिद्धि, आमकी दतौन करनेसे आरोग्यता कदंबकी दतौनसे धैर्य तथा स्मरणशक्ति, चंपेकी दतौन करनेसे वाणी तथा मानकी दृढता, शिरसकी दतौन करनेसे कीर्ति, सौभाग्य, आयुकी वृद्धि तथा आरोग्यता; चिरचिटे (चिरचिरी अपामार्ग) की दतौन करनेसे धैर्य तथा धारणशक्ति, विजयसागरकी दतौन करनेसे बुद्धिकी शक्ति, दाड़िम (अनार) की

दतौन करनेसे सुंदरता और चंबेली, तगर और मंदारकी दतौन करनेसे खोटे स्वप्न नहीं दीखते ।

निषिद्ध* दातौन

सुपारी, ताल, हिंताल, केतक, वृहत्तृण (वांस) खजूर और नारियल ये सात तृणराज कहलाते हैं। इनका दतौन कदापि न करे किसी किसी देश जातिऔर धर्ममें बड पीपल आदि कितने विशेष वृक्षोंकी दतौन आदि ग्रहण नहीं करते, वहांके लोगोंको देशाचारहोनेके कारण स्वदेशकी चालको स्वीकार करना चाहिये ।

उपरोक्त रीतिसे निषिद्ध वृक्षोंको छोडकर विधि वृक्षोंके निकट जाकर प्रथम सुमिरण पढे पश्चात् दतौन

---

* गुवाकल्लाल हिंतालो केकश्चापि बृहतृण:खज्जूरंनारिकेरं चसप्तैते तृणराजका: । तृणराजसमुत्पन्नं य:कुर्याद्दन्तधावनम् नरश्चाण्डालयोनि:स्याद्यावद्गंगानपश्यति।बृहर्विघटरत्नाकर।

तोडे और उपरोक्त विधिसे सुधार कर दातौन करता हुआ सुमिर*णका पाठ करता जावे ।

दांत घिसनेके पश्चात् जीभका मैल उतारनेके लिए सोना, चांदी, तांबेकी यथाप्राप्त जीभीसे अथवा सर्व साधारय जैसा करते हैं वैसे दातौनको चीरकर अथवा नरम पत्तेसे जीभका मैल उतारे । दसअंगुल लंबी नरम और स्वच्छ जीभीसे जीभका मैल उतारना चाहिये । जीभी करनेसे जीभका मैल; मुखकी बिरसता, दुर्गन्ध और जडता दूर होती है ।

दांतन और जीभी पूर्व उत्तर मुख होकर करना चाहिये । पूर्व उत्तरसे आशय ईशान कोन है ।

यदि दांतन न मिले तथा कोई पर्व दिन होवे अथवा किसी प्रकारका रोग हो तो, नमक और तेल

---

* सुमिरण अष्टम विश्राममें मिलेगा ।

मिलाकर अर्थात् दन्तशोधन चूर्णसे मांस बचाये हुए दांतोंको भली प्रकार मलकर धातुकी जीभीसे अथवा बाहर कुल्लाकर उंगलीसे जीभको शुद्ध करे। जीभी करते समय जीभो सुमिरण * भी बोलता जावे।

कमसे कम २४ मिनटतक अवश्य ही दतौन करना चाहिये।

दांतन निषेध

गल, तालु, होठ, जीभ, दांत रोगी, मुखपाक, सूजन, खांसी, श्वास, वमन तथा दुर्बल अजीर्ण रोगी भोजन किया हुआ, हिचकी, मूर्छा, मद, मस्तक शूल प्यास, मिहनत किया हुआ, रास्ता चलता हुआ लानियुक्त, वातव्याधि युक्त; कानके शूलवाला नेत्ररोगी, नवीन ज्वरयुक्त और हृदय इन सबोंको दतौन करना वर्जित है।

---

* सुमिरण अष्टम विश्राममें मिलेगा।

दांत घिसने और जीभी करनेके उपरांत जलसे वारंवार कुल्ला करे। शीतल जलके कुल्लेसे कफ, तृषा तथा मल नष्ट होकर मुखके भीतरकी शुद्धि होती है। कुछ गरम जलसे कुल्ला करनेसे कफ, अरुचि, मुखका मैल दांतोंका जकड़ना नष्ट हो मुख हल्का हो जाता है। परन्तु विष और मूर्च्छाके मदसे पीडित श्वासरोगी, रक्त पित्तयुक्त, जिनके नेत्र दुखते हों, बल क्षीण हो गया हो तथा रूक्ष हो, उसे गरम पानीसे कुल्ला नहीं करना चाहिये।

कुल्ला करनेके पश्चात् शीतल जलसे मुखको धोवे। मुख धोते समय सुमिरण[1] पाठ करे।

आंख, कपाल, गाल और डाढी आदि मुखके भागोंको तथा नासिकाके भीतर बाहरके मलोंको

---

१ सुमिरण अष्टम विश्राममें मिलेगा।

निकालकर अच्छी तरह धोवे। इस प्रकार शीतल जलसे मुख धोनेसे रक्तपित्त, मुखकी फुन्सियां (बरें) शोष, नीलिका, झांई आदि नष्ट होती हैं। अथवा किंचित् उष्णजलसे मुख धोनेसे कफ तथा वात दूर होता है, स्निग्धता होती है और मुखका शोष नष्ट होता है।

पश्चात् नाक, कान और आंखकी स्वस्थताके लिये यथाशक्ति तेलका नस्य और अन्जन सुरमा आदिका भी व्यवहार करना उचित है जिसका विधान ग्रन्थोंसे देख लेना चाहिये।

स्नानविधि

दन्तधावन करलेनेके पश्चात् देशकालका विचार कर, गृहस्थ, पुरुष तेल उबटन आदि यथाप्राप्त और ऋतु अनुसार लगाकर स्नान करनेकेलिये गृहमें जल लेकर अथवा तालाब आदि जलाशयोंको जावे।

तेल लगानेकी विधि और गुण

संपूर्ण अंगोंमें नित्य तेल मले, तेलका लगाना पुष्टि कारक है। विशेषकर शिरमें कानोंमें और पावोंमें तेलकी मालिश करे। सरसोंका तेल, अग्निके संयोगसे अगर आदि सुगंधित पदार्थोंका निकाला हुआ तेल (अर्थात् चम्पा, चमेली, बेला जुही, मोतिया तथा मदन बाण आदिका तेल) पुष्पोंसे सुगंधित किया हुआ तेल सदा हितकारी है। अपवाद समयके अतिरिक्त तेलका मर्दन कदापि हानिकारक नहीं है। शिरमें मला हुआ तेल सम्पूर्ण इंद्रियोंको तृप्त करता है दृष्टिको बल देता हैं। शिरके त्वचाके रोगोंको, शिरके दर्दको दूर करता है। तेल मर्दन करनेसे वात तथा कफ और थकावट दूर होती है, सुखकी और बलकी प्राप्ति होती है निद्रा भले प्रकारसे आती है, शरीरका

वर्ण सुन्दर हो आता है, कोमलता आ जाती है, आयुकी वृद्धि तथा देहकी पुष्टि होती है। केशोंमें तेल लगानेसे केश बढते हैं, लम्बे नरम दृढ और काले होजाते हैं. तथा शिरमें भरे रहते हैं।

पावोंमें तेल मलना पावोंकी स्थिरता करता है; निद्रा और दृष्टिको प्रसन्न रखता है, स्नानके समय तेलका उपयोग किया जावे तो रोमकूपकी शिराओंके समूह और धमनियोंके द्वारा संपूर्ण शरीरको तृप्त करता और अत्यन्त बल देता है। जिस प्रकार वृक्षकी जडको जलके सींचनेसे पत्रादिककी वृद्धि होती है उसी प्रकार मनुष्योंके शरीरको तेलसे सींचनेसे सर्व धातुओंकी वृद्धि होती है परन्तु नवीन ज्वरवालेको, अजीर्णयुक्त, जिसने जुलाब लिया हो, जिसकी निरूह-वस्ती करी हो उनको तेल कदापि लगाना नहीं

चाहिये इसी प्रकार उबटन आदि मलना और कानमें तेल आदि देना अत्यंत लाभदायक है जिसका विधान भाव प्रकाशादि वैद्यक ग्रन्थोंमें पूरा २ मिलेगा ।

इस प्रकार तैलादि लगानेके पश्चात् स्नान करे । स्नानके हेतु यदि नदी तालाब आदि जलाशयोंमें जावे तोजलमें प्रवेश करनेका सुमिर[1]ण पढकर प्रवेश करे, यदि कूपसे जलभर कर स्नान करना हो तो जलभरनेका सुमिरण पढकर जल भरे । और यदि जल घरमें ही तैयार मिले तो जल भरनेवाले सुमि-रणको पाठ करनेका काम नहीं है ।

जलमें प्रवेशकर अथवा घरमें स्नान करते हुये स्नान करनेके सुमिरणको बोलता जावे। स्नान करनेसे अग्नि दीप्त होती है, शक्ति,आयु और तेज बढता है, उत्साह

१ सुमिरण अष्टम विश्राममें देखो ।

तथा बल प्राप्त होता है, खुजली, मैल, परिश्रम, पसीना, आलस्य, तृषा, दाह तथा पाप इनको दूर करता है। शीतल जल आदिके सींचनेसे शरीरके बाहरकी गरमी दबाकर भीतर जाती है। इसीसे जठराग्नि प्रबल होती है, भूख लगती है। इसीसे जलके स्नानसे रक्तपित्त दूर होता है, उष्ण जलसे स्नान करनेसे बल बढता है, वात तथा कफका नाश होता है। शिरसे गरम जलसे स्नान अत्यन्त हानिकारक है। परन्तु बात और कफका प्रकोप हो तो हितकारी है।

स्नान वर्जित

ज्वर, अतिसार, नेत्र और कानके दर्दवाला बात, रोगी जिसका पेट अफरा होय, पीनस रोगवाला और अजीर्णरोगवाला इन सबको स्नान करना नहीं चाहिये भोजनके पश्चात् भी स्नान ठीक नहीं।

स्नान करनेके नन्तर नरम अङ्गोछेसे शरीरको पोंछ लेवे। परन्तु गरम जलसे जिसने स्नान किया हो उसे सूखे ही अङ्गोंछेसे देह पोंछना चाहिये।

सूचना-स्नान करनेमें प्रायः यह देखा जाता है कि, लोग या तो प्रथम पगपर या कमरपर अथवा कन्धेपर जल डालकर शरीर मलने लग जाते हैं और शिरपर सबके पीछे जल डालते हैं सो वह आदत बहुत हानिकारक है, इस प्रकारसे अनेक रोगोंसे ग्रसित होना पडता है, मस्तकमें गरमी बढ जाती है, इस कारण उचित है कि प्रथम शिरपर पानी डालकर पश्चात् कन्धा, कमर, और पैरपर जल डालकर स्नान करे, विना किसी विशेष कारणके गरम जल भी शिरपर कभी न डाले।

वस्त्रधारण

स्नान करनेके पश्चात् वस्त्र धारण करे, सतोगुणी और स्वास्थ्यकी इच्छा करने वाले मनुष्यको लँगोटी अवश्य धारण करनी चाहिये लँगोटी धारण करनेके समय कौपीन धारण करनेका सुमिरण[1] पढे और उसके अर्थपर भी ध्यान देवे।

लंगोटी पहिनकर यथाप्राप्त शुद्ध और उज्ज्वल वस्त्र धारण करे, श्वेत वस्त्र न शीत है न उष्ण है इसकारण सदा ही धारण करने योग्य है। शीत गुण है रजोगुणका और उष्णता तमोगुणका, इस कारण श्वेतवस्त्र समशीतोष्ण होनेसे मुमुक्षुओंको वही धारण करना चाहिये इसी कारण स्वधर्मानुसार सब स्थानों में श्वेत रङ्गको ही प्रधान माना है।

---

१ सुमिरण अष्टम विश्राममें मिलेगा।

और भारतबर्ष जैसे समशीतोष्ण अर्थात् सतोगुणी देशमें तो श्वेतवस्त्र अत्यन्त ही उपयोगी है। यद्यपि ऋतु ऋतुमें भिन्न भिन्न रंगोंके वस्त्र धारण करनेका विधान वैद्यकशास्त्रोंमें पाया जाता है तथापि सबमें श्वेतवस्त्रको ही प्रधानता है।

नवीन वस्त्र यशकर्ता, कामोद्दीपक, आयुष्यकर्ता लक्ष्मी और आनन्दका बढानेवाला है तथा हितावह वशीकरणकर्ता और रुचि प्रगट करता, यह गुण उज्ज्वल धुले हुए अथवा नवीन वस्त्रके हैं।

बुद्धिमान् पुरुषोंको मैला कपडा कभी भी धारण करना नहीं चाहिये, क्योंकि मैले वस्त्रसे खुजली, कृमि, ग्लानि, अलक्ष्मी (दरिद्रता) होती है अर्थात् मैलसे खुजली होवे, जूएँ पड जावें, जिसके पास जाके बैठे उसको ग्लानि हो इसीसे धनकी अप्राप्ति होनेसे दरिद्री

होवे। यदि किसीके पास नवीन वस्त्र धारण करनेको न हो गरीब हो तो यथा प्राप्त पुराने वस्त्रको भी धुला कर अथवा साबुन आदिसे अपने हाथसे धोकर साफ साफ रक्खे,वस्त्र धारण करके पश्चात् तिलक लगावे।

तिलक लगानेकी विधि

शीतकालमें केशर, चन्दन और काली अगर मिलाकर तिलक करे क्योंकि ये गर्म हैं, वात कफको मेटनेवाले हैं। गरमियोंमें चन्दन कपूर और सुगंधवालाको मिलाकर लेप करे क्योंकि ये सुगंधित हैं और अत्यन्त शीतल हैं। वर्षाकालमें चन्दन केशर और कस्तूरीको मिलाकर लेप करे, क्योंकि ये न गरम है न शीतल है

तिलक करनेसे मूर्छा, दुर्गंध, पसीना और दाह

दूर होती है और भाग्यशालीपना, तेजस्वीपना, त्वचाका वर्ण, प्रीति, उत्साह तथा बल बढता है।

जिन लोगोंके लिये स्नान वर्जित है उनके लिये तिलक भी करना निषेध है।

यद्यपि वैष्णव संप्रदायमें(स्वधर्ममें)सफेद मिट्टीका तिलक ही प्रधान किया है, सो विशेष कर विरक्त साधु अथवा घरसे बाहर गये हुए. व्यवहारमें लगे हुए, कम अवकाश पानेवालोंके लिये जान पडता है। क्योंकि चन्दन आदिकेलिये बहुमूल्य केशर कस्तुरी आदिको आवश्यकताके अतिरिक्तहोरसा आदि कई एकसामग्रीकी आवश्यकताहै जो विरक्त और अत्यन्तव्यवहारपरायण पुरुषके लियेआपत्ति और भाररूपहै और गोपीचन्दनका टुकडा पास रखने और समयपर हाथ पर घिसकर लगालेनेमें कोई आपत्ति नहीं है, इस कारणसे जिसको जो प्राप्त होसके उसीसे अपना निर्वाह करे।

तिलक घिसनेसे पर सुमिरण* पढते हुए शरीरके बाहर अंगोंपर तिलक लगावे. इसीको द्वादश तिलक कहते हैं।

तिलकके द्वादश स्थान

१ नासाग्रसे आरंभकर ब्रह्मरंध्र (मस्तक) तक सीधी रेखाके समान तिलक लगावे इसी प्रकार २-३ दोनों आंख, ४ नाभी, ५ हृदयमें ६-७ दोनों भुजा ८-९ दोनों छातीसे लेकर मोंढेतक घूमा हुआ १० पीठ, ११-१२ दोनों कान यही स्वधर्मानुसार तिलक करनेके द्वादश स्थान हैं।

तिलक लगानेके पश्चात् सत्याचार्य वंश गुरुकी सेवासे गुरु द्वारा अथवा स्वयम् प्रमाद स्वरूप

---

* सुमिरण अष्टम विश्राममें देखो। २ वंश गुरुको सत्याचार्य इस कारणसे लिखा है कि कबीर पंथके जितने ग्रंथ हैं

पाये हुए चरणामृत महाप्रसादको सुमिरण* बोल कर पान कर जावे ॥

पश्चात् सुमिरण पढकर उत्तर मुख बैठकर कबीर साहबका ध्यानकर बन्दगी करे ।

सत्रमें--गरु धर्मदास साहबके अतिरिक्त किसीको भी पन्थ चलानेकी आज्ञा नहीं दी है और सब ग्रंथोंमें यह भी प्रमाण है कि, गुरु धर्मदास साहबके वंशके अतिरिक्त कबीर पन्थकी गुरुआई आचार्यपना अन्य किसीको कबीर साहबने दिया नहीं है । वंशके छापके विना कोई गुरुआई करनेका अधिकारी नहीं है, वंशके पंजा परवाना विना जो गुरुआई करते, अथवा आचार्य कहलाते हैं वे कबीर पंथके ग्रंथानुसार आचार्य नहीं । इसके विशेष वृत्तान्त अनुरागसागर आदि सर्व ग्रंथों तथा " कबीर मन्शूर " " कबीर भानु प्रकाश" आदि ग्रन्थोंमें पूरा २ मिलेगा । १ सुमिरण अष्टम विश्राममें मिलेगा ।

प्रायः वर्तमान कालके महात्मा गण नियम विरुद्ध उत्तर दिशाको छोड केवल बन्दगीही नहीं आरती आदि भी पूर्व और दक्षिण दिशाओंकी ओर मुख करके करते हैं। सो केवल स्वधर्मानुसार ही नहीं, बरन् विज्ञान शास्त्रके साथ साथ प्रायः सर्व धर्मोंके विरुद्ध है शास्त्रीय श्रौत स्मार्त कर्ममें भी प्रायः उत्तर दिशाकोही प्रधान रक्खा है, यद्यपि संध्या आदिकोंमें सबेरे पूर्व, मध्याह्न उत्तर और सायं संध्याकी पश्चिम दिशा लिखी है। तथापि विज्ञान वेत्ता लोग उत्तरदिशाके गुणको भली प्रकार जानते हैं।

यहां इन विषयोंके लिखनेका स्थान नहीं है इस कारण विशेष लिखता हूँ।

बन्दगी करलेनेके पश्चात् निकट निवास करते हुए गुरु साधु और श्रेष्ठ पुरुषोंके पास जाकर बन्दगी

करके चरणामृतके लिये विनय करे, तब महापुरुष चरणामृत देनेका सुमिरण* बोलते हुए चरणामृत देवे उसे बडे प्रेम और श्रद्धाके साथ पान कर जावे, पान करते समय चरणामृत पान करनेका सुमिरण मनही मन स्मरण कर लेवे।

इसी प्रकार पुत्र पिताका शिष्य गुरुका, स्त्री पतिका चरणामृत यथाशक्ति नित्य ग्रहण करे।

यद्यपि मानापमान रहित सच्चे विरागी साधु संत लोग अमान होनेके कारण चरणामृत महाप्रसाद आदि देनेके इच्छुक नहीं होते हैं तथापि विवेकी गृहस्थ और साधुओंको अपने कल्याणके हेतु, उनमें श्रद्धा रखनी, उनकी सेवा भक्ति करनी अत्यन्त आवश्यक है।

---

* सुमिरण अष्टम विश्राममें मिलेगा।

परन्तु गृहस्थोंको तथा मठधारी महंत और साधुओंको लोकाचार, कुलाचार और देशाचारका ध्यान रखकर सदा मर्यादासेही बर्तना चाहिये, यद्यपि कितने दम्भी और पाखण्डी विवेक विचार शून्य मनके अभिलाषी लोगोंका चरणामृत न लेनेसे वे बहुत क्रोधित होकर अपशब्द और शापका प्रहार करने लग जाते हैं और भोलेभाले बिचारे श्रद्धालुओंको उनकी गीदंड भवकीसे घरके लोग और मर्यादाके विरुद्ध कार्यकर अनेक आपत्तियोंमें फँसना पड़ता है। इससे बिचारवानोंको सत्यगुरुके इस वचनका ध्यान रखकर सदा मर्यादासे ही वर्तना चाहिये।

साखी

करै बन्दगी विवेककी.
भेष धरे सब कोय।

वह बन्दगी वहि जानदे,
जहां शब्द विवेक न होय ॥ बीजक
जाकी मर्यादा जौन विधि,
बरते सोइ प्रमान ।
जमा मांहिं कछु फेर नहिं;
उज्ज्वल धर्म ओ ज्ञान ॥ गुरुबोध ।

इतनेही नहीं वरन् सब ग्रन्थोंमें इस प्रकारका बहुत प्रमाण मिल जावेगा और प्रत्यक्ष श्री १०८ सत्याचार्यवंश गुरुकी सेवामें रहकर जिसने वहांकी रहनी और वहांका टकसार देखा है वह कदापि नास्तिक बनकर मर्यादा के बाहर नहीं चलेगा। जो आचार विवेकहीन हैं उनकी तो कोई बातही नहीं है हां किसी भी प्राणीका हृदयसे अपमान करना अथवा उसका बुरा देखना किसीको भी उचित नहीं है वरन् इससे लौकिक व्यवहार और मर्यादाका कोई सम्बन्ध नहीं है। सत्यगुरुका वचन है ।

हम वासी वहि देशके, (जहँ)
जाति वरन कुल नाहिं ।
शब्द मिलावा होय रहा,
देह मिलावा नाहिं ॥
सब संग रसिये सब संग बसिये,
सबका लीजै नाम ।
हांजी २ सबकी कीजै,
रहिये अपनी ठाम ॥
सत्य शब्द टकसार ।

इस प्रकारसे नित्यक्रियाको शीघ्रतासे समाप्त कर प्रभात संध्या अर्थात् भजन स्मरणके लिये बैठे।

शीघ्रतासे समाप्त करनेका कोई यह अर्थ न समझ लेवे कि, कुछ किये कराये विनाही दश पांच मिनटमें

इधर उधर कर शिरका भार उतारे जिसके करनेसे लौकिक पारलौकिक कोई भी लाभ नहीं है। परंतु शीघ्रता करनेका आशय दीर्घसूत्रताको त्याग देना। जो पुरुष ५मिनटके काममें दश मिनट अर्थात् योग्य समयसे अधिक समय लगाता है उसे दीर्घसूत्री कहते हैं। सो सब कृत्य अपने योग्य अवसरपर करना उचित है। शक्ति रहते हुए आलस करना अथवा मर्यादासे विरुद्ध दीर्घसूत्रताको सदा ही त्यागना चाहिये।

इति द्वितीयविश्रामसें प्रातःकालिककर्म विधि समाप्तः॥

अथ तृतीय विश्राम ३.

प्रभात सन्ध्या (उपासना)

स्वस्थ–चित्त हो एकाग्रचित्तसे सद्गुरुके भजन स्मरणके लिये सिद्धासन अथवा सुखासनसे बैठे।

आसन

पवित्र देश अर्थात् शुद्ध स्थानमें जहां शीतल मंद और शुद्ध वायु आता हो और उसकी चारों ओर किसी प्रकारकी दुर्गन्ध न हो, पुष्प, चन्दन, अगर और कपूर आदिकी सुगंधि हो, भूमि न अति ऊँची हो न अति नीची न खडबड हो, घरमें अथवा वाटिका (बगीचा फुलवारी) मंदिर अथवा नदीके तटपर हो, तहां कुशासन, उसपर कंबल और उसके ऊपर वस्त्र बिछाकर सिद्धासनसे बैठे।

सिद्धासन

गुदा और उपस्थके मध्यमें जो स्थान है उसे योनि स्थान कहते हैं, उसी स्थानमें बायीं एडीको लगाकर दाहिनी एडीको पेडूपर लगावे, दोनों पैरोंकी अंगुलियोंको जंघा और पिंडलियोंके मध्यमें

पकड रक्खे। और हृदयके उपर चार अंगुलपर ठोडीको लगाकर मनको रोककर संसारी विषय वासनाको भुलाकर त्रिकुटीके ऊपर दृष्टिसे देखता हुआ बैठे। आचमन और मार्जन और न्यास आदि क्रियाके समय नीचेका पग तो ज्योंका त्यों रहने दे और ऊपरके हस्तादि भागोंसे सब क्रिया करे।

यदि इस प्रकार आसन न लगा सके तो सहज आसनसेही बैठे, सहज आसनको ही सुखासन भी कहते हैं, इसमें कई विशेष विधि नहीं। पलाटी मारकर जैसा सुखसे बैठा जावे तैसाही बैठे।

इस प्रकार बैठकर प्रथम, *आचमनके सुमिरणको पढकर आचमन करे। पश्चात् गुरुसहस्र नामके पाठ करनेके हेतु करन्यास और अंगन्यास करे। फिर

---

* देखो अष्टम विश्राममें। २ नवम विश्राम देखो।

ध्यानका श्लोक पढकर-मनही मन उसके अर्थका चिन्तन कर उसके अनुसार स्वरूपका मानसिक ध्यान करे। फिर गुरुसहस्रनाम पाठ करे। इसके पश्चात् क्रमशः गुरुशतकसारनाम, नित्य पाठकी एकोत्तरी प्रभात गायत्री, ध्यान गायत्रीका पाठ और विचार कर जलसे आंख और मुखको सींचकर गुरुमंत्रका यथाशक्ति ध्यान और जप करे पश्चात् ज्ञान गुदडी और प्रातः स्मरणीय स्तोत्रोंका पाठ करता हुआ प्रातः सन्ध्याको समाप्त करे।

फिर बन्दगीकर गृहस्थ हो तो भोजन आदिकर अपनी संसार यात्राके कार्यमें लगे और साधु विरक्त हो तो स्वधर्मके शास्त्रोंके पठनपाठनमें लगे। अथवा मठधारी होतो आये गये के आगत स्वागत और भोजन छाजनकी चिंतामें लगे।

गृहस्थोंकी प्रातःसन्ध्या अधिकसे अधिक छः बजे तक समाप्त होजाना चाहिये क्योंकि सारादिन भजन स्मरणमें रहना तो गृहत्यागी साधु बैरागियोंका ही काम है,गृहस्थोंका नहीं क्योंकि भुलेबुरे, छोटे बडे साधु, वैरागी, संन्यासी पशु पक्षी, देवता तथा उसका परिवार आदि सर्व हजारों जीव फोकटखाने-वाले गृहस्थोंकेही आश्रय हैं ! गृहत्यागी साधु पुरुषोंके आश्रय नहीं उलटा साधु गृहस्थकी ही आशा करता है। इसी हेतु दान, यज्ञ सेवा आदिक अनेक धर्म गृहस्थोंके पीछे लगे हैं सो द्रव्य विना कदापि सिद्ध नहीं हो सकते और खेत व्यापार नौकरी हुन्नर आदि व्यवहार विना धन कहीं आकाशसे नहीं गिर जाता। आजतक किसीको देखा नहीं गया कि बैठा२ आकाशसे धन गिर गया हो। इस

हेतु जो गृहस्थ व्यवहार न करे और सारे दिनभजनमेंही लगा रहे सो उसका धर्म कैसे पूरा होवे ?

इस हेतु गृहस्थोंको उचित है कि, मृत्युकी याद पूर्वक सत्य संभाषण आदि सद्गुणोंको धारण कर असत्संभाषण आदि असद्गुणोंका निजशक्ति अनुसार त्यागकर, अपने गुरुपरंपरा-धर्म अनुसार गुरु दत्त नाम उच्चारण आदि सहित उपरोक्त विधिसे सन्ध्याको छः बजे तकही समाप्त कर देवे।

और त्यागी साधुओंको अपने पेटकीभी चिन्तासे रहित होकर स्वधर्मकी उन्नति और सत्योपदेशकके प्रचार और सांसारिक जीवोंको सत्योपदेश देनेके अतिरिक्त बिशेष व्यवहारमें फँसना कलंक है।

इति तृतीयविश्रामे प्रातःसन्ध्याविधिः समाप्तः।

अथ चतुर्थ विश्राम ४.



जानने योग्य आवश्यक बातें

स्नान सन्ध्या आंदिके पश्चात् यदि कोई बाधा हो और अवकाश हो तो कुछ व्यायाम अर्थात कसरत करना चाहिये।

व्यायाम करनेसे शरीरमें हलकापन और काम करनेकी सामर्थ्य होती है, शरीर सुन्दर तथा दृढ होता है. कफादि दोषोंका क्षय और अग्निकी वृद्धि होती है। जिसका शरीर व्यायाम करके दृढ होगया हो उसको कोई रोग नहीं होता, विरुद्ध अन्न जो पेटमें भलीभांती नहीं पच सकता, मिहनती कसरती पुरुष उसे भी पचा लेता है। व्यायाम करनेवालेका शरीर शीघ्र वृद्ध नहीं होता। भारी पदार्थ खानेवालेको

व्यायाम सदाही हितकारी है। साधारणतः वसंत ऋतु और शीतकालमें व्यायाम अत्यंत लाभदायक होता है।

वर्तमानकालमें व्यायामकी परिपाटी प्रायः अपढ और मूर्खोंमें रह गई है और सतोगुणी लोगोंका वचन है कि दंड मुद्गर आदि व्यायाम विशेष करनेसे तमोगुणकी वृद्धि होती है इस कारणसे भी अनेक लोगोंकी प्रवृत्ति उससे हट गई है और आज कल दरिद्रताका विशेष राज्य फैलनेसे भारतवासियोंको उदर पूर्त्तिके लिये कठिन परिश्रम करना पडता है। इस कारण वे विशेष व्यायाम करनेमें प्रवृत्त नहीं होते और उनको विशेष आवश्यकता भी नहीं, परंतु जिन लोगोंको किसी प्रकारका विशेष परिश्रम नहीं करना पडता जैसे प्रायः मठोंके महंत, साधु अथवा सेठ साहूकार तथा जिनको मानसिक परिश्रम लिखना, पढना विचार

करना पुस्तक रचना नई२ बातें शोधना आदि करना पडता है उन लोगोंको अपने २ अवकाशानुसार कुछ ना कुछ व्यायाम अवश्य करना चाहिये और कुछ न होसकेतो सांज सबेरे खुले मैदानोंकी हवामें माइल दो माईलतक टहलने ही निकल जावे।

चतुर्दशवर्ग

बिदित हो कि, मनुष्यप्राणियोंके शरीर में चौदह स्वतः वेग होते हैं। जिनको अनुचित रीतिपर उत्पन्न करने और उत्पन्न हुए वेगको रोकनेसे अत्यन्त हानि होती है।

वेगोंको रोकनेसे, वाहर निकलने योग्य पदार्थ शरीरके भीतर रह जानेके करण अनेक दुःखदायी रोगोंकी उत्पत्ति द्वारा अत्यन्त दुःख उठाना पडता है। फिर रोगी और दुःखी मनुष्यसे भजन स्मरणकी आशा ही क्या

है। इस कारण उन उचित वेगोंके और अनुचित वरतावका वर्णन कर उनके लाभ हानिको जाननेके हेतु थोडा लिखता हूं। मल और मूत्रके वेग रोकनेके हानि लाभका थोडासा वर्णन द्वितीय विश्राममें होचुका है। शेषको यहां लिखता हूं।

१ भूख-जब पेटमें आहार नहीं रहता है तब जठराग्नि प्रदीप्त होती है-उसीको भूख कहते हैं। यदि भूख लगनेपर आहार शरीरको न मिले तो शरीर शक्तिहीन होजाता है और अंग भंग (शरीरका टूटना अर्थात् शरीरकादुःखना), अरुचि, ग्लानि श्रम तन्द्रा, नेत्रोंमें दुर्बलता और रुधिर मांस आदि शरीरके धातुओंका दाह होता है। इस कारण भूख लगने पर आहार अवश्य ग्रहण करना चाहिये।

भूख शरीरके पोषणमें परम उपयोगी होनेपर भी यदि इसका अनुचित वेग उत्पन्न किया जावे,

(जैसा प्रायः बुद्धिसागर लोग भंग आदि निषिद्ध पदार्थोंको खाकर भूख प्रज्वलित करनेका यत्न करते हैं) तो उससे अत्यन्त हानि होता है ।

२ प्यास-लगने पर जल अवश्यही पीना चाहिये, जो प्यास लगने परभी जल नहीं पीते उनके कण्ठ सूखने, मुख सूखने रुधिर सूखने, हृदयमें व्यथा और दाह तथा बधिरापनसे दुःखी होना पडता है। रूखे और गरम वस्तुओंके खानेसे प्यास विशेष रूपसे उत्पन्न होनेपर और अधिक जल पीनेसे भी दुःख उठाना पडता है। इस हेतु ऐसे पदार्थोंके सेवनसे वचना चाहिये ।

३ अधोवात-अर्थात् अपान वायुके वेगको रोकनेसे गुल्म, उदावर्त, शूल, ग्लानि, वायुबन्ध, मूत्रबन्ध, मलबन्ध, दृष्टि और अग्निका नाश तथा

हृदयरोग आदि उत्पन्न होते हैं ।

४ छींकके रोकनेसे शिरमें शूल, इंद्रियोंकी दुर्बलता, घबराहट और वातरोग आदि दुःखदायी रोग उत्पन्न होते हैं।

५ नीद-के रोकनेसे मोह, शिरका भारीपन, नेत्रोंका भारी होना, जँभाई, अंगोंका टूटना, तंद्रा और अन्नका न पचना आदि अवगुण उत्पन्न होकर महा दुःखदायक हो जाते हैं ।

६ वमन के रोकनेसे विसर्प, कोढ, खाज, पांडुरोग, ज्वर, खासी, श्वास आदि कठिन रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

७ खांसी के रोकनेसे खांसीकी वृद्धि, श्वास, अरुचि, हृद्रोग, शोष, हिचकी आदि उत्पन्न होकर दुःखदायी होते हैं।

८ जम्भाईके रोकनेसे भी छींक रोकनेके समान ही दुःख होता है।

९ आंसू के रोकनेसे पीनस, नेत्ररोग, शिर-शूल, हृदयशूल, अरुचि, भ्रम, गुल्म इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं।

१० श्रमके वेगको रोकनेसे गुल्म, हृद्रोग और मोह उत्पन्न होता है।

११ श्वास-के वेगको रोकनेसे श्रमके रोकनेके समान ही दुःखदायक होता है।

१२ काम-के वेगको एकदम रोकनेसे अनेक प्रमेह आदि कठिन रोगोंकी उत्पत्ति होती है और इसमें अत्यन्त लुब्ध होनेसे अनन्त कष्ट और दुःख उठाना पड़ता है, इस कारण यत्नपूर्वक गृहस्थ स्वधर्म मर्यादासे इसका सेवन और त्याग, व्रत,

उपवास और मिताहार आदि द्वारा इसको जीतकर विवेक विचार द्वारा इसको अपने वशमें रक्खे। उपरोक्त १२ और मलमूत्र २ मिलकर १४ वेग हुए। इनके अतिरिक्त, जल, अन्न घर आदि आवश्यकीय पदार्थ कैसा और किस प्रकार काममें लाना चाहिये इसया पूरा विवरण वैद्यक शास्त्रोंसे देखकर निश्चय करना चाहिये।

इति चतुर्थविश्राम।

अथ पञ्चम विश्राम ५.



भोजन विधि

प्रथमं भक्ष्याभक्ष्यपदार्थनिर्णयः

चौपाई

दूजे भोजन कर्म सुधारे
अंकुरज भक्षे जीव प्रतिकारे ॥
जीव अजीवहि करैं विचारा ।
जड चेतन जोहैं संसारा ॥ १ ॥
जहाँ जीव तहँ चेतन होई ।
दुख सुख सब विधि जाने सोई ॥
जैसे उष्ण अनलको कर्मा ।
सदा शीत है जलको धर्मा ॥ २ ॥

सुर प्रकाश भिन्न नहिं होई ।
ऐसे जीव धर्मचित होई ॥
जल थल पावक पवन अकासा ।
सो सब सर्ग जीवनको वासा ॥ ३ ॥
सकल पसारा जडका होई ।
पाँचो तत्त्व कहावैं सोई ॥
जैसे केश उधमज है देहा ।
ऐसे अंकुरज पृथ्वी नेहा ॥ ४ ॥
शून्य सुषुप्ति अस्ति समाना ।
तेहि आश्रित अंकुरज उतपाना ॥
पूरण अस्ति पिंड ब्रह्मण्डा ।
भरे अवस्था खंड औ पिण्डा ॥ ५ ॥
जागृत स्वप्न जहाँ व्यवहारा ।
नहीं तहां अंकुरज पैसारा ॥

हरे सुखे जो शंका होई ।
ताकर भेद तुम लेहु बिलोई ॥ ६ ॥
चिकुर बढाये बहु विधि बाढे ।
अनल बढाये छिनमें दाढे ॥
अनल दीपको तेल आधारा ।
पवन थीरमें करत बिहारा ॥ ७ ॥
पवन झकोरते जाइ बुझाई ।
अधार पाय पुनि देर रहाई ॥
लेहु चर्म है चिकुर अधारा ।
जल पृथ्वी अंकुरजको सारा ॥ ८ ॥
पांच तत्वको उधमज आहीं ।
इनके भक्षे दोष कछु नाहीं ।
नानारूप जीव क्रिमि होई ।
जल थल अंकुरज रही समोई ॥ ९ ॥

दुख दिये ते बड अपराधा ।
दया विचार ते होवे बाधा ॥
दया धर्म हृदय जेहि नाहीं ।
मुये नरक सो यमपुर जाहीं ॥ १० ॥

साखी

अंकुरज भक्षे सो मानव,
मांस भक्षे सो श्वान ।
जीव बधै सो काल है,
सदा नरक प्रमाण ॥ १ ॥
जीवित जीव मुर्दा करे,
कर्महिं भया कसाई ।
मरी खाय चमार भया,
अधम कर्मके दाई ॥ २ ॥

मानुष विचार ।

उपरोक्त वचनोंका अर्थ स्पष्ट है।

संक्षेप-आशय यह है कि,मनुष्यको चलने,फिरने श्वास लेनेवाले, जागृत और स्वप्न अवस्थाको प्राप्त होनेवाले, प्राणियोंकी रक्षा करना और अंकुरज पदार्थोंका अपने कार्यानुसार ग्रहण करना चाहिये अर्थात् अंकुरज जो जड पदार्थ हैं उन्हींका भक्षण करना चाहिये, परन्तु केवल इतने ही स्थूल बातोंको जानकर और इसीका प्रमाण देखकर, जिह्वालम्पट मूर्ख लोग अंकुरजके नामसे अनेक अभक्ष्य पदार्थोंका ग्रहण करते हैं और उसपरभी अपनेको वैष्णव और मत्स्य मांसत्यागी बतलाते हैं इसी कारणसे उपरोक्त वचनोंमें यह वचन भी कहा है कि—

नानारूप जीव क्रिमि होई ।
जल थल अंकुरज रही समाई ॥

जिसका आशय है कि, जीव अर्थात् सुख दुःखका अनुभव करनेवाला चेतन नाना प्रकारकेकीट पतंग आदि शरीरको धारण करके अंकुरजमें वास करता है सो दया विचार द्वारा उनकी रक्षा करनी चाहिये उनको कदापि भी दुःख देना नहीं चाहिये।

चौपाई

मद्य मांस भक्ष मलिन बखानी।
ताहि न ग्रहण करै नर ज्ञानी॥
निज २ हिरदय विचारो येही।
मल अरु मूत्रकी जेनी देही॥
सकल अभक्ष घिनावे सोई।
चहूँ खानि जल नल ते होई॥
शुद्ध अशुद्ध ताहि पहिचानी।
जल कृत शुद्ध अशुद्ध मलानी॥

मलकृत जो जीवजन्तु उपाये ।
हो अज्ञान ताहिके खाये ॥
जलकृत जो फल अन अंकूरा ।
ताते भूखको दुःख कर दूरा ॥
नर पशुजीव जन्तु खग नाना ।
सबको सुख दुख एक समाना ॥
नर पशु खग जो मांसके भक्षक ॥
सो नहिं कबहुँ जीवके रक्षक ॥
जिनके हिरदय दाया नाहीं ।
सोई अधोगति माहिं समाहीं ॥
मांस अहारीके कस दाया ।
एके खाय बहु मारि गिराया ॥
जो कोई काहूको दुःख देहै ।
बदला तासु आप शिर लेहै ॥

सुरापान अरु मांस अहारी ।
नरकधाम सो अवशि सिधारी ॥
कबीर भा० प्र० ॥

यद्यपि संसारमें कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जिसमें किसी न किसी शरीरसे जीव वास न करता हो तथापि स्थूल दृष्टिसे प्रत्यक्ष हिंसायुक्त देखपड़नेवाले कुछ अंकुरज और जडपदार्थोंका वर्णन करताहूं। जैसे-

बडका* फल. पीपलका[2] फल,पाकडका[3]फल कठूम[4]-रकाफल और गूलरका[5] फल, सदा अभक्ष्य हैं। कारण

---

*—वटको बड भी कहते हैं गुजरातमें भी यही नाम है ।
२—पीपल को गुजरातीमें पीपलो कहते हैं ।
३—पाकडको उत्तर भारतमें पिलखन और गुजरातीमें पीपूर्यं (पापये) कहते हैं ।
४—कठूमरको विहार प्रदेशमें कोठाडमर और गुजरातमें काली ऊँमरा कहते हैं ।
५—गूलरको गुजरातमें ऊँमरो कहते हैं ।

कि, इनपांचों फलोंमें असंख्य सूक्ष्म कीड़े भरे होते हैं। जिनकी गिनती सामर्थ्यसेबाहर है। एक फलके खानेसे जिनमें अनगिनत जीवोंकी हत्या होवे उसे विवेकी कब स्वीकार करेगा। यदि भूखसे प्राणान्त तकका समय आगया हो तब भी उनको कदापि नखावे।

इस प्रकारसे—मदिरा, मांस, मधु और माखन भी अभक्ष्य हैं, इनका भिन्न २ वर्णन करता हूं।

मादक पदार्थ

१ मद्यनाम है मादकपदार्थका,* जिनके खानेसे अथवा पीनेसे नशा उत्पन्न हो, बुद्धि अथवा शारीरिक

---

* प्राय: यह बात देखनेमें आती है कि, तम्बाकू पीने वाले जब सवेरे सोकर उठते हैं तो भजन स्मसण की बात तो अलग रही उठनेके साथही लगेहाथों शिष्योंकोपुकारकर कहते हैं "ओ ! फलानो तम्बाकू लाओ सूखा लाओ,गुडाकू लाओ" यदि उनके हांक मारनेपर हां साहब लाता हूं कहकर शिष्य-

आरोग्यता आदिमें बाधा उपस्थित हो ऐसे मादक पदार्थोंको कदापि भक्षण न करे, ऐसे पदार्थोंमें मदिरा गांजा, भङ्ग, चरस, तम्बाकू, आफिम और माजूमआदि हैं इन सब पदार्थोंको खाने पीनेसे अनन्त जीवोंकी हत्याके अतिरिक्त इनके धारण करनेवालोंको प्रत्यक्ष अनन्त दुःख और कष्ट उठाना पडता है जैसा—

उठा औरउसने देख लिया तवतो कुशल है, लगे कुछ एकाध साखी अथवा प्रभाती आदि बोलने परन्तु अभी साखीभी पूरी नहीं हुई कि ताम्बाकूकी तलव हुई और सब भूलकर फिर पुकारा। यदि तंबाकू सामने आगया तो कुशल है नहीं तो अव क्या था! लगा सच्चा भजन होने दसबीस गाली और हो सकता तो दस पांच लप्पडलुप्पड लगाकर साधक विचारेकी खबर ले ली। बस भजन पूरा हुआ इसी प्रकार गृहस्थ लोग भी अपनी स्त्री पुत्र और नौकरोंकी खबर लेकर प्रभात स्मरण को पूरा करते हैं। यह तो वातहुई अपने स्थानपर हरनेवालों की, परन्तु जब ये लोग परदेशमें विशेषकर जब अकेले हो

यद्यपि ये मादक पदार्थ औषधिरूपसे अनेकरोगों को औषधि स्वरूप हैं, परन्तु विना रोगके अत्यंत आवश्यकता विना इनका सेवन मनुष्यकी बुद्धिको ऐसा स्थूल बना देता है कि उनकी बुद्धि सूक्ष्म विचारमें कदापि प्रवेश नहीं कर सकती. मादक पदार्थके

तब देखनेका मजा आता है, जिसके पास दियासलाई है वह तो प्रभात ही उठकर कपडोंको फाडकर जलाताहै और तंबाकूके वशमें पडा हुआ उसकी दुर्गंधिकोभी अतरके समान मानता है, जिसके पास यह सामग्री रहती नहीं है वह इधर उधर धुआं उठनेवालोंके घर जाकर उनसे आग मांगनेपर झिडकियां और गालियां सहता है, दसपांच जगह गाली सहकर यदि किसी जगह आग मिलगई तो अपनेको पूर्ण भाग्यशाली मानकर हसते हुए मुंहसे दुर्गन्ध धूवां निकालते हुए अपनेको चक्रवर्ती राजा समझता है. यह तो केवल तम्बाकूवालोंकी ही सूक्ष्म दुर्दशा बताई. गांजा आदिके व्यसनियोंकी तो इससे भी अधिक दुर्गति होती नित्य देखी जाती है ।

सेवन करनेवालेके मनमें सदाही नाना प्रकारके बुरे संकल्प उठा करते हैं। उन्हीं संकल्पोंके अनुसार बहुधा उनकी प्रवृत्ति भी हुआ करती है, जिस करके अनेक उपद्रवों द्वारा विपत्तियोंमें फँसकर उनको कष्ट भोगना पड़ता है। मादक पदार्थ सेवन करनेवाले उन्मत्तके समान अव्यवस्थित होते हैं, यदि उनको ज्ञान विवेककी बात सुनाई जावे तो वे उनको प्रथम तो सुनते ही नहीं, यदि दैवसंयोगसे सुनभी लें तो उसे समझते नहीं, यदि समझ भी लें तो उनको व्यवहृत करना उनके लिये अत्यंत दुस्तर है। क्योंकि मादक पदार्थ स्वभावतः अपने सेवन करनेवालेको ऐसा अपने वशमें कर लेते हैं कि, उसे कहींका भी नहीं रखते। मादक पदार्थ सेवन करनेवाले मनुष्यसे उसके साथके रहनेवाले, उसके घर अथवा मठके पुत्रादि या शिष्यादि

लोग सदा भयभीत रहते हैं। बाहरके उनसे किसी प्रकारसेभी सम्बन्धरखनेवाले भी त्रास पातेहैं। मादक पदार्थ सेवन करनेवालेस्वभाव से ही निरुद्योगी और आलसी होते हैं इसी कारणसे उनके शिर दरिद्रताकी पगडी बँधती है और दीनता उनके गलेकी हार होती है। दरिद्रता आनेपर जबउन्हें इच्छानुसार मादक पदार्थ प्राप्त नहीं होता है तब वे द्रव्यप्राप्तिके लिये अनेक कुवृत्तिमें फँसकर निर्लज्जतासे अपनी इच्छा पूर्णकरनेका यत्न करते हैं। अन्त में उसीमें उनका अन्त होता है और मादक पदार्थके प्रभावसे अनेक घृणित कठिन रोगोंमें फँसकर अपना जीवन नष्ट करते हैं। मादकपदार्थका व्यसन ऐसा कठिन रोग है कि, उससे छूटना अत्यन्त कठिन है। प्रायः तो उस रोगसे मुक्त होतेही नहीं क्योंकि, लगा हुआ,

व्यसन अपने व्यसनीको ऐसा जकडकर बन्धनमें डालता है कि, उसे छोडनेकी सामर्थ्य नहीं रहती मादक पदार्थ सेवन करनेवाले विद्वानोंके बीचमें बैठकर सभ्यतासे बात करना तो अलग रहे केवल बैठकर श्रवण करना भी नहीं जानते, मादक पदार्थके सेवन करनेवालेकी बातका कुछ ठिकाना नहीं रहता इसी कारणसे उनका कोई विश्वास नहीं करता, केवल मूर्ख देहाती और दूसरे व्यसनियोंके बीचमें बैठकर शिर पैर विना गपाटा मारना और उन्हींपर असभ्य घुडकियों द्वारा प्रभाव जमाना जानते हैं। मादक पदार्थ सेवन करनेवाले, बहुत खानेवाले और क्रोधी होते हैं इस करणसे बाप दादा अथवा गुरु द्वारा प्राप्त मठ और घरके सब द्रव्योंका तत्काळही नाश हो जाता है। मादक पदार्थ सेवन करनेवालोंको अधिक

निद्रालु होनेके कारण घर बाहर सर्वत्र ही चोरोंको उन्हें लूटनेका बडा अवसर मिलता है, मादक पदार्थ सेवन करनेवाले प्रायः नीच दुष्ट और नीच कर्म करनेवाले हुआ करते हैं इस कारणसे मादक पदार्थका व्यसनी उनकी संगति करके अत्यन्त नीच कर्मका कर्त्ता बनता है, मादक पदार्थके प्रतापसे कितने नीच स्थानोंमें गिरते, गहरे पानी आदि प्राणघातक स्थानोंमें जाकर अथवा राजनीति विरुद्ध कार्य करके प्राणान्तकके दण्डको भोगते हैं।

इसी प्रकारसे मादकपदार्थके सेवन करनेके अवगुणका वर्णन कबीरमन्शूर, साखी कबीर भानु प्रकास आदि ग्रन्थोंमें भली प्रकार सत्यगुरु कबीर साहबकी श्रीमुख बाणीके प्रमाण सहित लिखा है, सत्यमार्गीको वहांसे भी देखना चाहिये और उसीकेऊपर चलनेका

प्रयत्न करना चाहिये,जो लोग सद्गुरुको दम भरते हैं सद्गुरु कबीर साहबका नाम लेकर जीवन व्यतीत करते हैं उन्हें सत्यगुरुके वचनका अनादर करके भी अपनेको कबीरपन्थी कहने कहलानेमें लज्जा करनी उचित है। इस हेतु कहता हूँ प्यारे ! और पूज्य सत्य धर्मावलंबियो! मादक पदार्थोंका सेवनकर अपने जीवन और धर्मको नष्ट मत करो, उत्तम मनुष्यशरीररूप रत्नको कौडीके मोल व्यर्थ खराब मत करो।

मांस

मांसकी प्राप्तिके लिये जीवित प्राणियोंको वध करनेकी आवश्यकता पडती है, जिसकारणसे मांसाहारियोंको जीव वधरूप महान् हिंसाका भागी होना पडता है और जीव वध करना कसाई (बूचडों) का काम है इसी कारणसे गुरु कहते हैं कि—

दोहा

जीवत जीव मुर्दा करै,
कर्महि भया कसाई ।

इस कारणसे मांस खाना नहीं चाहिये । परन्तु कितने जिह्वालम्पट नानाप्रकार की मिथ्या वितण्डासे सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं कि हम मारते नहीं विकता हुआ लेकर खाते हैं उनको प्रथम यह विचारना चाहिये कि, जीवधारियोंमें कौन २ प्राणी मांसके खानेवाले हैं और संसारमें सामान्य रीतिसे उनकी प्रतिष्ठा कहांतक होती है ।

पशुओंमें व्याघ्र आदि, पक्षियोंमें गिद्ध और काग आदि और मनुष्योंमें चमार आदि नीच जातिके लोगही मुर्दाको उठाकर ले जाते और खातेहैं। यदि भला आदमी भी वही काम करने लग जाय और

स्वयं मारकर खाने लगजावे तो व्याघ्र कुत्ता लोमडी और बाज आदि अथवा कसाईके पदको प्राप्त होवे और मारे अथवा मरे हुए का मांस खाकर चमारके पदको प्राप्त होता है इसी वास्ते उपरोक्त साखीकी पूर्ति करते हुये गुरु कहते हैं कि–

(शेष अर्द्ध दोहा)

मरा खाय चमार भया ।
अधम कर्मके दाई ॥

उत्तम कुल और बुद्धि पाकरके भी जो मनुष्य जीवहिंसा करते हैं और मांस खाते हैं वे अपने नीच कर्मके प्रभावसे जीवहिंसा कर प्रथम कसाई पश्चात् उसको खाकर चमार होजाते हैं इस कारण किसी मनुष्य अथवा पशु, पक्षी, अथवा कृमि, कीट तथा मंत्स्यादि जलचर इत्यादि किसी भी श्वासधारी प्राणी

को मारने रूप हिंसा कदापि करना उचित नहीं। मारना तो अलग बात है अपने कल्याणकी कामना वाले मनुष्यको किसी जीवधारीको किसी भी प्रकार से अपने जाननेमें दुखाना नहीं चाहिये, सोचना चाहिये कि अपनेको कोई मारने अथवा दुःख देने आये तो कैसा दुःख होता है, इसी प्रकार यदि हम किसीको मारेंगे अथवा दुःख देंगे तो उन्हें भी वैसे ही दुःख होगा। किसी भी चलने फिरने वाले श्वासधारी जीवको मारने और दुःख देनेका नाम ही हिंसा है। हिंसा किया हुआ कदापि क्षम्य नहीं होता, अवश्य इसका फल भोगना होता है। जो जानकरके हिंसा करता है उसका संस्कार उसके हृदयमें बीजरूप होकर रहता है, सो शरीरके नाश होते समय, जीवनमें किये यावत् शुभ अशुभ कर्म हैं सबका स्मरण होता है इसी स्मरण

में शरीर छूटकर अन्य शरीर प्राप्त होनेपर, जिस प्रकार से बीजसे वृक्ष और उसमें फल उत्पन्न होता है, उसी प्रकार अपने किये हुए कर्मरूप बीजद्वारा शरीर वृक्ष उत्पन्न होकर शुभ अशुभ कर्मोंका परिणामरूप सुख तथा दुःखरूप फल उत्पन्न होता है और वह उनके कर्त्ताको अवश्य भोगना पड़ता है उसी भोगनेको यमयातना कहते हैं, इसी प्रकारसे एक जन्मका किया हूआ हिंसादि पाप कर्म अनेक जन्मोंमें भोग करना पडता है। इस हेतु विवेकी पुरुषोंको सदा ऐसा कार्य करना चाहिये जिससे स्वयं और परमात्माको सुखकी प्राप्ति होवे। इसीको परमार्थ कहते हैं और यही कल्याणका मार्ग है।

कोई कोई हठी तर्कवादी मांसभक्षी लोग सिंह गिद्ध आदि हिंसक प्राणियोंका दृष्टान्त देकर कहते हैं

कि, यदि मांस अथवा जीवहत्या अभक्ष्य अथवा पाप उत्पादक होते तो उन प्राणियोंको भी पाप लगता सो उनको विचार द्वारा यह समझना और हठत्याग करके विवेक करना चाहिये कि उन क्रूर तामसी प्राणियोंका प्रकृतिने वही भक्ष्य रचा है और उनका वैसे ही स्वभाव बनाकर उन्हें उनके उपयोगी सामग्री दे दी है उन्हें उन पाशविक धर्मोंको जाननेके सिवाय सारासारविचारिणी बुद्धि (जिससे मनुष्य सर्व प्राणियोंमें श्रेष्ठ कहलाता है,) दी ही नहीं है।

इस कारण उनकी बराबरी न करके विवेकी मनुष्योंको कदापि उनके समान बननेकी इच्छा करनी नहीं चाहिये। कोई २ महाशय वेदादिके आश्रय यज्ञादि कर्मोंमें हिंसा करना सिद्ध करनेके लिये फाँफाँ मारते हैं सो उनका केवल दुराग्रह और छल तथा

वितण्डारूप है। वेद में जो यज्ञादिकोंमें भी पशुओंका स्पर्श करता हुआ अपने आत्माकेसमानही माननेको कहा हैं। जैसा ऋग्वेदमें आश्वलायन शाखाकी दूसरी पंचिकाके आठवें खण्डमें यह कहा है कि—

"पुरुषं वै देवाःपशुमालभेत तस्मादालम्भान्मेध उदक्रामत तस्मात् एतेषां नाश्नीयात्"

इसका आशय है कि, यज्ञोंमें प्राणियोंके हृदयको स्पर्श कर "अपनी नाड़ी रूप धमनीके समान उसकी धमनी है" ऐसा जाने इसीको आलंभन कहते हैं। भला जिन यज्ञोंमें पशुके अंगोंसे अपने अंगकी समता कर उसको अपने समान माननेको लिखा है उनमें हिंसाकर उनके मांसोंका खाना कितना पापरूप होगा। ऐसेही श्रीमद्भागवतेएकादश स्कंधके अन्तर्गत पांचवें अध्या-

यके पंद्रहवें तेरहवें श्लोकमें यज्ञका वर्णन करते हुए कहा है कि, "तथा पशोरालंभनं न हिंसा" इत्यादि वचन कहा है। यज्ञमें जो २ प्राणी ग्रहण किये जाते हैं उन २ पशुओंको लेकर उनका आलंभन अर्थात् स्पर्श करके किसी चिह्नसे चिह्नित करके छोड देवें।

श्वासयुक्त प्राणियोंसे ग्रहण करने योग्य केवल दुग्ध ही है वह उनके बच्चोंकी रक्षा पूर्वक ही ग्रहण करना चाहिये। यज्ञादिकोंमें अथवा किसी अवस्था-नमें भी मांस खाना सदा ही अपवित्र और राक्षस आदि अपवित्र प्राणियोंका कर्तव्य है, क्योंकि, जगतमें प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि, व्याघ्रादि मांसभक्षी पशु क्रूर और निरुपयोगी होते हैं। गाय, भैंस, घोडा, ऊँट, हाथी, बकरा, बकरी आदि पशु मांस भक्षण नहीं करते, केवल अंकुरज वनस्पति आदिकेऊपर ही

जीवन निर्वाह करते हैं वे कैसे शान्त और सौम्य होते हैं। मनुष्योंके अत्यन्त उपयोगी होते हैं।

यह प्रत्यक्ष मांसभक्षी और वनस्पतिभक्षी पशुओं के स्वभावका भेद सबको ज्ञात और अनुभव है। इसी प्रकार जो मनुष्य भी मांस ग्रहण नहीं करेगा वनस्पति नाज आदि पदार्थोंको खावेगा तो उपरोक्त उपयोगी प्राणियोंके समान सर्वको सुखदायक और अपने आत्माका उद्धारक होगा, जो इससे विरुद्ध करेगा वह उपरोक्त मांसाहारी पशुओंके समान हिंसक और निरुपयोगी होगा, मांसभक्षी प्राणियोंके हृदय में दयाका तो मूल ही नहीं होता। उनके मुखसे दया प्रगट करना अथवा वेष बनाना वैसे है जैसे कोई बिल्ला साधुवेष बनाकर चूहोंकी रक्षाकी प्रतिज्ञा करे, सो ये सब बातें कपट मात्र ही हैं।

मनुष्य सर्व प्राणियोंका राजा है ऐसा सर्व धर्म-वालोंने माना है। अरबीमें भी इसे 'अशरफूल मखलूकात' कहते हैं। राज्यनाम है, प्रजाकी रक्षा करनेवालेका अथवा—"अशरफ" कहते हैं सर्वमें श्रेष्ठ होवे उसको। यदि मनुष्य राजा और श्रेष्ठ होकर भी प्रजाको अथवा अपनेसे दीन दुखियोंको दुःख देवे अथवा मारकर खावे तो उसको श्रेष्ठ कैसे कह सकेंगे! इस हेतु जो मनुष्य कहलानेका अभिमान रखता हो अर्थात् अपनेको मनुष्य कहता हो उसे उचित है कि मांस कभी भक्षण न करे, किसी प्राणीको दुःख न देवे वरन् प्राणियोंको दुःख देनेवाले और उनकी हिंसा करनेवालेको युक्तिपूर्वक उन दुष्ट कर्मों से रोकनेका यत्न करे तभी इसके श्रेष्ठ और राजपद की रक्षा हो सकती है। नहीं तो निर्दई राक्षसके

सिवाय इसका दूसरा क्या नाम हो सकता है। इस हेतु कभी मांस खाना उचित नहीं।

ईश्वरकी आज्ञा अर्थात् प्राकृतिक नियम Nature) द्वारा भी मनुष्य मांसहारी बनाया गया हो सो नहीं जान पडता। क्योंकि जिस समय मनुष्यकी उत्पत्ति होती है उस समय इसके न तो कोई हथियार होता है न इसको मां सादि खानेकी सामर्थ्य होती है। अर्थात् इसके शरीरकी बनावट द्वारा प्रत्यक्ष सिद्ध है कि, यह मांस खाने और शिकार करने योग्य नहीं बना है। केवल स्वयं उत्पन्न हुए अंकुरज पदार्थों को उखाडकर अथवा अन्य फल मूलादि हाथसे तोडकर खानेके योग्य ही इसके हाथ और दांत आदि अवयव बने हैं। यद्यपि अब खेती आदि द्वारा यह उन्हीं नाजोंको उत्पन्न करता है और

उनके उपयोगी नाना प्रकारकी सामग्री फल आदि भी इसने बनाया है। परन्तु प्राकृतिक नियम द्वारा तो केवल स्वयम् उत्पन्न वनस्पतिके ही खाने योग्य बनाया गया है। यदि सर्व प्रकारकी सामग्री इससे छूट जावे:और केवल यही जंगलमें रह जावे तो उस समय यह अपने हाथों द्वारा फल फूल आदिको ग्रहण कर जबडोंसे चबाकर भक्षण करेगा !

इस प्रकारसे ईश्वरीय नियम द्वारा यह मनुष्य मांसाहारी कि, शिकारी उत्पन्न नहीं हुआ है इस बातका विचार बारम्बार करनेसे भली प्रकार सिद्ध हो जावेगा कि, मांस खाना मनुष्यकी प्रकृति (Nature) के विरुद्ध है।

मनुष्य सब प्राणियोंमें केवल विचार शक्तिके कारण ही श्रेष्ठ है इसलिये विचार करही सदा कार्य करना

इसका परम धर्म है। यदि मनुष्य अपने शरीर अथवा पुत्र आदिकी रक्षा अथवा सुखके लिये निर्दयी होकर परप्राणियोंको दुःख देगा, अथवा उसका मांस खायेगा तो हिंसक पशुओं और राक्षसोंमें और इसमें क्या भेद होगा ? क्योंकि, व्याघ्र आदि हिंसक पशु और राक्षस आदि हिंसक प्राणधारी भी अपने शरीर और अपनी सन्तानके मोहमें रहकर अपने और अपनी संतानकी रक्षा करते हैं और अन्य गाय आदि प्राणियों तथा उनकी संतानके ऊपर दया नहीं रखते उन्हें मारकर खाते और अपने बच्चोंको खिलाते हैं। इस हेतु मनुष्योंको सदा दयायुक्त रहना चाहिये, जिसके हृदयमें दया नहीं है वह सर्व प्राणियोंमें 'आत्मवत्सर्वभूतेषु' की दृष्टि कदापि स्थापित नहीं कर सकता। और ऐसे हुए बिना गुरुकी भक्ति

होना कदापि संभव नहीं। गुरुकी भक्ति विना भयका छूटना अत्यन्त दुस्तर है और मनुष्यशरीरमें यदि यह प्राप्त नहीं हुआ तो मनुष्यजन्म ही निष्फल है।

इस कारण मनुष्यजन्मकी सार्थताके हेतु मनुष्यको अवश्य दयावान और सौम्य होना चाहिये। सो मांस त्यागे विना दया और साम्यताका आना दुस्तर है।

कितने मूर्ख यह कहते हैं कि, इस जगत्में पशु की वृद्धि हो जानेसे मनुष्यको दुःखदायी हो जावेगी इस हेतु इनको मारकर खाना चाहिये। सो यह कहना अत्यन्त मूर्खताभरी बात है, क्योंकि, ईश्वरीय नियम ही ऐसा नहीं है कि, किसीकी मर्यादासे अधिक वृद्धि होजावे परन्तु परमात्माकी सृष्टिमें कोई पदार्थ भी मर्यादासे बाहर नहीं जाते। जहां जिसकी वृद्धि होती है यहां ही उसका नाश भी हो जाता

है। देखो महाभारतके पश्चात् यादवोंकी अत्यन्त वृद्धि हुई तो उनका नाश भी ऐसा हुआ कि, फिर नाम लेवा पानी देवातक भी कोई नहीं रहा। वर्तमानमें भारतवर्षमें मनुष्योंकी वृद्धि विशेष हो रही थी तो ईश्वरने प्लेग और अकाल आदि द्वारा इनका संहार करके इनकी गिनतीको बराबर करनेका विचार किया है। इस हेतु हे विचारवानो! यदि आपको अपने कल्याणकी इच्छा हो तो सर्व कुतर्कोंको त्यागकर मांस मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थोंसे दूर रहिये।

जिन धर्मशास्त्रों और धर्म-ग्रन्थोंमें हिंसा करना मांस खाना अथवा और किसी प्रकारसे भी मद्य-मांसका उपयोग लिखा हो उनको धर्मग्रन्थ कदापि नहीं जानना वरन् ऐसा जानना कि मांस खानेके लालची, मर्यादा,हीन, अज्ञानी, नास्तिक, वाममार्गी

और पशुओंके वैरी मिथ्या विषयमें रमण करनेवालों ने लिखाहै उनकी धूर्ततामें कदापि मत आना और ऐसी बात यदि वह वेदकी गाथाओंमें अथवा साक्षात् सद्गुरुके नामकी छाप सहित वाणीमें मिले तो उसे भी अत्यन्त तुच्छ जानकर सदा ही त्याग करना।

माखन यदि निकालनेके पश्चात् तत्काल ही खा लिया जावे तो कोई हर्ज नहीं परंतु माखन निकाल कर दो चार घडी तक रक्खा रहे और वह न काममें लाया जावे न तपा लिया जावे तो तीन घडी अर्थात् सवा घण्टे पश्चात् उसमें ऐसे सूक्ष्म और सजीव परमाणु आकर इकट्ठे हो जाते हैं, कि जिसमें तपाये विना उनका उपयोग करनेसे कभी अनेक विकार उत्पन्न होनेका भय है। उसमें उत्पन्न हुए सूक्ष्म जन्तुओंकी हिंसा द्वारा महापाप होना संभव

है इस कारणसे माखनको छांछसे निकालकर तत्काल ही खा लेवे अथवा तपाकर उसका घी बनाकर खावे।

माखनमें ऐसे अवगुण होनेके कारण उसे अभक्ष्य कहा है।

मधु

मधु-की प्राप्तिमें अनेक जीवोंकी हत्या होती है और हाड बिना अनेक मक्खियां उसमें निचोडी जाती हैं, जिससे उनके शरीरका अर्क भी मधुमें आजाता है इस कारण उसके भक्षण करनेसे अनेक हत्याओंका सम्भवहै। इसीहेतु इसको अभक्ष्य कहा। इसी प्रकार--सिरफा, बर्फ, बनौरी आदि पदार्थ तथा जिन वनस्पतियोंमें कीडे पडे हों, जो सड़ गये हो, दुर्गंधि आती हो. ठंडा भात-(चावल) , ठंडी रोटी, दाल और शाक आदि जिनको बने हुए बहुत

देर हो गई, जिनका रस ठण्डा पड गया हो ऐसे भी पदार्थ अभक्ष्य हैं ।

देखो भावप्रकाशमें माखनका गुण इस प्रकार लिखा है।

नवीननवनीतगुणाः

नवनीतमिदं नवमेव हितं हिशुक्रमबलानल-कान्तिकरम् । ग्रहणात्मकमर्दितपित्तमरुद्गुदज-क्षतजक्षयकासहरम् ।

अर्थ--ताजा माखन हितकारी, शीतल, शुक्र-जनक, बलकारक, अग्निदीपक, कांतिकारक तथा संग्रहणी लकवा, पित्त, वात, गुदरोग, क्षतरोग, क्षयरोग और खांलीको दूर करता है और पुराना अर्थात् १ घंटेके पश्चात्का नवनीत–

सक्षारकटुकाम्लत्वाच्छर्द्यर्शः कुष्ठकारकम् ।
श्लेष्मलं गुरु मेदस्यं नवनीतं चिरन्तनम् ॥

अर्थ-पुराना माखन--खारा, चरपर, खट्टा, वमन-

कारक, बवासीरको उत्पन्न करनेवाला, कुष्ठकारक, कफकारी, भारी और मेदको उत्पन्न करनेवाला है।

यह तो संक्षेपमें भक्ष्याभक्ष्यका विचार लिखा। अब यहांसे भोजन बनाने और खानेका थोडासा वर्णन करूगा।

भोजन बनानेका स्थान

सबसे प्रथम भोजन बनानेके स्थानको शुद्ध और स्वच्छ रखना चाहिये।

सूर्य निकलनेके प्रथमही घरके दास दासी अथवा घरकी अपनी स्त्री अथवा मठ और मंदिरोंमें जिनको झाड़ू बहारू और चौकेका काम सुपुर्द किया गया है, उठकर सब घरोंको बराबर देखकर सुमिरण* पढते हुए झाड़ू देना चाहिये। कितने निर्दयी ऐसे होते हैं

१ सर्व प्रकारका सुमिरग अष्टम विश्राममें देखो।

कि, चौके आदि स्थानोंमें जूठन आदि गिरनेके कारण अथवा गच आदिकी ठंडीके कारण चींटी आदि सूक्ष्म कीडे इकट्ठा होजाते हैं, उनकी ओर दृष्टि न देकर अन्धाधुन्ध बुहारते हैं जिससे सहस्रों जीवों-की हत्या होती है सो झाड़ू देनेवालों लीपने और चौका देनेवालोंको उचित है, कि खूब सावधानीके साथ अपना काम करें। झाड़ू देने और लीपनेके समय सुमिरण बोलते जावे। बरतनोंको भी मिट्टी और राखसे पानीके साथ खूब धोना और स्वच्छ करना चाहिये। लकडी अथवा छान (कंडा) आदि जलावन काम लाते समय खूब देख लेना चाहिये। जो सावधानीसे जलावनको देखकर नहीं जलाते उनको अन्त जीवोंकी हत्याका पाप लगता है।

जल स्वच्छ और दुर्गंधिरहित लेना चाहिये।

जल भरते समय जलका सुमिरण* बोले फिर जलको लेकर छान लेवे, जल छानते समय भी जल छान॰ नेका सुमिरण बोलना चाहिये।

चावल, आटा, दाल, शाक आदि भोजनकी सर्व सामग्रियोंको भली प्रकारसे अमनिया कर लेना अर्थात् उनमेंसे घुन, कीडा तथा कंकरी आदि भले प्रकारसे चुनकर साफ़ कर लेना चाहिये।

चूल्हा बारते समय, चूल्हा फूकनेका सुमिरण पढना चाहिये। पश्चात् पाककी विधिसे खूब साव-धानी पूर्वक रसोई बनानेका सुमिरण बोलता हुआ रसोई बनाना आरम्भ करे।

बड़ी सावधानीके साथ भी गृह व्यवहार करनेपर गृहस्थ (मठधारियों) के घरमें अथवा जो रसोई

---

* सर्व प्रकारका सुमिरण अष्टम विश्राममें देखो।

बनानेवाले हैं उनसे पांच पाप अवश्य होते हैं जैसाकि

साखी

चौके चींटी चूल्हे घुम,
किरम बहुत जो नाज ।
कहैं कबीर आचार यह,
जीवको होय अकाज ।
सत्य कबीरकी साखी पृ० २६१ ॥

तथा

कण्डनी पेषणी चुल्ली,
उद कुंभी च मार्जनी ।
पांच सूना गृहस्थस्य,
ताभिःस्वर्गं न विन्दति ॥

अर्थ

चक्की चौका चूल्ह महँ,
झाड अरु जल थान ।

गृह आश्रमी को नित्त है
पाप पंच विधि जान ॥
कबीर भा० प्र०

अर्थ गृहस्थ * पुरुषोंके गृहविषे नित्य पांच स्थानोंमें हिंसा हुआ करती है–

१ ऊखल और ढेकीके कूटनेसे हिंसा होती है।

२ चक्की में अन्न पीसनेसे जीवोंकी हिंसा होती है।

१ रसोई बनानेके हेतु चूल्हेमें अग्नि बालनेसे हिंसा होती है।

३ जल भरनेमें, जल रखनेके स्थानमें बर्तन मांजने और कपडा आदिके धोनेमें।

---

* मठ आदि भी गृह हैं और वहां भी यह पंच पाप नित्य होते हैं, इस कारण मठधारियों अथवा यों कहा जावे कि; जो रसोई बनावे उन्हें भी उन पापोंका भागी होना पडता है।

५ मिट्टी आदिसे घरको लीपने अथवा झाड़ू आदिसे बुहारनेमें ।

ये पांच पाप गृहस्थोंके घरमें नित्य होते हैं। और ये पाप ऐसे हैं कि चाहे मठधारी महात्मा हो अथवा गृहस्थ कोई भी क्यों न हो घरमें रहने और रसोई बनानेसे ही उसे यह पाप लगेंगे। इसका निवारण भी शरीर रहते नहीं होता। इस कारण इनपापोंसे बचनेके लिये नित्य बलि वैश्यदेव आदि पञ्च महायज्ञ करनेके विधान पूरा २ कबीर मन्शूरमें देखो।

उनमेंसे प्रधान ये हैं-

भोजन पाके निहारिके
इत उत द्वारे झांक।
अभ्यागत भूखा निरखि,
मारे ता छन हांक॥

भूखा साधु भिकारि कोइ,
जब आवै नहि द्वार।
ताते मन पछताइ बड़,
करत अकेल अहार॥

क० भा० प्र०

आशय यह है कि जब गृहस्थ अथवा मठधारियोंके घरमें भोजन तैयार हो जावे तब प्रथम साधु अभ्यागतोंको भोजन कराले पश्चात् आप भोजन करे। यदि कोई साधु अभ्यागत स्वयम घरपर नहीं आया हो अथवा एक दो दिन पहलेका आया हुआ हो तब भोजन तैयार हो जानेपर द्वारपर खड़ा होकर इधर उधर चारों ओर यदि कहीं भूखा दीन दुखिया अथवा साधु देख पड़े तो उसे प्रेमके साथ बुलाकर लावे और भोजनसे तृप्त करावे। जो गृहस्थ अथवा मठधारी

ऐसा किये बिना अपने ही लिये भोजन बनाकर खा जाता है वह पापका भागी होता है। भोजन तैयार हो जानेपर अतिथिको अवश्य भोजन करना चाहिये। अब अतिथि किसे कहते हैं उसे जानना चाहिये।

जो आदमी दूर मार्गसे चलकर आया हो, थका हो, भोजनके समय आया हो, उसे अतिथि जानना। ऐसे अतिथियोंमें यदि चोर, चांडाल, शत्रु, पितृ-घाती-नास्तिक कैसा भी क्यों न हो, भोजन समय आनेहीसे अपनेपुण्योंका फल जानकर उसकी जाती गोत्र वर्ण; आश्रम, धर्म आदि कुछ न पूछे वरन भोजन करा देवे।

इस प्रकार जो गृहस्थ अथवा मठधारी अथवा मार्ग चलते भी रसोई बनानेवाला प्राप्त हुए अतिथिकी सत्कार पूजा नहीं करता है केवल अपने उदर भरनेके

ही लिये अन्न बनाता है उसे दुष्ट और पापी जानना इसी प्रकारसे एक पंगतिमें बैठकर भेद करता है अर्थात् स्वयम् अथवा अपने सम्बंधियोंके आगे तो उत्तम २ पदार्थ रख लेता है और दूसरोंके आगे उससे न्यून धरदेता है वह पापीभी दुष्टोंकी पंगतिमें गिना जाता है इस कारण पंक्तिभेदभी कदापि नहीं करना।

जिस दिन कोई भूखा, गरीब, भोजन करनेको न मिले उस दिन अकेला भोजन करनेके कारण पश्चात्ताप करे और कुछ तैयार भोजनमें लेकर गौ कुत्ता आदि प्राणियोंके हेतु निकाल देवे। अतिथि न मिलना अपने किसी जन्मके पापका उदय समझ कर हृदयसे विनीत भावके साथ सद्गुरुके आगे प्रार्थना करके अपना अपराध क्षमा करावे।

सदा छल कपट और बनावट दम्भको त्यागकर

साधु अभ्यागतोंको भोजन कराया करे। जब साधु अभ्यागतोंको भोजन कराने लगे तब उसकी ओर देखकर अथवा किसी प्रकारसे भी ग्लानि अथवा घृणा मनमें उत्पन्न न होने देवे। भोजन करनेवालोंको तुच्छ न समझे यदि मनमें किसी प्रकारकी ग्लानि अथवा घृणा लावेगा अथवा भोजन करनेवालेको तुच्छ समझेगा तो उसके सर्व सुकृत नाश होकर पापका भागी होना पडेगा, मनमें कभी यह अभिमान न लावे कि, मैं इन्हें भोजन कराता हूँ अथवा अमुकको मैंने इतना कुछ खिलाया है वरन् अपने मनमें उस भोजन करनेवालेका कृतज्ञ होवे कि, उसने कृपा करके भोजन स्वीकार किया। सर्व धर्मोंके साधु और भूखोंको भोजन देना उचित है और स्वधर्मके साधु और दुःखी-

योंके लिये कहनाही क्या है उसकी मदद सर्व प्रकारसे करनी चाहिये ।

उपरोक्त रीतिसे अतिथि सत्कार कर लेने पश्चात् सुन्दर कांसे आदिके वर्तन अथवा पात्रमें सुमिरण* मनही मन बोलता हुआ पारस करे ।

प्रथम अपने इष्टदेवको स्मरण करता हुआ अर्पण करनेका सुमिरण मनही मन बोले ।

चुल्लूमें लेकर अर्पण करे पश्चात् गुरुका ध्यान कर जहांतक होसकेशांतिके साथ मौन धारण कर भोजन करे । भोजन जहां तक होसके एकान्त अथवा अपने इष्ट मित्रोंके बीचमें बैठकर करना चाहिये । दुष्ट शत्रु हिंसक आदि प्राणियोंके संमुख भोजन करना उचित नहीं । यथेष्ट मिताहारके नियमानुसार भोजन करके

---

* सुमिरण देखो अष्टम विश्राममें ।

सन्तुष्ट होनेपर सुमिरण पढता हुआ जल पीवे पश्चात् सुमिरण पढके आचमन करे। फिर शांतिके साथ धीरे धीरे उठकर हाथ मुखको अच्छी तरह धोकर सुमिरण करता हुआ अपने इष्टदेवकी बन्दगी करे।

पश्चात् यदि पान सुपारीकी आदत होवे तब पान पावे और सुपारी फोड़नेका सुमिरण बोल कर इनको भी पावे।

अब भोजन सन्बन्धी आवश्यकीय बातोंको लिखकर इस विश्रामको समाप्त करूंगा।

एक प्रहरमें दो बार भोजन करे और दो प्रहर तक भूखा न रहे। क्योंकि, प्रथम प्रहरमें भोजन करनेसे उत्तम रसकी उत्पत्ति होती है। दो प्रहर तक भोजन न करनेसे बल घटता है। असली तो भोजनका समय वही है. जिस समय भूख लगे,

तथापि नित्य सवेरे और सांझको भोजनका समय नियत कर लेनेसे बहुत लाभ है ।

नियत समय पर और भूख लगे रहनेपर भोजन करनेसे बल बढता है, तृप्ति, कांति और सुख प्राप्त होता है, संक्षेपतः यह है कि, आहार प्राणोंकी रक्षा द्वारा संपूर्ण पदार्थोंका देनेवाला है ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राणाः संस्थितिहेतवः ।
तान्निघ्नता किन्न हतं रक्षता किन्न रक्षितम् ॥

सत्यगुरु कहते हैं-

साखी

पांचों कुतिया रामकी,
करत भजनमें भंग ।
ताको टुकडा देइके,
पाछो करो संतसग ॥

यद्यपि भोजनद्वाराही प्राणोंकी स्थिति है तथापि जिस प्रकार यथोचित रीतिसे किया हुआ प्राणकी रक्षा करनेवाला है उसी प्रकारसे विना भूखके अथवा मिताहारके नियमोंके विरुद्ध प्राणको नाना प्रकारके रोगों द्वारा कष्ट देने और कभी २ नाश करनेका भो कारण होता है।

उपर्युक्त साखीमें सत्यगुरुने भोजनकी साधनाका वर्णन किया है। क्योंकि भोजनकी साधना प्रधान साधना है भोजनसेही देह प्रतिपालित होती है और भोजनहीके गडबड होनेसे मनुष्य मरभी जाता है। इन कारणसे सर्व लौकिक पारलौकिक सुखोंकी कामना रखनेवाला, मोक्षकी इच्छा करनेवाला पुरुष सबसे पहले मिताहार करे। मिताहार करनेसे सदाके

आरोग्यता बनी रहती है। मिताहार करनेवाले मनुष्यको वैद्यकी आवश्यकता नहीं है।

मिताहार

शुद्ध, सुन्दर, मधुर (जो खानेमें मीठा हो), स्निग्ध (जिसमें रूखाई न होवे), सुरस (जिसका चाहनेवाला प्रीतिपूर्वक प्रसन्नचित्त होकर ग्रहण करे। पेटके चार भाग करके आधा तो अन्नसे, चौथाई जलसे भरे और एक चौथाई वायुकेसंचारके लिये छोड़ दे। इस प्रकार भोजन करनेवाला पुरुष सदा तपस्वी है। और आरोग्यता तो उसके घरकी प्रधान दासी होती है। मिताहारके अतिरिक्त विषम आहार अर्थात् इतना थोड़ा जिससे तृप्ति न होवे अथवा इतना अधिक जिससे अजीर्ण आदि विकार उत्पन्न हो

सदा ही दुःखहारी होनेके कारण वर्जित हैं।

आहारमें सदा ध्यान रखने योग्य चार बातें।

१ आहारकी सामग्री अत्याचार और अन्यायसे प्राप्त न की गई हो।

साखी

जैसा अन्न जो खाइये,
तैसी ही बुधि होय,।
जैसा पानी पीजिये,
तैसी वाणी सोय।

सत्य कबीरकी साखी।

२ अभक्ष्य पदार्थ न हो।

३ प्रकृति, काल, देश, धर्म और समाजके विरुद्ध न हो।

४ रुचिकारक होवे।

भंडारोंके ध्यान देने योग्य चार बातें।

१ नमक मसाला अन्दाजसे हो।

२ भोजनके पदार्थ शुद्ध और स्वच्छ हों।

३ बाल अथवा तृण आदिसे शुद्ध हों।

४ वर्तन, चौका, पीढा, मकान आदि सब स्वच्छहों।

भोजनके समय ध्यान योग्य देने २६ बातें।

भोजनका आरम्भ सदा ही सत्य पुरुष परमात्माका नाम लेकर करना चाहिये और समाप्तिपर भी धन्यवाद करना चाहिये।

२ यदि पाहुना हो तो पंगतमें बैठकर प्रथम ग्रास न उठाओ और यदि बारीक हो तो स्वयम् अथवा अपने श्रेष्ठोंसे ग्रास उठवावे।

३ भोजन करते समय पूरी सावधानी रक्खे कि, कपडा आदिके ऊपर जूठा और जल आदि न गिरे

अथवा अपने हाथ अथवा अपने आगेसे एक दाना 'अथवा कुछ पदार्थ दूसरोंकी ओर न जावे जिसमें वह क्रोधित होवे ।

४ हाथ और मुख अथवा दाढी तथा जल पात्र आदि असभ्यतासे जूठनसे न भर ले ।

५ ग्रास बहुत बड़ा न उठावे ।

६ ग्रास लेते समय मुँह अधिक न खोले ।

७ भोजनसे मुँह भरकर गाल फुलाकर हाउके समान न बनावे ।

८ ग्रास मुंहमें रखकर शीघ्रताके साथ निगल न जावे। उसे यथायोग्य चबाकर कण्ठसे उतारे क्योंकि ऐसा करनेसे आंतको दांतका काम करना पड़ता है जिससे भोजन बराबर न पचकर अजीर्ण हो जाता है अथवा मल पड़ जाता ।

उंगलियों और हथेलीको न चाटे तथा थाली अथवा पत्तलको धोकर अथवा पोछकर न खाने लग जावे। क्योंकि यह चिह्न अकाल पीड़ित भूखे भिख मंगे और दरिद्रोंके हैं।

१० भोजनकी सर्व सामग्री दाल, शाक, चावल आदि सब पदार्थोंको घोल अथवा मिलाकर न खावे क्योंकि ऐसा करनेसे परसमें बैठे हुए दूसरे मनुष्योंको घृणा उत्पन्न होती है।

११ नाकसे लगाकर भोजनके पदार्थोंको न सूंघे क्योंकि यह स्वभाव पशुओंका है।

१२ कोई बडी वस्तु रोटी आदि समूचीकी समूची उठाकर दांतसे काटने न लग जावे वरन हाथसे तोडकर मुखमें डालकर खावे।

१३ पत्तल या थालीमें बचे हुए जूठनको खाने

की नियतसे न रक्खे वरन भूखे दरिद्र दुःखियोंको दे देवे क्योंकि अपनेसे अधिक बचा हुआ पदार्थ उन्हींके भाग्यका है ।

१४ एक पदार्थ दूसरे पदार्थसे मिलने न देवे वरन सभीको भिन्न २ रक्खे ।

१५ दूसरोंके आगे धरे हुए भोजनपर दृष्टि न डाले।

१६ औरोंके आगेकी वस्तु अपनी और न खींचे न अपने पत्तलसे कोई पदार्थ दूसरोंके आगे डाले ।

१७ किसी फलादिकी गुठली आदिको इधर-उधर न फेंककर अपने निकटही पत्तल अथवा थालीसे बाहर जमा करते जावे और भोजन कर लेनेपर योग्य स्थानपर फेंक देवे ।

१८ भोजन ऐसी रीतिसे करे कि, पीछेसे बचे हुए जूटनके खानेवालोंको घृणा न होवे ।

१९ यदि पाहुना होतो सबके साथ २ स्वयंभी भोजनसे हाथ बन्द कर लेवे परन्तु औरोंके खाते हुए अपना हाथ खानेसे रोक लेना अथवा सबके पाकर हाथ खींच लेनेपर आप पाते रहना ये दोनों ही बातें मूर्खता और अज्ञानताके चिह्न हैं परन्तु यदि आपही खिलानेवाला (बारीक) हो तो अवश्यही देर तक पाता रहे जिससे सब अच्छी तरह सन्तुष्ट हो जावें।

२० पाते समय ऐसा मुंह न चलावे कि उसका शब्द दूसरोंके सुननेमें आवे, क्योंकि यह लक्षण कुत्ते बिल्लियोंके हैं।

२१ मुखमें ग्रास लेकर किसीसे बात न करे। भोजन करता हुआ हंसी मसखरी अथवा क्रोध करना मूर्खता है।

२२ जल पीते समय मुख और गर्दन आकाशकी

और न उठावे न इस प्रकारसे जल पीवे जिससे इसके मुख और कण्ठका शब्द दूसरोंको सुन पडे। एकदम भी जल न पीवे वरन ठहर ठहर कर पीवे। बर्तन जहांतक होसके पात्र मुंहसे लगाकर न पीवे ऊँचा करके न पीवे। जल मुंहमें हिलाकर न पीवे, ऐसा करनेसे मुंहका मल अन्दर जाकर विकार करता है।

२३ आवश्यकता विना शर्बत आदि पदार्थ केवल हौससे ही न पीवे। क्योंकि स्वाभाविक भोजनके अतिरिक्त जो कुछ है सब औषधि है सो औषधि रोग विना ग्रहण करना स्वयम् रोग बुलाना है। मदिरा, भांग आदि निषिद्ध पदार्थोंका कभी सेवन न करे। ऐसे पदार्थोंके सेवन करनेवालोंकी संगतिकी सदाही उपेक्षा करता रहे।

२४ भोजन करके पश्चात् हाथ, मुंह, नख, दांत

होठ और दाढी आदिको अच्छी तरह साफ करे, पानी गिरा कर घर और सूखी जगहको गंदी न करे।

५५ हाथ धोनेके समय (यदि एक ही जगह हाथ धोना हो) तो सबके आगे निकलकर पहले आपही धोनेकी असभ्यता न दिखलावे।

२६ पान और सुपारी आवश्यकताके समय खावे, सदाही मुंहमें दबाये न रहे। न बैलोंके समान मुँह चलाता रहें। गुरु, पिता आदि शिष्टपुरुष अथवा अन्य किसी भी प्रतिष्ठितके सन्मुख न खावे। पानकी पीक अथवा थूक आदिसे दीवार अथवा स्वच्छ स्थानोंको मैला न बनावे,

इसके अतिरिक्त इन बातोंकाभी ध्यान रक्खे भोजनके पूर्व भक्षणीय

भोजन आरम्भ करनेके प्रथम, सेंधा निमक और

अदरख खानेसे भोजनमें रुचि बढती है, भूख तेज होती है तथा जीभ और कण्ठका शोधनभी होता है।

भोजन क्रम

भोजनमें प्रथम रोटी आदि कठिन पदार्थ घीसे चुपडे, अथवा मोहन भोग (शीरा) आदि घीवाले पदार्थ खाना चाहिये। मध्यमें भात, दाल आदि जैसे पदार्थों, पश्चात् छांछ दही अथवा दूध पीवे। इस प्रकारसे भोजन करनेसे बल और अरोग्यता कभी भी नष्ट नहीं होती किन्तु सदैव ही बनी रहती है।

भोजन करते समय आगे आये हुए पदार्थोंमें जो जो वस्तु बहुत स्वादिष्ट हों उनको पीछेसे खावे।

अति गरम अन्न बलका नाश करता है और शीतल पदार्थ पचनेमें बहुत देरी लगती है और

अत्यन्त गीला अन्न ग्लानि उत्पन्न करता है इस कारण योग्यायोग्य विचारकर भोजन करना चाहिये।

आत्यन्त देरी अथवा अत्यन्त जल्दीमें भोजन करना नहीं चाहिये क्योंकि देरीसे भोजन करनेसे रसोई ठंडी और स्वादरहित हो जाती है और जल्दी खा लेनेसे एक तो भोज्य पदार्थका स्वाद और गुण दोष नहीं मालूम होता है और न वह अच्छी तरह चबायाही जाता है जिससे उसको पचानेमें जठराग्निको कठिनता पडती है।

जल

अत्यन्त जल पीनेसे अन्नका पाचन नहीं होता,

और विना जल पिये भी पाचन नहीं होता, इस कारणसे भोजनके समय प्यास लगनेपर थोड़ा थोड़ा जल पीवे परन्तु भोजनके प्रथम ही जल पीनेसे शरीर में

दुबलापन और मन्दाग्नि होती है और अन्तमें जल पीनेसे शरीर मोटा होता और कफ बढता है और मध्यमें जल पीना सबसे उत्तम और आदिमें जल पीना सदा निषेध और अन्तका अपनी आदतके अनुसार है।

तृषा अर्थात् जिस समय प्यास लगी हो तो जलके बदले भोजन न करे और भूख लगनेमें भोजनके बदले जल न पीवे क्योंकि प्यासमें भोजन करनेसे गलेका रोग होता है और भूखमें जल पीनेसे जलन्धरका रोग होता है।

नित्य, एक ही प्रकारका भोजन न करे, नित्य २ कुछ परिवर्तन करता जावे। भोजनके अन्तमें दही न खावे, दूध पीनेका हर्ज नहीं, दही खाना हो तो प्रथम ही पावे।

भोजन कर लेनेके पश्चात् भली प्रकारसे कुल्ला करके मुख और दांतोंमें लगे अन्नके कणोंको निकालकर मुख स्वच्छ कर लेवे। यदि कुल्ला करनेपर भी दांतोंमें लगे हुए अन्नके कणें न निकलें तो तिनकेसे उन्हें निकाल देवे। परन्तु तिनका करते समय मसोंडोंका विचार रक्खें।

दाख आदि मेवे, फल, ईख, दूध' कन्द, घृत, दही, पान, औषधि और विशेष घीके संयोगमें बने हुए मोहन भोग आदि पदार्थोंका भक्षण करने पश्चात् न तो जल पीवे न बहुत कुल्ला करे क्योंकि ऐसा करनेसे श्वासकासादि रोगोंका भय रहता है।

भोजन करनेके पश्चात् हाथोंको धोकर गीले हाथों से नेत्रोंको स्पर्श करे और बायां हाथ पेटपर फेरे।

पश्चात् पान आदि यथा प्राप्त खाकर अपने

कामोंमें लगे परन्तु पान सुपारीकी आदत न डाले भोजन करनेके कोई कठिन परिश्रम न करे। बरन् भोजन करके पश्चात् सौ पग चले जिससे अन्न स्थित होकर कमर, ग्रीवा, जानुको सुख मिले और रगें सीधी होजावें। क्योंकि भोजन करतें समय इनके ऊपर विशेष बल पडता है।

इति श्रीकबीरोपासनापद्धति अन्तर्गत भोजन–
विचार नामक पंचम विश्राम समाप्त।

अथ षष्ठ विश्राम ६.



भोजनके पश्चात् गृहस्थ अपने संसार यात्राके काममें लगे और साधु अपने कथा क़ीर्त्तनमें लगे।

साखी

कथा कीर्तन कलिविषय, भवसागरकी नाव। कहैं कबीर या जगत्में, नहीं और उपाव॥ कथा कीर्तन करनकी, जाकी निशिदिन रीति। कहैं कबीर वा दाससो, निश्चय कीजे प्रीति॥ कथा कीर्तन छांडिके करै जो और उपाव। कहैं कबीर ता साधुके, पास कोइ मति जाव॥ कथा कीर्तन रातदिन, जाके उद्यम एह। कहैं कबीर ता साधुके, चरण कमलकी खेह॥ कथा करो कर्तारकी निशिदिन सांझ सकार। कामकथाको परिहरो, कहैं कबीर विचार॥ काम कथा सुनिये नहीं, सुनिके उपजे काम। कहैं कबीर विचारके बिसरि जाय हरिनाम॥ कथा करो कतार्रकी, सुनो कथा

कर्तार । आन कथा सुनिये नहीं, कहैं कबीर विचार॥ अन्य कथा अंतर पडे, ब्रह्म जीवनके सोय । कहैं कबीर यह दोष बड, सुनि लीजै सब कोय॥ कथा कीर्तन कलि विषे, यहि तरवेको उपकार । सुने सुनावे और को, यहि उपदेश हमार। कथा कीर्तन करनको, जो कोई करे सनेह । कहै कबीर ता दासको भक्त नहीं सन्देह ॥

सत्य कबीरकी साखी

साधुको कथा कीर्तनद्वारा सदा अपने तथा संसारके कल्याणका उपाय करना चाहिये। जो संत इस प्रकार अपने धर्मको समझते हैं वे सदा कथा, कीर्तन भजन स्मरण और विवेक वैराग्यमें ही अपना जीवन विताते हैं और जो अत्यन्त विरक्त हैं वे भी अधिकारी जनोंको संसारसे तारने और उपदेश करनेका

कार्य कदापि त्याग नहीं करते। ऐसे महापुरुषोंकी सेवा भक्ति गृहस्थोंको सदा उचित और अवश्यमेव कर्तव्य धर्म है।

जो गृही सन्तोंकी सेवा नहीं करता और जो साधु भजन अनुराग और संसारको कालके जालसे छुड़ानेके प्रयत्नमें नहीं रहता दोनोंही अपने धर्मसे भ्रष्ट नरकगामी होते हैं।

साखी

गिरहीहो चिन्ता धनी. वैरागीको भीख। दोनों कातिहि बिचजीव है, देहु न सन्तो सीख॥ वैरागी तो विरक्त भला, गिरही चित्त उदार। दोऊ चूकिखाली पडे, ताको वार न पार॥ घरमें रहै तो भक्ति करु, नातर करु बैराग। बैरागी होय बन्धन करे, ताका बड़ा अभाग॥धारा तो

दोही भली; गिरही कैवैराग । गिरही दासातन करे, बैरागी अनुराग ॥ अजर धान अतीतका, गिरही करे जो आहार । निश्चयही हो दरिद्री, कहैं कबीर विचार ॥

भावार्थ यह है कि गृहस्थको सदा उचित है कि सन्तोंकी सेवा किया करे अपनी आमदनीमें कुछ भाग केवल सन्तोंकेही हेतु निकालकर नित्य उनकी सेवामें लगता रहे । जो गृहस्थ सच्चे सन्तोंकी सेवा नहीं करता है उनका भाग भी स्वयम् चटकर जाता है। कबीर साहब कहते हैं कि, वह निश्चय करके दरिद्री होता है और साधु जो विचार पूर्वक खाद्याखाद्यका विचार नहीं करता, द्रव्यके लोभसे न ग्रहण करने योग्य द्रव्य और उनको ग्रहण कर लेता है और भीख मांगनेमें अपनी सार्थकता समझता है वह साधु ही नहीं है उसके हेतु गुरु साहब कहते हैं–

साखी

जैसा अन्न जो खाइये, तैसाही मन होय। जैसा पानी पीजिये, तैसी वानी सोय ॥ माँगन मरन समान है, मत कोई मांगो भीख । मांगन ते मरना भला, यही सत्यगुरुकी सीख ॥ मांगन मरन समान है, सीख दई मैं तोहि । कहैं कबीर सतगुरु सुनो, मति रे मँगावो मोहि ॥

मांगनेवालोंके लिये उपरकी साखी है परन्तु जो सच्चे विरक्त हैं 'प्रवृत्तिसे जिन्होंने मुंह मोडा है निर्वाहमात्र भिक्षाका उन्हें दोष नहीं है परन्तु काया, मन और वाणीसे सदा लोकोपकार करना भी उनका परम कर्तव्य है । ऐसे विरक्त पुरुषोंको अपने हाथसे भोजन बनाना निषेध है अर्थात् यदि वे भोजन आदिके झंझटमें पड़ जावेंगे तो परमार्थकेकार्यमें हानि होवेगी

इस कारण जब भिक्षा ले आवें तो यदि अकेले हो तो कहीं नदी तालाब आदि निर्जन स्थानोंमें बैठकर भक्षण कर लेवे नहीं तो मण्डलीके गुणवृद्धके आगे रख वह यथाधिकार सबको बाँट देवे।

भिक्षाके विषयमें सद्गुरुकी आज्ञा

साखी

उदर समाता मांगिले, ताको नाहीं दोष। कहैं कबीर अधिका गहैं, ताकी गति न मोष॥ उदर समाता अन्नले, तनही समाता चीर। अधिकाहिं संग्रह ना करे, तिसका नाम फकीर॥ अन माँगा मिले अति भला, माँगि लिया नहीं दोष। उदर समाता कह मिले, निश्चय पावे मोष॥ भीख तीन प्रकारकी, सुनहु सन्त चित्त लाय। दास कबीर प्रकट कहे भिन्न २ अर्थाय॥ अनमाँगा उत्तम

कह्यो, मध्यम मांगि जो लेय । कहै कबीर निकृष्ट सो, पर धरना देय ॥ उत्तम भीख जो अजगरी सुनि लीजौ निज वैन । कहै कबीर ताके गहे, महा परम सुख चैन ॥ भँवर भीख मध्यम कही, सुनो सन्त चित लाय । कहैं कबीर जाको गही, मध्यम कही माँहि समाय॥ भीखहि गदहाकी कहूं, निकृष्ट कहावे सोय। कहे कबीर इस भीखमें मुक्ति न कबहूं होय ॥

अपने पासमें द्रव्य आदि रहते हुए अथवा पूर्ण विरक्ताई अथवा लाचारिके आये विना भीख मांगना निर्लज्ज और मूर्खोंका काम है ।

मध्याह्नसन्ध्याविधि

अपने आश्रम धर्मकी रक्षा करता हुआ मनुष्य मध्याह्न होनेपर मध्याह्न सन्ध्यास्मरणमें प्रवृत्त होवे।

प्रथम प्रातःसन्ध्याके समान ही (शुद्धि आदि करके) गुरु सहस्र नामका विधिपूर्वक पाठ करे; मध्य दिनकी स्तुति और सवैया द्वारा प्रार्थना करे। छोटी नित्य पाठकी एकोत्री और मध्याह्न गायत्री अर्थसहित पाठ कर लेनेपर यथा अवकाश गुरुमंत्रका जप करे। जप करनेपर—ज्ञान गुदरी और कबीर चालीसा अथवा कबीर पंचासिकाका पाठ करके मध्याह्न संध्या समाप्त करे, पश्चात् आचमन करके यहांसे उठे।

व्यवहारमें फँसे हुये गृहस्थोंसे यदि मध्याह्न सन्ध्या विधिपूर्वक न होसके तो मध्याह्न दिनकी स्तुति और ज्ञान गुदरी तो अवश्यही पाठ करलेवे। इतना करना कोई भारी बात नहीं है. क्योंकि, काम करते हुए भी लोग अनेक बातें किया करतेहैं; यदि थोडी देरके

लिये उन व्यर्थ गपाटाओंको छोडकर गुरुस्तुति कर लेंगे तो अनन्त पुण्यके भागी होंगे।

इति श्रीकबीरोपासनान्तर्गत मध्याह्नसन्ध्याविधि--वर्णन नाम षष्ठो विश्रामः

अथ सप्तम विश्राम ७.



मध्याह्न सन्ध्या करलेने पश्चात् गृहस्थ तो अपनी संसारयात्राके कार्यमें लगे और साधु, विरागी अपने १ भजन, स्मरण, आत्मचिन्तन तथा उपदेश और स्वधर्म पुस्तककी यथा विचार और प्रचारमें लगे। यद्यपि स्वधर्मकी उन्नतिके ओर ध्यान देना क्या गृहस्थ क्या साधु त्यागी सर्वका ही मुख्य धर्म है तथापि साधु और वैरागियोंको तो इसके अतिरिक्त दूसरा कोई

कार्य ही नहीं है। क्योंकि, जिस प्रकार सेवकका मुख्य धर्मसेवा करनाहै उसी प्रकार साधुका धर्म तो सदा "उपदेश और स्वधर्म उन्नतिमें ही लगा रहना है" इस कारणसे साधु सन्तों और महंतों तथा सच्चे धर्मपरायण सद्गृहस्थों और अपने धर्मके हेतु सद्गुरुके नामपर अर्पण होनेवाले सर्व सज्जन, स्वधर्म प्रचार और उन्नतिके कार्यमें लगें।

उपरोक्त रीतिसे अपने २ धर्म मर्यादाके कार्य करते हुए जब ढाई अर्थात् १ घंटा दिन शेष रहे तब आवश्यकीय शौच आदि क्रियाओंको समाप्त कर सायंसन्ध्याके लिये बैठे।

सायंसन्ध्याविधि

सायंसन्ध्याके लिये आसनपर बैठनेके पश्चात् प्रथम गुरुसहस्रनामका पाठ विधिपूर्वक समाप्त करके क्रमसे

सायंसन्ध्या, गायत्री, नित्यपाठककी एकोत्तरी; गुरु शतकसार नाम तथा सायंसन्ध्यावन्दनस्तोत्र तथा सवैया आदिका ध्यानपूर्वक पाठ करे- पश्चात् १ घडी दिन शेष रहते उठकर मंडलीके साथ २ सन्ध्या सुमिरणको बैठे।

सूर्य अस्त होनेतक सतगुरुकी स्तुति और विनयसे पूर्ण गौडी गाता हुआ दिनका अन्त करे और सायं होनेजापर क्रमसे–

१ सन्ध्या सुमिरणकी साखी बोले।

२ आरती गाकर आरती उतारे फिर-

३ सत्त सत्तका भया प्रकाशसे आरम्भ होनेवाली स्तुति।

४ सतके नाम सत्यसागर भरा।

५ गुरुदयासागर ,,

६ अर्जीनाम ,, ,,
७ ज्ञान गुदरी ,, ,,

इसके उपरान्त स्वश्रद्धानुसार अवकाश पाने पर मङ्गल आदि गाकर सायंसन्ध्याको समाप्त करे ।

सत्संगमाहात्म्य

सायंसन्ध्या होजानेपर सर्व साधु, महंत, सती, सेवक आदिको उचित है कि, जितने लोग स्वधर्मके उस नगर अथवा स्थानमें रहते हों, सब लोक इकट्ठा बैठकर स्वधर्म विषयक विचार और पूछपाछ करें।

ऐसा करनेसे स्वधर्मका ज्ञान बढता है. परस्पर प्रीति और सहानुभूति बढती है। स्वधर्मकी उन्नति होती है, स्वधर्ममें दृढता होती है। इसीका नाम सत्संग है. जिसकी महिमाको वर्णन करते २ वेदने पार नहीं पाया है, सब धर्मोंकेग्रन्थोंमें सत्संगसे बढ़

कर अन्य उत्तम परमार्थका साधन नहीं है। केवल परमार्थ ही नहीं वरन् सन्त संगतिद्वारा लौकिक पारलौकिक सर्व सुखके साधनका मार्ग बतानेवाला सच्चा और उत्तम पथदर्शक दूसरा कोई नहीं है। सत्य गुरुका बचन है–

साखी

कलह काल और कल्पना,
सत संगतिसो जाय।
दुख वासो भाजा फिरे;
सुखमें रहे समाय॥
कबिरा संगति साधुकी,
नितप्रति कीजै जाय।
दुर्मति दूर बहावसी,
देसी सुमति बताय॥
सत्यकबीरकी साखी।

भावार्थ-सद्गुरु कहते हैं कि, कलह काल और कल्पना सत संगतिसे मिट जाती हैं। सत संगतिसे सुखकी प्राप्ति होती है, और दुख दूर हो जाता है। अब सतसंगका स्वरूप बतलाते हैं।

सतसंग अर्थात् सच्ची संगति होय उसे सतसंग कहते हैं। जहां सच्चे सन्त महात्मा अहर्निशि सत्यात्मा सत्य पुरुषकी ही चर्चा करते हों उसे सत-संग कहते हैं।

जहां सत्य पदार्थके निर्णयके लिये प्रश्नोत्तर द्वारा शंका समाधान होता है उसे सत्संग कहते हैं।

जहां सद्गुरुकी कथा, कीर्ति और वाणीका कीर्तन होता है उसे सत्संग कहते हैं।

जहां अध्यात्मक विद्या अर्थात् अपने स्वरूपके जाननेका विचार होता है उसे सत्संग कहते हैं।

जो सन्त महात्मा आत्मकथाके निरन्तर प्रवाह

चलानेवाले हैं, जिनकी वाणीद्वारा संसारका बन्धन छूटता है ऐसे साधुकी संगति नित्य करनी चाहिये। ऐसोंकी संगतिसे दुर्बुद्धि नष्ट हो जाती है और शुद्धि बुद्धि प्राप्त होती है. जिसके द्वारा निवृत्ति मार्गका ज्ञान होकर मुक्ति प्राप्त होती है।

जो संत साधु अथवा महंत लोग स्वधर्मकी पुस्तकों और सद्गुरुकी वाणीका विचार करते हैं, उसीके ऊपर चलते हैं कभी सद्गुरुकी वाणीकी अवज्ञा नहीं करते ऐसे संतसाधु और महंतोंकी संगति करनेसे अन्तकरण शुद्ध होकर सत्य गुरुकी भक्तिका, मार्ग मिलता है। ऐसे संत महंतोंके पास जाकर ज्ञान सुनने और अपने मनकी शंकाओंको निवृत्ति करनेसे अपूर्व कल्याण प्राप्त होता है, अर्थात् अपने शुद्ध स्वरूपका ज्ञान प्राप्त होता है।

जिसके सत्संग और विवेकरूपी दो नेत्र नहीं हैं,

वह अन्धा है। जिस प्रकार अन्धा पुरुष यदि सीधी सडक पर भी चढा दिया जावे तथापि वह अपने अन्धापनके कारण गडहेमेंगिर पडता है उसी प्रकार सत्संग और विवेक जिसको नहीं है यदि वह संसार भरकी सब विद्याको मुखाग्र करके अथवा सदा तीर्थ ही स्नान करता रहे, चांद्रायण आदिव्रतों द्वारा अपने शरीरको सुखा देवे, दिन रात साखी शब्दोंको गाता और सुनता रहे, और खूब दिव्य वेष बना कर जगमें पुजाता रहे अपने बल और बुद्धिमानीसे सब संसारके ही नीचत दिखानेवाला हो, तथापि वह सुखको प्राप्त नहीं हो सकता ! सत्संग और विवेकरूपी नेत्र विना कुमार्गमें पड जाना कुछ आश्चर्य नहीं है ।

दृष्टान्त

एक बडा भारी शहर है, उसमें एक अन्धा पुरुष

रहता है, उसके पास असंख्य द्रव्य है। उसने अगणित द्रव्य खर्च करके देशदेशसे कारीगर बुलाकर एक बहुत बडा भवन बनवाया है। उसमें स्थान २ पर खूंटी गडी हैं। सो जब घरका मालिक अन्धा इधर उधर चलता फिरता है तबवे खूँटियां उसको गडती हैं तब उसके लोग जो आंखवाले हैं वे उसे खूँटियोंसे बचनेकी चेतावनी देते हैं।

इसका आशय यह है कि, विवेक और सत्संगरूपी नेत्रहीन जो पुरुष सोई तो अन्धा है। संसाररूपी बडा नगर है। संसारमें नाना प्रकारकी मान बडाई और बुद्धिकी चातुरी असंख्य द्रव्य है नाना प्रकारकी विद्या और कला कौशल सिखानेवाले कारीगर हैं। उनसे नानाप्रकारकी विद्या और हुनरका सीखना इमारत बनवाना है। शास्त्र दीवार हैं। उससे पूर्वापरके विचारको ही कांटा कहते हैं

सो विवेकही पुरुष शास्त्रके पूर्वापरका विचार नहीं जानकर, नहीं मानने योग्यको मानता है और नहीं करने योग्य करता है यही उसको ठोकर लगना है अर्थात् विवेकहीन पुरुषको उसकी विद्या उसका पद उसकी चतुराई ही उसके दुःखका कारण होती है। जो सत्संगवाला और विवेकी है वही सेवकके तुल्य है। अर्थात् सच्चा सत्संगी और सच्चा विवेकी अहंकार रहित होकर सदा दास भावसे रहता है चाहे वह गृहस्थ हो कि, वैरागी हो। अपना कर्तव्य यही समझता है, कि किसी न किसी प्रकारसे असत्य मार्गमें जाते हुए जीव सत्य मार्गमें लग जावे, उसीके लिये वह अनेक यत्न कता है सद्गुरु कहते हैं कि-

'दादा भाई बापके लेखे, चरन होइ हौं बन्दा'

सो ऐसे जी सत्य पारखको प्राप्त महात्मा गण

बीजक) वे सदा उसको उपरोक्त कांटोंसे बचते रहनेका उपदेश करते रहते हैं और स्वयम् विवेकी होनेके कारणसे भूल नहीं खाते हैं। भर्तृहरिजी महाराजका वचन है।

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥

भा०-बुद्धिकी जडपनाको नाश करती है वाणीमें सत्यको सींचती है अर्थात् वाणीकी कठोरता मिटकर अपने समान हीदूसरोंकोभी कठोर असत्य वचनसे दुःख होता है इस कारण सत्य और प्रिय बोलना चाहिये, ऐसी बुद्धि देती है। अनात्मकबुद्धिको त्याग

करके सत्यात्मकबुद्धिकी वृद्धि प्राप्ति कराती है, जिसके कायिक, वाचिक मल सब दूर हो जाते हैं और पुरुष निर्मल होकर शुभमार्गमें प्रवृत्त होता है. जिसके कारण सर्व दिशाओंमें उसकी कीर्ति फैलती है। इसलिये कहते हैं कि, सत्संगति पुरुषको क्या नहीं करती है सारांश यह कि सत्संगतिद्वारा सबकुछ प्राप्त होता है। इसी हेतुसे गुरु साहबकी आज्ञा है कि–

साखी

कबिरा संगति साधुकी,
नितप्रति कीजे जाय।
दुर्मति दूर बहावसी,
देसी सुमति बताय॥

सत्य कबीरकी साखी।

परन्तु व्यवहारमें फँसे हुए पुरुषोंसे दिवसमें शांतिके

साथ बैठकर सत्संग करना अत्यन्त कठिन है इस कारणसे सांझको संझा आरति होआने पर अवश्य सत्संग करना चाहिये, परन्तु वह सत्संग केवल साखियोंका अखाडा अथवा रागद्वेषका कारण नहीं होना चाहिये जैसा कि, आजकल स्वधर्मकी जानकारीकी न्यूनतासे प्रायः साधु और सेवक लोग जहा बैठते हैं वहां या तो गांजा, भंग, तम्बाकूकी धूम होती है अथवा झांझ विगरेके साथ मंदिर शिरपर उठाया जाता है अथवा छोकरोंके बैतबाजी अथवा कलंगी तुर्रेके आखाडेके समाए आपसमें साखी, रेखता और शब्द बोलनेकी बाजी लगती है. प्यारो! सत्यके खोजियो ! इसका नाम सत्संग नहीं है वरन् इसका नाम संगठन है क्योंकि, ऐसे स्थानोंमें प्रायः चढा खडी होते राग द्वेष यहां तक बढता है

कि, मारपीटकी नौबत आजाती है। अथवा बहुत स्थानोंमें ऐसा होता है कि, कुछ साखी शब्द याद किये हुए दश पांच या दो चार सेवक लोग जिनको विद्या और बुद्धिसे कुछ सरोकार नहीं होता है अच्छे विवेकी और विद्वान् सन्तके पासजाकर कबीर साहबके छापकी अनेक योग और ब्रह्मज्ञान विषयक वाणीको बोलकर उनका अर्थ पूछते हैं, और जब उनका अर्थ उनको समझाया जाता है, तब अपनी बुद्धिकी कृपासे उनको समझ तो सकते नहीं उलटा विचारे वक्ताका अपमान और हंसी करके उसे कष्ट देते हैं। यह बात श्रद्धाहीन अभिमानी सेवक जिनकी तृष्णावाले साधु लोग प्रायः खुशामद किया करते हैं और दशपांच मूर्खोंके बीचमें जो कोई स्वधर्म ज्ञानहीन गपाटा मारनेवाला पुजाता है वह भी ऐसा ही किया करता

है क्योंकि, उसे सच्चे धर्मज्ञोंसे भय रहता है। ऐसे लठ संगको भी यद्यपि मूर्खोंके बीचमें सत्संगही कहा जाता है तथापि हे सज्जनो! यह सत्संग नहीं है। सत्संग तो इसे कहते हैं कि मनुष्योंको प्रायः संसारके विषय और उसके अनुभव करनेवाले प्राकृत जनों-काही प्रसंग रहा करता है जिससे संसार बन्धन बढनेके सिवाय दूसरा कोई लाभ नहीं होता परन्तु मनुष्य अमूल्य शरीरको पाकर परमार्थ प्राप्त करना मनुष्य मात्रका मुख्य धर्म है; तो यदि सांसारिक विषय और विषयोंको संग रहा तो परमार्थका मार्ग कदापि मिल नहीं सकता इस कारण जिस महात्मा-ओंने संसारको भली प्रकार परखा है परमार्थके स्वरूपको भली प्रकार जानकर उसके भेदोंको समझा है. वाणी खानिका यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया है, स्वधर्ममें पूर्ण दृढ हैं छाजन, भोजन, मैथुन,

भय, निद्रा, मोह षट् पाशविक धर्मोंको भली प्रकार सुधारा है, मनुष्य लक्षणताके चार कला, विचारशील दया और शौर्य करके संयुक्त हैं, काल, संधि और झौंईके भेदको भली प्रकार जाननेवाले हैं परा अपराको खूब पहचाननेवाले हैं। गुरु धर्मपर पूरे दृढ हैं, मैं मेरी संकल्पको जिन्होंने त्याग दिया है गुरुसे पारखके बल कभी भी कालके फन्देमें नहीं आते मैत्री, मुदिता, कारण और उपेक्षा जिनके स्वभावमें वास करती हैं, ऐसे ऐसे संतके लक्षणोंकर युक्त जो पुरुष हैं, चाहे वे गृहस्थी होवे अथवा विरक्त साधु तथा मठधारी होवें उनके ही संगसे संसारसे लक्ष उठाकर यथार्थ परमार्थपर दृष्टि लगती हैं। ऐसोंकी ही संगतिसे पारखकी प्राप्ति होती है ऐसोंकी ही सेवा भी सफल है ।

साखी

कर बन्दगी विवेककी, भेष धरे सब कोय ।
वह बन्दगी वहि जानदे,जहँ शब्द विवेक न होय
वीजक ।

शब्द

नरको नहि परतीति हमारी । झूठा बनिज कियो झूठे सो पूंजी सबन मिलिहारी । षट्दर्शन मिलि पंथ चलायो, त्रयदेवा अधिकारी । राजा देश बडे परपञ्ची, रैयत रहत उजारी ॥ इतते उत उतते इत रहु, यमकी सांट सवांरी । ज्यों कपि डोरबांधि बांजीगर, अपनी खुंशीपरारी ॥ यहै पेड उत्पत्ति परलयका, विषय सबै विकारी । जैसे स्वान अपावन्राजी, तैसे लोग संसारी ॥ कहै कबीर यह अदभुत ज्ञाता; को

मानै बात हमारी । अजहू लेउँ छोडायकालसों जौ करे सुरति संभारी ॥

साखी

जीव दुखी चाहे छुटन, चीन्हें नाही काल। आशा देवे निवृत्तिका, भोरे भोके जाल ॥८०॥
त्रय विधि भेष बनाइके, कीन्ह कपट उत्पात । बाना गही उबारने,लाइ कला यम घात ॥८१॥
यतके चिह्न लगाते हैं, दयाचिह्न उरमाल । राज तिलक है अदलका, सो है प्रगट भाल ॥ ८२ ॥
महादुष्ट जीवहि ठगे,भेष कपट किय काल । भेष देखि निवृतिका, अपनाये सो दयाल ॥ ८३ ॥
भेष अमंगल नष्टगुण, जेते त्रय विधि फांस । अदल चलाइकालपर सो त्रिदोषहिं नास ॥८४॥
अदलचलाई सत्यका, साहब बंदीछोर। पारखि

छोरजीवको, यमकोहाथ मरोर ॥ ८५ ॥ रीति प्रीति सोइ सत्य है, सत्य सोइसो भेख । झूठाको शोभेनहीं, निर्णय करिके देख ॥८६॥ जो रहस युतपारखी, साहब सांचा सोय । तरे तारे भव जालसे काल देख रहे रोय ॥ ९४ ॥ दृढ पारख जो जन भये, काल फन्द सब देख । सत्य स्वरूप सोई सदा, रीति सत्यसत्य भेख ॥९५॥ धन्य २ सो जीव है, काल सन्धि सब टाल । झांई संधि मिटावहीं, नजरेनजर निहाल ॥९६॥

शब्द

संतो ठहरिक करहु विचार, ठौर निजु सुखदाई । बिना विचार सकल जग जहँडे, स्थिति कहु कौन कहँ पाई ॥ माथे व्यापे सन्धिक घेरा, विषय बौराने समुदाई । ज्ञानी भक्त योगी कहलावें, भ्रम महातम भर्माई ॥

त्रय देवाधिकार जगत्के त्रिविध वेष मन कुट-
लाई। चीन्हि न परी घात मनुवाँकी मृतक
भये नर बौराई। निर्णय तिलक लिलाट
विराजे, राजकाज विधि युक्ताई। सो प्रपंच
विदित है जगमें, जहँडे औरन जहँडाई॥
वैष्णव दयाके रूप कहावे, कण्ठी कण्ठ दिख-
लाई। यह सत सबही टारि बहाये, विषय
विकार सो कुशलाई॥ यतके डिम्भ जो हरको
देखौ, कामारी दृढ फैलाई। खुली काछ कामके
माते कहत न लागि सकुचाई॥ जैसा कहै
करै सो तैसा, सत्य शब्द सो अटलाई। फन्दा
टूटे तब जिव, विनु, गुरु चाल न दर्शाई॥
सन्त सदा सोई परमानिक, जिन २ घरकी

सुधि पाई । कहहिं कबीर चेत नर बौर हो हुशियार दुख बिलगाई ॥

साखी

साधु २ सबही बड़े, अपनी अपनी ठौर ।
शब्द विवेकी पारखी, ताके माथे मौर ॥

टकसार

सत्संगके तीन प्रकार

अब सत्संग तीनप्रकारसे होता है, सो (शंका, बताया जाता है । तीन प्रकारके ये हैं–

१ तो साक्षात सच्चे सन्तोंकी सेवामें जाकर समाधान करना ।

२ कथा वार्ता सुनना अथवा सत्य पुरुषोंकी वाणीका विचार करना ।

३ सन्तोंके मुख अथवा शास्त्रद्वारा सुने तत्वोंका

एकान्तमें बैठकर स्वयम् तर्क वितर्क द्वारा आत्म-तत्वका सार विचारना यह सदाही कर्तव्य है ।

सत्संगका प्रथम प्रकार यदि प्राप्त होवे तो इससे बढकर दूसरा सौभाग्य ही क्या है ? परन्तु समयके प्रभावके सच्चे विवेकी पारखी सन्तोंका मिलन अत्यंत दुस्तर है, यद्यपि साधु तो बहुत देखे जाते हैं और उनकी सेवा भी अवश्यही करनी चाहिये परन्तु सच्चे विवेकी विना पदार्थ मिलना दुस्तर होनेके कारण दूसरे प्रकारका जो सत्संग "स्वधर्म पुस्तक" (ग्रंथ, गुरुकी बाणी) का विचार निरन्तर करता रहे ।

जहां दोचार दश बीस सत्संगी इकट्ठे होवें, वहां भी गुरुकी वाणी और ग्रन्थके ही आधारपर सत्संग करे । सद्गुरुकी वाणीको उल्लंघन कर सत्यगुरुका अपमान कर नरकका भागी न बने महान विद्वान्

और वक्ता होनेपर भी यदि सत्यगुरुकी वाणी और सिद्धान्तको छोडकर चलता हो तो उसे भी तृणके समान त्याग करना उचित है और सदा इस साखीको स्मरण रक्खे ।

साखी

शब्द कहे सो कीजिये, गुरुआ बडे लवार ।
अपने २ स्वार्थको, ठोर ठोर बट पार ।

बीजक

सत्संगकी महिमाका विशेष वर्णन कबीर मन्शूर, कबीर भानुप्रकाश, सत्यकबीरकी साखी आदि सर्व ग्रन्थोंमें मिलेगा वहांसे भी देखना चाहिये ।

सत्संगकी परिपाटी सत्याचार्य पं० श्रीहजूर उग्र-नाम साहबके दरबारमें अच्छी है। कहां सबेरे सात-

बजेसे दरबारमें पं० श्रीहजूरसाहब पधारते हैं—उसी समय वहां उपस्थित सब संत साधु महन्त भी आते हैं और यह दरबार साढेदश बजेतक रहता है पश्चात् पं० श्रीहजूर साहबके साथ सभा उठती है और सब अपने २ आसनको भोजन आदि आवश्यक कर्तव्यके लिये जाते हैं। फिर दो बजेसे साढेचार बजे तक और रात्रिमें फिर सात बजेसे दश बजे तक नित्य बैठक होती है इन तीनों समयोंमें बराबर स्वधर्म विषयक चर्चा होती है. कथा होती है, विद्वान् और धर्मज्ञोंकी व्याख्या होती है। अर्थात् सदाही धर्म चर्चाका ही प्रवाह चलता रहता है क्या अच्छा होता यदि सर्व महन्त लोग अपने इष्टदेव पं० श्रीहजूर साहबके दरबारकी रीतिको देखकर अपने-अपने

मठों और मकानों, मंदिरोंमें भी उसी रीतिका प्रचार कर स्वधर्मकी उन्नतिका प्रयत्न करते।

इति अन्तर्गत सायंसन्ध्या तथा सत्संगमाहात्म्य वर्णनं नाम सप्तमो विश्रामः। समाप्तोऽपूर्वभागः।

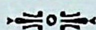
इति अन्तर्गत सायंसन्ध्या तथा सत्संग माहात्म्य समाप्त।

सुमिरण रत्नाकर

(प्रथम भाग)

अष्टमविश्राम

सूचना



इसमें जितने सुमिरण दिये गये हैं वे सब खास छत्तीसगढकी प्रतिसे ज्योंके त्यों दिये गये हैं केवल "ष (ख)" "स (श)" और ह्रस्व दीर्घके अतिरिक्त शुद्ध करनेमें भी कुछ हस्तक्षेप नहीं किया है यथाप्रति होनेके कारण छन्दोभंग आदि दोषोंका भागी मैं नहीं हूं ।



अथ अष्टम विश्राम ८.



सुमिरण रत्नाकर

सुमिरण आदि गायत्री

आदि गायत्री सुमिरण सार । सुमिरत हंस उतारे पार । कोटि अठासी घाट हैं, यम बैठें

तहँ रोक । आदि गायत्री सुमिरिके, हंसा होय निशोक ॥ घाटी नागहि आगे तब जाई. सकल दूत रहे पछताई । आगे मकरतार है डोरी जहाँ यम रहे मुख मोरी ॥ ओहं सोहं नामके, आगे करे पयान । अजर लोक वासा करे, जगमग दीप स्थान ॥ सुखसागर स्नान करि, होय हंसका रूप । जाय पुरुष दर्शन करे,जिस दिन परम आनंद ॥ आदि गायत्री सुमिरिके, आवा गमन नसाय । सत्य लोक वासा करे, कहैं कबीर समुझाय ॥

सुमिरण प्रभात गायत्री

आदि गायत्री अम्मरस्थान । सोहं तत्त्व ले हंसा लोक समान॥ सत गायत्री अजपा जाप॥ कहैं कबीर अमर घर वास।सत्य है अमर सत्य

शून्य । सत्यहिमें कछु पाप न प्रण्य ॥ कहै कबीर सुनो धर्मदास । यह गायत्री करो प्रकाश ॥

सुमिरण मध्याह्न गायत्री

अचिंत पुरुष हिरम्बर छाया । नाद बिन्दु दोइ कर्ता आया ॥ यमसो जीता लोक पढाया । सुरति स्नेही हंस कहाया ॥ अचिन्त पुरुषको गायत्री, दीन्ह कबीर बताय । निसि दिन सुमिरण जो करै, करम भरम मिटि जाय ।

सुमिरण सन्ध्या गायत्री

बारह ओजन कोट, जन्त्र जहँ पलमें छूटे । यहि विधि संझा जपे भर्मको आगम टूटे ॥ गायत्री ब्रह्मा जपे, जपे देव महेश । गायत्री गोविन्द पढे, सतगुरुके उपदेश ॥ ताको काल न खाय, जो यह संझा चीन्हे । घटमें रही अलोप

काढि हम बाहर कीन्हे ॥ इनपर लै सिद्धो भनी देव पूजा गो शरीर । ब्रह्मा बाचा पुत्रदासा चपलान उग्र हंसनी शरीर ॥ शब्द पाय हिरदय धरे, अस कथि कबीर ।

सुमिरण मध्याह्न गायत्री

कहैं कबीर अजपा घट सूझे । निगम नाम मोहिं जो बूझे ॥ तन मन धनहि निछावर करे। सार नाम गहि भौ जल तरे ॥ अष्ट सिद्धि नौ सिद्धि मांगे सो देऊं । खुरासान खूर बेदमुख गंगा प्रवाह। रिपु सिप मार गेर तराई । नौगुण धरजा सुरति प्रकट होय सूझे ॥ खोजो सुरति कमलके तीर । सद्गुरु मिलगये सत्य कबीर।

सुमिरण सोवनेका

संयम नाम सदा चितलाई जासों काल

दगा मिटि जाई ॥ काल दगा धरि आवे भेख । जीव चूके धरतीकी रेख ॥ सोवत समय जो मारे तारी । सतसुकृत करै रखवारी ॥ कहैं कबीर बंकेज बुझाई । सोवत जीव नष्ट नहिं जाई ॥ अमर पिछोरी ओढिके, सुख मण्डलमें सोय । कबीर ऐसे गुरु पाइके, कहा मुक्तिको रोय उत्तर करो सिराना, पश्चिम कीजै पीठ । कहैं कबीर धर्मदास सों, यमकी लगै न दीठ ॥

सुमिरण प्रातः उठनेका

जो स्वर चले प्रात सञ्चारी । सोई पग धरि उठो संभारी ॥ दिवस समस्त हर्षसो बीतें । जहां जाय सो कारज जीतें ॥ पुहमीमें पग दीजिये, सुनो सन्त मतिधीर । कर जोरे विनती करों दर्शन देहु कबीर ॥

सुमिरण दिशाजानेका

अन्न सकल तनपोख। शब्दसुरति सो पेख॥ सूक्ष्म लगन उतारो काया। निर्मल होय हमार। कहैं कबीर यही तत्सार। चौरासी सो जीव उबार॥

सुमिरण मल द्वार धोनेका

सुरति सन्तोष सुसम जब भया उतार। बाँये कर परसे जलढार॥ सतगुरुशब्द गही मतिवीर। कहैं कबीर होय पाक शरीर॥

सुमिरण जलपात्रका

धर्मदास मैं तुम्हें बुझाऊं। जल पात्रका भेद बताऊं॥ जलपात्रको गहिके,उत्तम भेद बताऊं॥ जलपात्रको राहिके, उत्तम करो बनाय। कहैं कबीर निर्मल भये, संशय भ्रम मिटजाय

सुमिरण तूंबा प्रछालनेका

तत्ततत्तका तूंबा, शब्देलियो समाय । कहै कबीर धर्मदाससो, तूंबा निर्मल होय ॥

सुमिरण हाथ मटिआवनेगा

माटी खाक माटी पाक । माटीमें माटी गर्काप ॥ कहैं कबीर हम शब्द सनेही । सत्त शब्दसों पाक होय देही ॥ मृत्तिका लेव हाथ लगाई । अजर नाम सुमिरो चितलाई ॥ मृत्तिका लीन्हों हाथमें लिर्मल भया शरीर ॥ कर्म भ्रम सब मेटिके सुमिरो सत्य कबीर ॥

सुमिरण दातौन तोरनेका

धन्य वृक्ष जिन दातौन दीन्हा । साधु सन्त हर दाया कीन्हा ॥ दया कीन्हें भया प्रकाश ॥ रक्षा करें कबीर धर्मदास ॥

सुमिरण दातौन करनेका

सत्तकी दातौन सन्तोषकी झारी ॥ सन्त नाम ले घसो विचारी ॥ किया दातौन भया प्रकाश । अजर नाम गहो विश्वास ॥ अभी नामले पहुँचे आया ॥ कहत कबीर सतलोक सिधाया ॥

सुमिरण दातौन फारनेका

फाटी दातौन भया प्रकाश । अजर अमर कबीर धर्मदास ॥

सुमिरण मुख धोनेका

मुख परसे मुक्तायनिवासा । जिनके परसत लोक निवासा । लै जल मुख माहिं चढावे । अम्बुनाम हिरदे लौलावे । कहैं कबीर सुनो धर्मदास । सो हंसा सतलोक निवास ॥

सुमिरण अमरी उतारनेका

अमरी अमर लोकसों आई। तीन लोकमें निर्भय भाई॥ तन सोधो मन राखो धीर। अमरी उतारो खारी नीर॥ कहै कबीर अमर भई काया। निज शब्द अमरीका आया॥

सुमिरण जलमें पैठनेका-

जो साहब दायाकर पाऊं। करबन्दगी जल मांझ समाऊं। पान निहपान सतगुरु शब्दप्रमाना।

सुमिरण स्नान करनेका

अमी सरोवर ज्ञान जल, हंसा पैठ नहाय॥
काया कञ्चन मन मगन, कर्म भर्म मिटि जाय॥
पिंड सो ब्रह्मंडे जान। मानसरोवर कर स्नान। सो हंसा ताको जाप। कहैं कबीर पुण्य

नहिं पाप ॥ ऐसी विधि कर स्नान सो हंसा सतलोक समान ॥

सुमिरण स्नान करके बन्दगीका

नहाय खोरके शीस नवाई । अलख पुरुषके दर्शन पाई ॥ अमी शब्दको कीजे जाप । कहै कबीर अमरघरवास ॥

सुमिरण कोपीन पहिरनेका

पारा राखे गुरू हमारा ॥ बारह बरसकी कन्या आई । उलटा पारा रहौ समाई ॥ ऊपर वन्दी छोर विराजे । पारा खसे तौ सतगुरु लाजे ॥ सतका कोपीन व्रजका धागा । गुरु प्रताप सो बन्धन लागा ॥ कहै कबीर तजो अभिमान । पारा खसे तो सतगुरुकी आन ॥

सुमिरण जल भरनेका

जीव जन्तु सब दूर पराऊ, भरि हों निर्मल नीर। हत्या पाप लागे नहीं, रक्षा करे कबीर॥

सुमिरण जल छाननेका

अमृत जल निर्मलकर छाना। सतगुरु साहबके मनमाना॥ कहैं कबीर भरम सब भागा। टूट्यो जबै पुरानो धागा॥

सुमिरण तिलक करनेका

तत्त्व तिलक तिहुँ लोकमें। सत्तनाम निज सार। जन कबीर मस्तक दियें, शोभा अगम अपार॥ पार कोई बिरले पावै। पार पाव सौ सन्त कहावे॥ योनि संकट बहुरि न आवे। कहै कबीर सत लोक सिधावे।

सुमिरण दर्पण देखनेका

दर्पणमें मुख देखिये, कबहि न होय चितभंग
गुरुके वचन सन्तकी सेवा, चढे सवाया रंग ॥

सुमिरण चरणामृत महाप्रसाद पानका

चरणामृत महाप्रसाद जो लीन्हा । सत्य शब्दका सुमिरण कीन्हा ॥ अर्ध उर्ध मध्य धर ध्यान । कहें कबीर सो सन्त सुजान ॥

सुमिरण चरणामृत देनेका

हो साहब मैं विनती लाऊँ । कौन नामते पग पखराऊँ ॥ दहिने पग प्रथम ही जल नावे । बल हमार सो पग पखरावे ॥ शब्द सार निर्मोलिक सारा । पग पखराओ हंस हमारा ॥ यह विधि पग पखराओ भाई । दगा धोक सब दूर पराई ॥

साखी-अजर नामको सुमिरन, चिन्हें हंस हमारा कहै कबीर धर्मदास सों सीस न आवें भार ॥

सुमिरण महाप्रसाद देनेका

पके अन्नको ग्रासन कीजे । पांच तत्त्वको भाजन दीजे ॥ जबे जीव मांगे प्रसाद । अजर नामको कीजे याद ॥ एक रवा हाथमें लेवे । महाप्रसाद दासको देवे ॥ महाप्रसाद एक धनी-को, जाको, सब विस्तार । मूरख लखे न पावे, कहैं कबीर विचार ॥

सुमिरण महाप्रसाद पानेका

एक रवा हाथमें लीन्हा । उग्रनामका सुमि-रन कीन्हा ॥ महाप्रसाद ऐसो विधि पावे । यमकी दसी निकट नहिं आवे । उग्रनाम हृदय लोलाई । ऐसी विधि प्रसाद जो पाई ॥

सा०कहै कबीर धर्मदाससो, महाप्रसादजो लेय। कालदसी सब टूटे, यमहिं चुनौटी देय ॥

सुमिरण चरणामृत पानेका

चरणामृत शिष्य जो लेई। अंबुजनाम हृदय चित देई॥ लगे नहीं कालकी छाही ॥ चरणोदक जो होय सहाई ॥ ऐसी विधि चरणोदक लेई। यमहिं चुनौटी निशिदिन देई ॥ ले चरणोदक माथ नवांवे। तीन दण्डवत तब पहुँचावे ॥

सा०कहैं कबीर धर्मदाससों, यह शिष्यको व्यवहार॥ दगा धोक सब मेटो, हंस उतारो पार

सुमिरण जल पीनेका

उत्तम शीतल निर्मल नीर। अमृतपिय तिरषा गई दूर ॥ सत्य गुरु मिल गये सत्य कबीर। भागो काल विषमके तीर ॥

सुमिरण घर बुहारनेका

सुमति बुहारी कर गहिलीना । कचरा कुमति दूर कर दीना ॥ पावन लाख दगा मिटिजाई । साहब कबीरका फिरी दुहाई ॥

सुमिरण घर पोतनेका

हरियर गोबर निर्मल पानी । चौका पोत सुकृत ज्ञानी ॥ सवा लाख चूक बकसाये । चौको पौते जेवनार चढ़ाये ॥ कँहें कबीर सुनो धर्म-दास । हंसा पहुंचे पुरुषके पास ॥

सुमिरण चूल्होंमें, अग्नि बारनेका

चूल्हा हमारे चौहटे सब कर तपे रसोई । सत्सुकृत भोजन करे, हमको छूत न होई ॥

सुमिरण रसोई बनानेका

सत्सुकृत कीन्हा जेवनार । ताते करत न

लागे बारा ॥ सतधरी दोपहरिया सांझा । लक्ष्मी बैठी रसोई मांझा । सत्त पकवान लक्ष्मी करे । तीन लोकका उदर भरे ॥ कहैं कबीर लक्ष्मी समुझाय । सन्त सुहेला बैठे आय ॥

सुमिरण थारी पारस करनेका

चन्दन चोका कञ्चन थारी । हीरालाल पदुमकी झारी ॥ बहुत भांति जेवनार बनाये । प्रेम प्रीति सो पारस कराये ॥ सन्त सुहेला भोजन पाई । सत्तसुकृति सत्तनाम गुसाई ॥

सुमिरण प्रसाद अर्पनेका

सन्त समाज धरती स्थूला । प्रसाद चढावें धर्मनिमूला ॥ ओढे साल क्षमाके दीन्हा । सोई शब्द जो पावे चीन्हा ॥ नीरनिरन्तर अन्तर नेहा

शब्द अगाध जो लागे देह ॥ कहैं कबीर चित जित जनि डरो ॥ नाम सुमिरि चल अर्पण करो॥

सुमिरण अचवन करनेका

करि प्रसाद जब अचवन कीन्हा । अचवन करके खर्चा लीन्हा । दूतभूत सब गये पराया जब टेके सद्गुरुके पाया ॥

सुमिरण पाकर वन्दगी करनेका

बारी तेरी बल गई, पलमेंसौ सौबार॥सतगुरु मोपर दया करो साहब कबीर सिरजनहार ॥

सुमिरण सुपारी मोरनेका

सेत सुपारी मोरके अभी अंकलौलाय । कबीर धर्मदाससे हंसलोकमें जाय ॥

सुमिरण पान पानेका

गुरु कबीरने बीरा दीन्हा । हंस बचाय कालसौ लीन्हा ॥ सत्यलोकमें बैठे जाई । सत्त सुकृत जहँ आप रिहाई ॥ कहैं कबीर जे हँस उबारे । जो मरण भव कष्ट निवारे ॥

सुमिरण टोपी लगानेका

तरे धरती ऊपर आकाश, चांद सूर्य दोउपाट॥ तैंतिस कोटिक आगे पार । सोई जानो सतगुरु की हाट॥नौ नाथ चौरासी सिद्ध जीतके ओघट बांध। धर्मदासके मस्तक दीन्हा, कबीर विराजे साथ ॥ बादशाह एक खूंटका, अखंड द्वीपके भूप । दुवैश भूप ब्रह्मांडके, सोई साधु गुरुरूप॥

सुमिरण दीपक बारनेका

आदि अन्त एक ज्योति है, [illegible] थीर है

नीर । आवे सत्य कबीरके शब्दकी छरी, यम जालिमकी काटे शुरी ॥ धर्मदास कबीरके लाग लागे पाई । बावन लाख दगा मिटि जाई ॥

सुमिरण आसन करनेका

सत्त पुरुषको सुमिरिके, आसन करे बनाय॥
तापर हंसा पौढई कबीर धर्मदास सहाय ॥

सुमिरण कमर कसनेका

धर्मदास कसना कसे, नाम पान लिय हाथ।
सत्य कबीर पहुँचा वही, सकल संतलिये साथ

सुमिरण रस्ता चलानेका

सिर पर साहबका राखिकै, चलिये आज्ञा मांहि । आगे साहब कबीर हांक देत हैं, तीन लोक डर नाँहि ॥ कागे कागरे विकार कूकरा मँजार। नाग नाहर दूत भूत बट पार॥

सबको बाँधि कबीर आन घाट ले डार ॥ घाट बाट वन औघट मोहि खसमकी आस । मते चले कबीरके कबहुँ न होय विनाश ॥

सुमिरण सात शिकारीका

अमीनाम; ऊर्ध्वनाम; परिमलनाम;दयावन्त बालदीप; सहजमूल; अग्रसुनि;सतनाम साहबके अमी नाम; पोहप सुगन्ध कण्ठकी सिला निर्गन्ध्य सुगन्ध योगजीत निहं गमित ॥

इति श्रीषट्कर्मविधि नित्यकर्म सुमिरण समाप्तोऽयं ग्रंथ सुमिरण रत्नाकर प्रथम भाग ।

कबीरोपासनापद्धति अन्तर्गत अष्टम विश्राम समाप्त ।

निवेदन



यह पुस्तक लेखक महाशयोंकी कृपासे अब तक इस अवस्थाको पहुँच गई है, जैसा आपके सन्मुख उपस्थित है कितने कारणोंसे इसके शुद्ध करनेका अवसर नहीं मिला है, यदि कोई विद्वान् महात्मागण इसको शुद्ध करके मेरे पास भेज देंगे तो धन्यवादपूर्वक तीसरी आवृत्ति इसकी छपाई जावेगी।

श्री

श्रीपूर्णसाहबकृत-

गुरुसहस्रनाम

नवमविश्राम

श्रीगुरुवे नमः

श्री गुरुसहस्रनाम

अथ नवम विश्राम ९.



(कबीरोपासना पद्धति अन्तर्गत)

न्यासप्रारम्भः

अस्य सद्गुरु दिव्य नाम स्तोत्र मन्त्रस्य ॥ शिष्य ऋषिः ॥ मंत्रछंदः ॥ गुरुदेवता ॥ सोहं बीजं ॥ अहं शक्तिः ॥ गुँअंगुष्ठाभ्यां नमः ॥ रुँ

---

१ यह मन्त्र पढ़कर दोनों हाथकी तर्जनी अँगुलीसे दोनों हाथके अँगूठोंका स्पर्श करते हैं। अँगूठेके पास जो अँगुली है उसीका नाम तर्जनी है।

तर्जनीभ्यां * नमः । वं मध्यमाभ्यां नमः ॥ नं अना*मिकाभ्यां नमः ॥ मं कनिष्ठिकाभ्यां नमः॥ सं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः॥ गुँ हृदयाय नमः॥ रुँ शिरसे स्वाहा ॥ वँ शिखायै वषट् ॥ नं

---

* यह मन्त्र पढ़कर दोनों अँगुठोंसें दोनों तर्जनी अंगुलियोंका स्पर्श करते हैं । २ इस मंत्रको पढ़ता हुआ दोनों मध्यम अँगुलियोंको स्पर्श करे । * इसको पढ़कर दोनों अँगूठोंसे दोनों अनामिकाको स्पर्श करे ४ इसको बोलता हुआ दोनों अँगूठोंसे दो कनिष्ठकाको स्पर्श करे । ५ यह मन्त्र पढकर प्रथम दाहिने हाथके नीचे बायें हाथ रक्खे फिर बायें हाथके नीचे दाहिना रक्खे । ६ यह मन्त्र पढ़कर पांचों अँगुलियोंसे हृदयका स्पर्श करते हैं । ७ यह मन्त्र पढ़कर पांचों अँगुलियोंसे शिरका स्पर्श करते हैं । इस मन्त्र को पांचों अँगुलियोंसे शिखाका स्पर्श करते हैं ।

कव*चाय हुँ ॥ मँ नेत्रत्रयाँय वौषट् ॥ सँ अस्त्राय*फट् ॥ गुरुप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ।

श्लोक ध्यान

ध्यायेत् सद्गुरु श्वेतरूपममलम् श्वेताम्बरं शोभितम् । कर्णे कुंडलश्वेत शुभ्र मुकुटम्, हीरा

---

* यह मन्त्र पढ़कर दाहिने हाथसे बायें खवेका और बांयें हाथसे दाहिने खवेका स्पर्श करते हैं ।

२ इसके द्वारा दहिने हाथसे दोनों नेत्रोंको छूते हैं ।

* यह मन्त्र पढ़कर दहिने हाथकी तर्जनी और मध्यमासे बायें हाथकी हथेलीपर मारते हैं ।

४ यह पढ़कर ऐसा सङ्कल्प करे कि, सद्गुरुको प्रसन्न होनेके लिये मैं यह पाठ करता हूं ।

इसके पश्चात् प्रथम और द्वितीय श्लोकमें लिखे अनुसार गुरुके स्वरूपका मानसिक ध्यान करे और सहस्रनामो द्वारा सद्गुरुकी विभूतिका चिंतन करता हुआ पाठ करे ।

उपरोक्त करन्यास अङगन्यास तथा ध्यानकी विधिको सोचना चाहिये ।

मणिमंडितम् ॥ नाना माल मुक्तादि शोभितगला पद्मासने संस्थितम् । दयाब्धिवीर सुप्रसन्न वदनं सद्गुरुं तन्नमामि ॥ १ ॥ द्वै पदम् द्वै भुजम् प्रसन्न वदनं द्वै नेत्रम् दयालम् । सेलिकंठ माल ऊर्ध्वतिलकम् श्वेताम्बरी मेखला ॥ चक्रांकस्य विचित्र टोपलसितं तेजोमयी विग्रहम् । वन्दे सद्गुरु योगदंड सहितं कब्बीरं करुणालयम् ॥ २ ॥ एतानि चतुर्मुखानि विख्यातानि महास्या ॥ अज्ञाय स्यस्तुतानि साधुभिः शजतुं (किंवा) साधुभिः परगीतानि वक्ष्यामि जीवितेयः ॥ ३ ॥ नं अड़ न अङ्गन्यासं करं न करन्यसता । स्वयमक्ष्व गुरुमंत्र स्वयं भूत्वा स्वयं जपः ॥ ४ ॥ सोमाय सोहंरूपाय सत्य नामाय साक्षिणे ॥ करुणा मयी कवीराय त्रिपदातीताय नमः ॥ ५ ॥ अमी

अमृतनामाय, अजराचिंतरूपिणे ॥ अमरसत सुकृताय, दयाब्धिगुरुवे नमः ॥ ६ ॥ कृपाल कृपायः सिंधुश्च, कृपापोत कृपाधनम् ॥ कृपार्णव कृपा वृष्टिः कृपा कर्ता नमो नमः ॥ ७ ॥ दयालधीर्यवंतश्च दयासिंधुदयार्णव ॥ दया कर्ता दयावंता, ज्ञानदाता नमो नमः ॥ ८ ॥ अभयन्निर्भयश्चैव, निर्भयं पददायकम् । भ्रमं हारकनामाय, भातारक नमोनमः ॥९॥ अचल रूपं अचलं चितातीतं प्रकाशकम् ॥ दीनानाथं दीनोद्धारं, दीनवत्सल सुन्दरम् ॥ १० ॥ अमृतं मृत्युनाशाय महाभ्रमनिवारणम् । योग जीत अजीताय, ज्ञानवेत्ताय किश्चन ॥ ११ ॥ निर्मोहि मोहनाशाय जगत्याशाविनाशकम् निवर भ्रमहीनाय, निर्भ्रमाय नमो नमः ॥१२॥

उपदेशकर्ता स्वदेश दाता उपाधिहीनश्च भय शोक हर्ता । संकष्ट नाशाय सिद्धांत मूला स्वयं गुरू सिद्ध अहं नमामि ॥ १३ ॥ हंसाय हंस-रूपाय हंसपाल हंसपति ॥ हंसनायक, खेताप हंसोद्धारकतारकम् ॥१४॥ जीवोद्धारक शान्ताय शान्तिरूप अशाश्रिता (शान्तिकर्ता शान्ति धर्ता सर्व शान्ति नमो नमः ॥ १९ ॥ हंता नाश दयापाल संशयजाल विखण्डनम् । वपु नाशा प्रकाशश्च वपुर्हर्ता वपुर्हनिम् ॥ १६ ॥ परिक्षः परिक्षाश्चैव परिक्षं परिक्षावातम । परा यत्वं अपाराय सर्वातीत नमोनमः ॥ १७ ॥ पाखण्ड खण्डनम्, अजरूप अजामरः ॥ अज्र नामजरातीतं स्वतःसिद्धस्वसाक्षिणः ॥ १८ ॥ आदादली अदिरूपं आदि मूर्ते अनाद्यये ।

अनादि सिद्धनामाय अकांक्ष अचले प्रिये ॥१९॥
निर्णयो निर्णयःकर्ता नास्ति सिद्धान्त नाशकः ॥
निराधार निराभासः निर्विघ्नश्च निरामयः ॥२०॥
सुखाय सुखदाताय, सुखार्णव सुखात्ययम् ॥
नास्ति सुखमतीताय, अस्ति सुख नमोऽस्तुते
॥ २१ ॥ अनादिनामश्च अनादिरूपं, आनन्द-
तीतश्चअकंप रूपम्। परब्रह्मतीताय प्रकाशतीतम
ऽधिष्ठानतीतं हि नमोनमस्ते ॥ २२ ॥ गुणी पंच-
गुणातीतं, सर्वातीतं सर्वोत्तमम्। भासप्रपञ्चती-
ताय- भासकातीतये नमः ॥ २३ ॥ अखिलज्ञं
ज्ञानतीतं, अंधकारनिवारणम्। साक्षातीतं बोधा-
तीतं बोधकर्ता नमो नमः ॥ २४ ॥ विघ्नविध्वं-
सनन्नाम सर्वमंगलदायकम् ॥ वृक्ष राक्षस नामश्च
वृदधारी वृदः प्रिये ॥ २५ ॥ शिष्यपालं भक्त-

पालं दीनपालं दिनप्रिये ॥ दिनोद्धारक साधाय
वंदि मोचनये नमः ॥ २६ ॥ कालसंधि निवासं
च महासंधि विध्वंसनम्॥ भक्तोद्धारं जगदोद्धारं
असन्धीसाधकःप्रिये ॥ २७ ॥ साधूसन्त साधु
रूप संतस्थं संतधारना ॥ अविनाशी निर्विनाशं
प्रपञ्चं हीनपूरुषय ॥ २८ ॥ पुर्षातीतं मुनींद्रश्च
सारशब्दस्वरूपवान् । त्रिशब्दातीतस्थिराःस्थि
रकर्तास्थिरालयम् ॥ २९ ॥ परिणामवस्थातीथं
मौमे दुःखनिवारणम् ॥ योगसंतयंताय, तरं-
तारं नमोस्तुते ॥ ३० ॥ भवब्धिपोतं भवरोग-
वैधं भवार्णवं घोरविनाशनंदुखं ॥ अशर्णशर्णाय
उदारबुद्धिः समासभं जीव समेक दृष्टिः ॥ ३१ ॥
मंगलं मंगलःकर्ता बेरदाताप्रतापवान्।निष्क्रियं
निर्विकारश्च निर्द्वद्वाय शिष्यःप्रिये ॥३२॥ जीवनं

सर्वजीवानां भूषणं ज्ञानचक्षुषाम् ॥ मुक्तिदाता
भक्तिदाता ज्ञानदाता नमो नमः ॥३३॥ मुक्तपदं
मुक्तनामं, सर्वबन्धनमोचरन ॥ विद्यादाता
बुद्धिदाता सर्वज्ञाय नमोनमः ॥ ३४ ॥ परीक्षा
प्रेरकन्नाम समाधान प्रदानकम् ॥ प्राप्तिकर्ता
प्राप्तिरूपं, भक्तिनाथ नमोनमः ॥ ३५ ॥ सगुणं
सगुणश्चैव, प्रसन्नं करुणाकरम्॥विचारं च प्रमो-
दारं सर्वोत्कृष्ठ नमो नमः ॥ ३६ ॥ भ्रमसंहार-
कन्नाम कामं संहारनं मसि॥ क्रोधं दमनमक्रोधं
मोहनिर्मोहनाशनम् ॥ ३७ ॥ निर्लोभं सर्व
जीताय अजीताय जितेंद्रियः ॥सर्व वश्य अवश्यं
च सर्वमान्यं अमान्ययोः ॥ ३८ ॥ सर्व पूज्यं
मंत्रमूलं ध्यानमूलं स्वरूपकम् ॥ ज्ञान विज्ञान
मलाय हंस मूलं हंस प्रिये ॥ ३९ ॥ अयोनि-

संभवकृपाकटाक्षं, अवीर्यं अरेतअकामरूपम् ॥ अपाप अतात अजा अतीत, अविगत्य रूपं अहं नमामि ॥ ४० ॥ अखिलादिखिलं ज्ञाता, अखिलानन्दतीतयोः ॥ सन्तसन्तप्रियोनामं परं स्नेही परावृतिः ॥ ४१ ॥ उद्धारं भौहारकं च, निरञ्जनातीतप्रभु ॥ कर्ममोचनं नामाय, निर्भरःशीतलाश्रयः ॥ ४२ ॥ भृंगीनाम अभैनामं, शीलनाम सुखार्णवम् । पर्मनामाय सुर्तिश्च, विजपाय जपातियो ॥ ४३ ॥ अमलन्निर्मलश्चैव, हंसज्ञ हंसनायकम् ॥ भक्त सहाय कर्ता च, सुखदाता सुख प्रभू ॥ ४४ ॥ सत्यवक्ता प्रकाशं च परमं पारखलीलया । अमोलं मंगलन्नाम, अविचलं गुरवे नमः ॥ ४५ ॥ सन्तोष शक्त वीरं च साधू कबीर नामयम् । हंस कबीर नामाय, गुरु कबीर

नमोनमः ॥ ४६ ॥ पर्म गुरु पर्म वैद्यं, पर्मलक्ष
पदानये ॥ सिद्धि कबीर नामाय, निरलम्ब कल्प
नमः ॥ ४७ ॥ निर्विघ्न करुणारूपं दिव्यनाम
अनामयम् ॥ छायातीतं मायातीतं कायातीतं
नमोनमः ॥ ४८ ॥ कालमर्दन कीर्तिवर्द्धनं, वृक्ष
रक्षकं ज्ञान अक्षकम् । सुखःसागरं ज्ञान आगरं
पर्व दायकं सर्व लायकम् ॥ ४९ ॥ वाच्य वाच
कातीताय अनिर्वाच अतीतये ।। छन्दातीतं वेदा
तीतं शास्त्रातीतं नमोनमः ॥ ५० ॥ नररूपं नरा
तीतं नरज्ञ नर नामयोः ॥ यक्ष राक्षसातीताय
गन्धर्वातीतये नमः ॥५१॥ दैत्यातीतं देवातीतं
त्रिकालभासकं प्रभुं त्रिदेवातीतायनमःत्रिका-
लज्ञ नमोनमः ॥ ५२ ॥ पंच ब्रह्म अतीताय
व मात्रा विवर्जितः ॥ शब्दमात्रा विनिर्मुक्तं

पञ्चस्थान अमानयोः ॥५३॥ पंच अहंकारतीतं पंच देह अतीतयो ॥ पंचतत्त्वं अतीताय पंच विषय नाशकम् ॥ ५४ ॥ चतुर्दश करणैतीतं षड्भाव विनिर्गतम् ॥ षट्धिचार रहिताय योगातीतं महद्गुरुम् ॥ ५५ ॥ विराग वैराग्यातीतं योगं वियोग वर्जितम् ॥ भोग्य भोगातीतश्चैव संयोगातीताय नमः ॥५६॥ विवेक विवेकातीतं विवेकत्वं विवेकिनः ॥ अविवेकनाशनश्चैव विवेक स्वरूपं प्रभू ॥ ५७ ॥ वैराग्यज्ञाता गुरु भक्ति दाता, सत्यं दया धीर्य शीतस्य कर्ता ॥ विचार मूलं ज्ञानस्य जनकं निर्णयस्वरूपं अहं भजामि ॥ ५८ ॥ निर्विन्दं प्रकाशश्चैव स्थिरस्वस्थिति दायकम् ॥ क्षमा मिथ्या त्यागनश्च निःसन्देह नमोनमः ॥ ५९ ॥ गर्वप्रहारी अद्रोहं, अहंता

नाशनं प्रभुः ॥ समंदृष्टिः सर्वमित्रं, भयहरन अभ-
यीवरम् ॥ ६० ॥ अभैराज अभयदाता, सत्य
संगनिवासिनम् ॥ अनित्यखण्डनन्नामसदानित्य
स्वरूपवान् ॥६१॥ ससर्विंदं विभावाय, सर्वानु-
ग्रह कारणम् ॥ बंधनं नाशनं खंडं, सामौपाश-
विनाशकम् ॥ ६२ ॥ दास रक्षा दासपालं सर्व-
व्याधि प्रशाम्यतम् ॥ परदुःखभञ्जनन्नाम, भक्ता
नामनिरञ्जनम्॥६३॥ दुष्टगंजनं नामाय, ज्ञान-
भञ्जंन तथैव च ॥ भर्मपातं पवित्रं च, सर्वघात
निवारणम् ॥६४॥ पावनः पावनःकर्त्ता, भवाब्धि
नौका एव च ॥ कृतांतं भयहरं चैव मृत्यू भय
विनाशकम् ॥६५॥ भूतभय नाशनं चैव, राज-
भय नाशनं तथा ॥ चौर भगनाशन्नाम, व्याघ्रा
दिभयविनाशनम्॥ ६६ ॥ अलक्षलक्षायमक्षे-

स्वरूपं, सिद्धान्तदाता ऐश्वर्य मूलम् ॥ अनादि-
दीक्षानिरपक्षरूप,सजीवनेजीवनसर्वजीव ॥६७॥
महासजातीभानं च,गुरुं दाता तथैव च ॥ सर्व
सामर्थ्यवानाय गुरुवर्य नमोनमः ॥ ६८ ॥
साधुगुरुं सत गुरुं अग्र नाम तथैव च ॥ अमल
क्षय नामाय, अज्जावन अनामय ॥६९॥ पतितः
पवनन्नाम, दीनोद्धार दिनप्रिये ॥ शरणागतरक्ष-
काय, जगदोद्धार नमाम्यहम् ॥ ७० ॥ भूमय-
निवारणन्नाम भूसिन्धु तारकं तथा ॥ दैत्यविध्वं-
सनन्नाम, कल्पना खण्डनं प्रभू ॥ ७१ ॥ दया
धीरं भयहारं ज्ञानविज्ञान कारकम् ॥ सारं चसर्व
सारं च स्वप्रकाश सज्जन प्रिये ॥७२॥ परक्षवान
स्वयक्तं संताधारं निराविषम् । अइन्द्रि अगाध
नाय, अपार अपरः प्रिय ॥ ७३ ॥ शुकाब्धि

स्वरूपाब्धि मुक्त नाम मुक्ता दया ॥ निर्तरूप सुर्तिनाम, अपार अवगाह तीतयोः ॥ ७४ ॥ अमायाअकायाश्चैव;छःसंधिः विवर्जितःअग्राह्यं ग्राह्यातीतश्च, अविकार प्रबाधिता ॥७५॥प्रबोध कर्ता त्रय ताप हर्ता, हर्षोदस्यदाता सत्सिद्धि चारी। धैर्यधरं परमोद्धाररूपं आनंद मेदं अहन्नमामि ॥७६॥ अचलं विगतन्नाम; अभेदागमलक्षणः ॥ अविनाशा परोक्षं च पुराणपुरुषोत्तमम् ॥७७॥ आद्यं कुरुते कृतस्य पर्मसारतथैवच ॥ साधूपति, साधुधीशं, सत्यसन्तोष नामयोः ॥७८॥ साधु स्नेही सन्त स्नेही, भक्तस्नेही भक्तप्रिये ॥ पर्मस्नेही सुर्ति स्नेही च प्रेम स्नेही च स्वस्थिरम् ॥ ७९ ॥ हिरंमरं

हिरंबरा पुष्प दीप विहारिच ॥ सत्यलोक पतिनामं इति अक्षयवृक्ष नमो नमः ॥ इति ॥

इति कबीरोपासनान्तर्गतनवमोविश्राम समाप्त ।

सत्यनाम

अथ दशमविश्राम १०



स्तुति रत्नाकर

अथ सन्ध्यावन्दन स्तुति

छन्द शिखरिणी

कबीरं भानं भाकर निकर ज्ञानं विधि मध्यम्, वरस्थाने थीरं जगतगुरु पीरं निधि नयम् ॥ महा-तेजो राशं वदन वदनाशं नृप नृपा । प्रतापं तापं ता दनुज दल दापं तव कृपा ॥ १ ॥

तरंतं तारंतं लहत जन सारं वसुमति । महत्त्वं पारतं अकथित अनन्तं पशुपतिं ॥ सुराधीशंईशं हिय तिमिरि पीसं जगजगे । भवं भावं भंगे रतिरक-रुणादं पगपगे ॥ २ ॥

जगं कंजं रंजं दरश भ्रम भंजं सतहितं । निहारं हारं हा तिपिर हर पारंगत छितं ॥ सति सूतं सातं

बिलग बिलगातं दिनकरा । यनी भोग भाग गत विगत भागं किनकरा ॥ ३ ॥

प्रजा पीड़ा ब्रीडा घन तिमिर क्रीडा महि महा । हतं मुद्रा निद्रा शम दम न क्षुद्रा गति महा ॥ सतो संग रंगं वसतव प्रसंगं भसकरा । उमंगं अंगं एक-समय अनंगं बसकरा ॥ ४ ॥

नमस्कारं कारं क्रमर क्रम कारं ककक्रते बंबंवदे वंदे भनत भव फन्दे बब वृते ॥ रामं रामं रम्यम् रटत रर कल्याण करनम् । परणम्य तौ पीष्ठे परं परमीष्टे त्रय वर्णम् ॥ ५ ॥

इति शिखरिणी छंद

अथ कबीर भानु वियोग सवैया

सतनाम व्रतीवर सन्त सती, दिन अन्त भयो भगवन्त पयाना । युगनैन महासुख दैन दुरे, धरि

धीर धरो पद पंकज ध्याना । दृढ इंद्रिन दौनते मौन गहो, थिर आसन हो अनुसासन माना। यह संधि सचेत सतो गुणते, सतधार हिये सतरूप सयाना ॥ १ ॥

तुमरो जन तू चकई चकवा, गहि शोकवलंभ वियोग भयेते । सजनी रजनी दुर जीव डरै हरिके हरिके हरिके अथयेते ॥ वृषभाल कराल सुखेन फिरे, भय भूरि भई प्रभु दूर गये ते। वन वारिज सन्त यकन्त गहे, सकुचे निलि हेरि जी घेरि लिये ते ॥ २ ॥

सम संपति सौच करी रकरी, दम कम्पत भये जब तूटकरी है । गुण ज्ञान घने बन बाग बने, फल फूल भरे तरु तीर घरी है। घनघोर निशा मतिभर्म कियो, शुभ धर्म लिये दुर्बुद्धि भरी है। जग जीवहि आलस निद गही, सबहीं कहँ लागि मसान भरी है ॥३॥

कोई शीलवती युवती जगमें, जिन पीठ पीछर पिया व्रत पाला। जिहिं धर्म अडोल अदाग सदा, गिरि निश्चल सोन सुमेरु सो हाला॥ निजु पीय सो पीय पतिव्रतके, जगमें सब और नपुंसक माला। जिमि पीठ दिखाइ चले जानको, इमि आइ तु दीठ दिखाव दयाला ॥ ४ ॥

पल नैन ढका जब पावत है, तब डंसत है यह नागिन कारी। दृढ झंपनहोय संचेत रहौ, शुचि संत स्थान समाधि सम्हारी॥ पल के पल गाफिल पावत ज्यों, यह डंक तुरत पल तेही मारी। शुभकर्म क्रिया सब भ्रष्ट करे, भवसागर माहिं डुबावन हारी ॥५॥

यदि कज्जल गेह न उज्ज्वलता, बिनु दाग बचे कोई नाम सनेही। जेहि ओर कबीर कृपाल दुरे तिहि काल निहाल भये कछु तेही॥ तम त्रासके

ध्यान धरो उधरो, सुधरे सुधि बुद्धि दया दृग जेही॥ गुरु देव बिना निशि नाश नहीं विश्वास करो एक युक्ति है एही॥ ६ ॥

यह नीद गही है महाठगनी, छन में धन जो धन वृन्द बुहारो। गहि गोड जती नहि छोड मति, छलि साधुकी संपति लूटनहारी। सजि कण्ठको वेष न देखि परे, इमिआइ हैं ओढिके कामरि कारी। यद हैं न नहिं कमरी पसरी, गठरी धनकी गांठ बांधि सँवारो ॥७॥

हरि नाम चरित्र पवित्र महा, मुक्ता मणिके वन देत दवारी। घन घार घरें, नहि सूरि परै, धरि वज्र कपाट सुज्ञानको द्वारो॥ रिधि सिद्धि जहां लगि लाभ कहैं, इन सर्व गहे ठगनी छलकारी। नहिं कूछ रहा इन छूछ कियो, यहि कान भये ऋषि राज भिवारी ॥८॥

मनते भुख भूख अहार गहै, व अहार ते नींद सों

कालकी फांसी। यम दण्ड प्रचण्ड यही हैं यहीं करसों सतखंड सों ज्ञानकी रासी॥ नहिं शुद्ध स्वरूपलखे हरिके; धरि अन्ध कियो धर्मरायकी दासी। यदि जाल फंसायके काल हते सब जीव बने भवसागरवासी॥९॥

नहिं चेत रहा दुख देत महा, हरि हेत कहा दुर्बुद्धि बड़ी है। पिय आगु खडे नहिं चीरिपड़े, दृग सन्मुख कन्धकी सन्ध पड़ी है॥ तजि राम हरामके काम लगे चुहडो फुहडी जब आन अडी है। सुमती हरिगै कुमती भरिगै, यम सेलहिये बिच ठेली गडी है॥१०॥

मन रौनजो भौन ते गौन कियो, तमसी तमसी तमसी तभ ठोने। अति प्राण अधार अधार विना, बिलपात अधीर धरा धर कोने॥ यहि वैरिन पैरिन संग लिये; पहुंची विरहा विष बेलको पोने। सुख साचविहाय अकाज भयो, नियरानि सुभाग सुभागिनिधौने॥ ११॥

उह डोलत संग पिछारसखे, ढिल अंग लखी गठरी गहि भाजी। हुशियार हो सन्त सुजान सुनो, पलहो भरमें वह मारत बाजी ॥ गठि कण्ठ लिये फँसरी करमें सिद्ध सानके गल डारत पाजी । सत धर्म नसाय खँसाय लियो, तब नेक डुबावनको सज साजी ॥ १२ ॥

जबलौं तन प्यार न प्यार पिया, तन आस तजे पिय खास सही है । नहिं मैं तब तू जब मैं नहिं तू रह एक विवेककी टेक सही है ॥ तहँ राम न दूसर काम तहां, रवि रैन यकत्र न होत कही है । जब प्रीति गही तहिये गहिरी, कुल कानि कहां सुलतान वहा है ॥ १३ ॥

जिमि चुम्बक लोहेसे मोह करे, जल ही भई जस मीन दुखारी । अलि अम्बुज प्रीति न वीति कभी, पपिहा लपिहा सुर स्वातिकी बारी । जिमि

चन्दचकोर यकोर लखे, सिख दीपक रंग पतंग निहारी । यहि राह न नाहसे नेह लगी, नहिं आशिक है वह फाँसिक यारी ॥ १४ ॥

दृगपूरित नींदहराम भई, धनि लेत उपाससहि बारहि बारा । तन पीत भयो कृश गात भयो तृस बात भयो लघु भोजन धारा ॥ अधरा पट सूख तृषा हियमें, नहिं जो पिय रूप पियूषणिहारा ॥ गुन गान सदा हिय ध्यान धरे, विरहिनके यह दश चिह्न उचारा ॥ १५ ॥

पथदेव अकाश नहीं जन है, असमान लियो निज पाग उतारी । पसराय दियो सगरे दुगरे. गुरु खाट निहारत पांवदे डारी । विखराय सबै मणि माणिकको विरती बलो बैठि यति व्रत धारी । दिन भूषण ध्यान धरे मुनिहा, दुख दूषण पूषण पेखन टारीं ॥ १६ ॥

कहुँ चोर चकोर रु चन्प वधू. विगसात आनन्द

उलूक लही है । कहुँ यादुर बीर बहादुर मय दुख-दायक जन्तु अनंत मही है ॥ कहुँ जोत खद्योत उद्दोत भई, गनमें अपने अभिमान गही है निसि डाट कहे मम तेज लखो, रविते हमरो कछु घाट नहीं है ॥ १७ ॥

सखि काह करो पिय दूरि गये हिय पूरि गये विरहानल कैसे । मन भावन जासु विदेश गये, धृक जीवन है तिनको जग तैसे । प्रभु वेग कृपाकरिके सुधि लो, तुम दीनदयाल कहावन जैसे । पतियापहुँचाव वसोठ मेरी, अरु बांचिगुनावह पिया ढिग ऐसे॥१८॥

विनय पत्रिका

दनुजा मनुजा महराज यहा; सुरसंत सती सिरताज कहाओ । जन दीननबन्धुहो सिंधु दया, हृदया थल कोमलको श्रुतिगाओ ॥ सब मूल सोई नहिं तूल*कोई

* तूल-तुल्य ।

गुणसागर नागर कौन थहावो। हमारो करनी सुधि नाकरनी, दुख द्वन्द विदार दिदार दिखाओ॥१९॥

सुरति दूतिप्रति

मम पायक शोकसहायक तू, सुरती फुरती पिव पाहँ पधारो। करजोरिके पागहियो प्रभुको, कहियो तिहिं कोटि प्रणाम हमारो॥ जब कंत दुरंत सन्देस सुनो, निज प्राण निंछावर ताछन करो। इमिले अरजी कर दूति चली, वरजी बिरहाबर ध्यानको धारो॥ २०॥ इति॥

अथ संध्या साखी

संज्ञा सुमिरन आरजी, भजन भरोसे दास।
मनसा वाचा कर्मना, जब लगि घटमें स्वास॥१॥
स्वास स्वासमें नामले, वृथा स्वास मत खोय।
ना जानो केहि स्वांसमें, आवन होय न होय॥२॥

स्वासाको कर सुमिरनो, अजपाको कर जाप
परम तत्त्वको ध्यान धरु, सोई आये आप ॥ ३ ॥
सोहं पोया पवनमें, बांधा मेरु सुमेर ।
ब्रह्म गांठ हृदय धरो, यहि विधि माला फेर ॥ ४ ॥
माला है निज स्वासका, फेरेंगे कोई दास ।
चौरासी भरमें नहीं कटे करमको फांस ॥ ५ ॥
सतगुरु मोहि निवाजिये, दीजे अम्मर बोल ।
शीतल शब्द कबीरका, हंसा करे कलोल ॥ ६ ॥
हंस मत डरपे कालसे, कर मेरी प्रतीत ।
अमरलोक पहुँचाइ हों, चलु सो भवजल जीत ॥७॥
भवजलमें बहु काग हैं, कोइ कोइ हंस हमार ।
कहैं कबीर धर्मदाससो, खेह उतरो पार ॥ ८ ॥
अविनाशीकी आरती, गावैं दास कबीर ।
कहैं कबीर सुर मुनि, कोई न लागे तीर ॥ ९ ॥

साँझ भये दिन आइये, चकई दोना रोय ।
चलु चकवा तहँ जाइये, रैनदिवसना होय ॥१०॥
रैनकी बिछुरी चाकई, आनमिलो परभात ।
जो जन बिछुरे नामसे, दिवस मिलेनहिं रात ॥११॥
हौं कबीर विचलों नहीं, शब्द मोर समरत्थ ।
ताहि लोक पहुँचाइहों, जो चढेशब्दके रत्थ ॥१२॥
तर ऊपर धर्मदास है यती सतीको रेव ।
रहिता पुरुष कबीर है, चलता है सब भेख ॥१३॥
भेष बराबर भेष है, भेद बराबर नाहिं ।
तौल बराबर घूंघची, मोल बराबर नाहिं ॥१४॥
निर्विकार निर्भय तुही, और सकल भयमाहिं ।
सबपर तेरी साहिबी, तुमपर साहब नाहिं ॥१५
भवभंजन दुख पर हरन, अमर करन शरीर ।
आदि युगादि आपहो, अदली अदल कबीर ॥१६॥

विनवत हौं कर जोरिकै, सुनियो कृपानिधान।
सन्तनमें सुख दीजियो, दया गरीबी दान ॥१७॥
दया गरीबी बन्दगी, समिता शील सुधार।
इतना लक्षण साधुके, कहैं कबीर विचार ॥ १८ ॥
बहुत दिननसे जोहता, बाट तुम्हारी राम।
जिय तरसे तुम मिलनको, मन नाहीं विश्राम ॥१९॥
सो दिन कैसा होयगा, गुरू गहोगे बाँह।
अपना कर बैठावगे, चरणकमलकी छांह ॥ २० ॥
क्या मुखले विन्ती करूं, लाज आवत है मोहि।
हमतो औगन बहु किये, कैसे भावों तोहि ॥२१॥
सुरति करौं मोरे सइयाँ, हम हैं भव जल माहि।
आपेहि बहि जायँगे, जो नहिं पकड़ो बाँह ॥ २२ ॥
मैं अपराधी जनमका, नखसिख भरा विकार।
तुम दाता दुख भंजना, मेरी करो उबार ॥ २३ ॥

अवगुण मेरे बापजी बखशो गरीब निवाज।
जो हौं पूत कपूत हौं, तऊ पिताको लाज ॥ २४ ॥
साहब तुम मति बीसरो, लाख लोभ लगि जाहि।
हम सम तुमरे बहुत हैं, तुम सम हमरे नाहि॥२५॥
कर जोरे विनती करूं, भवसागर अपार।
वन्दा ऊपर मिहर करी, आवागमन निवार ॥२६॥
अन्तर्यामी एक तू, आतमके आधार।
जो तुम छांड़ो साथको, कौन उतारे पार ॥ २७ ॥
अबकी जो सांई मिले, सब दुख आंखों रोय।
चरणौ ऊपर शिर धरूं, कहूँ जो कहना होय ॥२८॥
साहब तुम दयाल हौ, तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाजको, सूझे और न ठौर ॥ २९ ॥
मुझमें औगुन तुमहिं गुन, तुझ गुन औगुन मुझ।
जो मैं बिसरूँ तुझको, तू नहिं विसरे मुझ ॥३०॥

विज्ञानस्तोत्र

सत्तसत्तके नामसो सतसागर भरा सतके नाम तिहुँलोक छाजा ॥ सन्तजन आरती करे मेमतारी मेरि ढोल निशान मिरदंग बाजा। भक्तिसांची किया नाम निश्चैलिता सुन्नके सिखर ब्रह्माण्डगाजा ॥ सत्त कबीर सर्वज्ञ साहब मिले भजो सउनामका रंगराजा ॥ कबीर हमदीन दुनी दरवेशा ॥ हम किया सफल परवेशा ॥ हम हुआ सलामत देखा ॥ हम शब्द सरूपी पेखा ॥ हम रुण्ड मुण्डमें फीरा ॥ हम फाका फकर फकीरा ॥ हम रमे कौनकी नाल ॥ हमचलैं कौनकी चाल ॥ हम सर्वज्ञी सहजे रमे। हमारी वार न पार ॥ वारभी हमही पारभी हमही ॥ नाना दरिया तीर सकल निरन्तर हम रमें ॥ हम गहिरे गम्भीर ॥ खाली खलक खलकके मांही, यों गुरु कहै कबीर ॥ सत्तनामकी

आरती, निरमल भया शरीर ॥ धर्मदास लोक गये गुरु बहियां मिले कबीर ॥ धर्मदास लोक गये, छांड़ि सकल संसार ॥ हंसन पार उतरहीं, गुरु धर्मदास परिवार ॥ सतसुकृत लौलीन है, ज्ञान ध्यानको थीर ॥ अजावन वह पुरुष है, सो गहि लागो तीर ॥ अजावनसे जावन भया, जावनसे भये मूल ॥ चहुंदिशि फूटीवासना रही कली में मूल ॥ जब फूले तब गिर परे चरन कमलकी धूर ॥ कली फावरी हो रहे, साहब हाल हजूर ॥ कबीर मिले धर्मदासको, लिख परवाना दीन्ह ॥ आदि अन्तकी वीनती, यहीं लोकको चीन्ह ॥

अति लालीनता चीहन्त ज्ञानी ॥ शब्देशरूपी सुना कास बानी ॥ बिना देह साहब निरालम्भ जानी जानै जनावै कहावै न देवा ऐसा तत्वपूजे पुजावै लगावै न सेवा ॥ ध्यान धारी अखंडे निरासा

सुधासिन्धु पीवे न जावे पियासा ॥ प्रेमधाम धौर। उदासी अकेला ॥ लौलीन योगी गुरुज्ञान मेला ॥ मिलनता चलनता रहनता अपारी ॥ ऐसी दृष्टि देखो अनन्तो विचारी ॥ सदा चेत चेतन्त चितवन्त सूरा ॥ ऐसा ख्याल खेलन्त बूझन्त पूरा ॥ ज्ञानो न ध्यानो न मानो नहीं चन्द्रतारा ॥ ऊगे न भाने आगे न पीछे मध्ये न कोई ॥ ज्योंका जला ब्रह्म ज्यों ततसोई ॥ डारो न मूलो न वृक्षो न छाया ॥ जीवो न शीवो कालेन काना ॥ दृष्टि न मुष्टि न देवी न देवा ॥ जापो न थापो न जान सेवा । नहीं पौलपानी, न चन्दे न सूरा ॥ अखंडित ब्रह्म सोई सिद्ध पूरा ॥ हम नाहीं तुम नाहीं वंधो न भाइ ॥ निराधार आधार रंको न राइ ॥ गवैं न ध्यावैं न हेल न हेली ॥ नारी न पुरुषों न (चेली न चेला) खेली न खेला ॥ नहीं पेट पृष्ठे न

पावों न माथा ॥ जीवो न शीवो न नाथो अनाथा ॥
सेषो महेशो गणेशो न ग्वालं ॥ गोपी न ग्वाले न
कंसे न कालं ॥ आसे न पासे न दासे न देवा ॥
आवे न जावे लगावे न सेवा ॥ नहीं वार पारे न
निमरे हजूरा ॥ ज्योंका त्यों ततगहिरे गम्भीरा ॥
यन्त्रे न मन्त्रे न दर दे न धोका ॥ नरके न सरगे न
न संशे न शोका ॥ सेते न पीते न सबजे न लालं ॥
गोरे न सांवरे न वृद्धे न बालं ॥ भेदा न वेदा न
खेदा न कोई ॥ सदासुरति सोहं एकै न दाई ॥ जाने
जनावे जनावे न शूरा ॥ वारे न पारे नियरे हजूरा ॥
नादे न विंदे न जिल्दे न जीवा ॥ निरन्तर ब्रह्म
एकै शक्ति न शीवा ॥ नहीं योग योगी न भोगी
न मुक्ता ॥ सच्चिदानन्द साहब न बन्धे न मुक्ता ॥
खेले खेलावे खेलावे औ खेले ॥ चेते चितैता
चितावे औ चेते ॥ एके अनेके सो एकेन एके ॥

चित्तगुण चित्त विलास दास सो अन्तर नाहीं॥ आदिअन्तमें मध्यमें गोसांई अगहगहनमें नाहीं॥ गहनी गहिये सो कैसा॥ सोहं शब्द समान आदि ब्रह्म जैसेका तैसा॥ कहें कबीर हम खेले सहज सुभाव॥ अखह अढोल अबोल सोहं समिता॥ तामो आनवसा एक रमिता॥ वा रमताको लखे जो कोई॥ ताको आवा गमन न होई॥ ओऽहं सोऽहं सोऽहं सोई॥ ओऽहं कीलकसोऽहं बाला॥ सोऽहं सोऽहं बोले रिसाला॥ तिलक कहत कमोद कंकवतये चारों जुगपीर॥ धर्मदासको शब्द सुनाये सतगुरु सच्च कबीर॥ बाजा नाद भया परतीत॥ सतगुरु आये भौजल जीत॥ बाजा बाजा साहबका राज॥ मारा कूटा सब दगाबाज॥ हाजीरको हुजूर गाफिलको दूर॥ हिन्दूका गुरु मुसलमानका पीर। सात द्वीप नौखंडमें सोऽहंस च कबीर॥

दयासागर स्तुति

गुरुदयासागर ज्ञान आमरशब्द रूपी सतगुरं तासु चरन सरोज बंदो सुखदायक सुखसागरं ॥ योग जीत अजीत अगर भाषते सत सुकृतं ॥ दयापाल दयाल स्वामी ज्ञानदाता स्थितं ॥ क्षमाशील सन्तोष समिता आनन्दरूपी हिरदयं ॥ सहजभाव दिवेक स्थिर निरमया निहसंशयं ॥ निरमोही निरवैर निरभै अथक कथिता अविगतं । उपकार और उपदेश दाता मुक्तिमारन सतगुरुं ॥ दास भावकी प्रीति विनती भक्ति करन करावनं ॥ चौरासी बन्धन कर्म खण्डन बन्दी छोर कहावनं ॥ त्रिगुण रहिता सत्यवकता सत्तलोक निवासितं ॥ सतपुरुष जहाँ सतसाहब तहाँ आप विराजितं ॥ युगन युगन सत-पुरुष आज्ञा जीवनकारण पगुधरं ॥ दीनलीन अचीन होयके जगतमें डोलत फिरम् ॥ करुनामय कबीरके

बल सुखदायक सर्वलायकं ॥ जमभयंकर मानमरदन दुखिया जीव सहायकं ॥ धर्मदास करजोर विनवे दयाकरो मन बसकरं ॥ करू सेवा गुरुभक्ति अविचल निसिदिन अराधो सुमिरणं न

सतगुरुकी जो अधिक महिमा ज्ञानकुण्ड नहाइये॥ भरमित मन तब होत स्थिर बहुरि न भौजल आइये ॥ साधु संतकी अधिक महिमा रहनि कुण्ड नहाइये ॥ कामक्रोध विकार परिहरि बहुरि न भौजल आइये॥ दासातनकी अधिक महिमा सेवा कुंड नहाइये॥ प्रेमभक्ति पतिव्रत दृढकरि बहुरि न भौजल आइये ॥ जोगिजनकी अधिक महिमा युक्ति कुण्ड नहाइये ॥ चन्द्र सूरज मन गगन थिरकरि बहुरि न भौजल आइये॥श्रोता बकताकी अधिक महिमा बिचार कुंड नहाइये॥सार शब्द निबेरि लीजे बहुरि न भौजल आइये॥

गुरु साधुसंत समाज मध्ये भक्ति मुक्ति दृढाइये ॥ सुरति कर सतलोक पहुँचे बहुरि न भौंजल आइये॥ धर्मदास प्रकाश कीन्हों अकह कुंड नहाइये॥ सकल कलिविष धोय निर्मल बहुरि न भौजल आइये ॥ साहब कबीर प्रकाश सतगुरु भली सुमति दृढाइये ॥ सारमें ततसार दरसे सोई अकह कहाइये॥ धर्मदास पट खोलि देखो तत्वमें निःतत्व है ॥ कहैं कबीर निःतत्व दरशे आवागमन निवारिये ॥

चितावनी

कबीर–यनम जाय पुकारिया धर्मराय दरबार ॥ हंस मवासी होय रहा लगे न फांस हमार ॥ हमारी शंक ना करे, तुम्हरी धरै न धीर ॥ सतगुरुके बल गाक्षहीं, कहैं कबीर कबीर ॥ कबीर कहतो जान दे मेरी दसी न जाय ॥ खेबटियाके नावपर, चढे घनेरे

आय ॥ बाजा बाजा रहितका, परा नगरमें शोर ॥ सतगुरु खसन कबीर हैं (मोहि) नजर न आवे और ॥

सत्तका शब्द सुन भाई॥फकीरी अदल बदशाही॥ साधो बन्दगी दीदार ॥ सहज उत्तर सायर पार ॥ सोऽहं शब्दसे कर प्रीत ॥ अभय अखण्ड घरको बीत ॥ तनमें खबर कर भाई ॥ जामें नाम रुशनाई ॥ सूरति नगरवस्ती खूब ॥ बेदह उलट चढ महबूब ॥ सूरति नगरमें कर सैंल ॥ जामें आतमाको मेल ॥ *अमरी मूलसंधि मिलवा ॥ जापर रखो बायाँ पांवा ॥ दहिना मध्यमें धरना ॥ आसन अमर यों करना ॥ द्वादश पवन भरि पीजे ॥ शशिधर उलटि चढि लीजे ॥ तन मन वारना कीजे ॥ उलटि निज नाम रस पीजे ॥ तनमन सहित सखी श्वास ॥ इस

---

* अमर आसन अर्थात् सिद्धासन का पृष्ठ ४५

विधि करौं वहद बा ॥ सैदौंयो ननकोकरवान॥भौरों उलटि कस कमाय ॥ पर्वत छके दरिया जान ॥ करले तिरकुटी स्नान ॥ सहजे परम पद निर्वान ॥ तेरोमिटे आवाजान ॥ जामें गैबका बाजार ॥ सरवर दोई दोसे पार ॥ जा बिच खडे कुदरत झार ॥ शोभा कोटि अगम अपार ॥ लागे नौलख तारा कूल ॥ करनि कोट जरियामूल ॥ ताको देखना मत भूल ॥ रमता राम आम रसूला॥माया-मर्मकी कांची॥देखौं अन्दरकी सांची ॥ बरषे नींरवि मोती ॥ चन्दा सूरकी ज्योति॥ झलके झिलमिला नारी ॥ता बिच अल्प है क्यारी॥मानो प्रेमकी झारी खुलगई अगम किवारी बेडा भरमका खोजा ॥ दीपक नामका जोया ॥ योगी युगतिसे जीवै ॥ प्याला प्रेमका पीवै ॥ मौला पीवको कीजे । तन मन कुरबान कर लीजे॥परी है प्रेमकी

फांसी॥मनुवां गगनाका वासी॥बाज बिनातन्ती तूर॥ सहजे उगे पश्चिम सूर ॥ भौरा सुगन्धका प्यासा॥ किया है कंवलमें बासा ॥ रमता हंस है राजा ॥सहजे मलक आवाजा।।जा सुन्दर श्याम घन लाया॥ बादल गगनमें छाया ॥ अमृत बूंद झरलाया॥देख दोई नैन ललचाया ॥ अजब दीदारकोपाया॥दरियासहजमों न्हाया ॥दरिया उलट उमगे नीर ॥ता बिच चले चौसठ छीर ॥ हंसी आन बैठे तीरा ॥ सहजे चुगे मुक्ता हीरा ॥ मिला है प्रेमका प्यारा ॥ नहीं है नैनसों न्यारा ॥ जीवन मृतक न व्यापे काल ॥ जो त्रिकुटीसे पलक न टाल ॥ पलका पीवसे लागा ॥ धोखा दिलोंका भागा ॥ चितावनी चित्तविलास ॥ जब लग रहे पिंचर श्वास ॥ सोहं शब्द अजपाजाप ॥ जहां कबीर आपहि आप ॥

साखी

चितावनी चित्त लागी रहे, यह गति लखै न कोय ॥ अगमपंथके महलमें, अनहद बानी होय ॥ नाम नैनमें रमि रहा, जाने विरला कोय ॥ जाको सतगुरु मीलिया, ताको मालुम होय ॥ झण्डा रोपा गैबका, दोय पर्वतके संधि ॥ संधि पिछाने शब्दको, दृष्टि कँवलकर बन्द ॥ झलके ज्योति छिलमिला, बिन बाती बिन तेल ॥ चहुंदिशि सूरज उगिया, ऐसा अद्बुद खेल ॥ जागृत रूपी रहत है, सत मति गहिर गंभीर ॥ अजरनाम बिनसे नहीं, सोहं सन्त कबीर ॥ इति ॥

ज्ञानगूदरी

अलख पुरुष जब किया विचारा ॥ लखचौरासी धागा डारा ॥ पांच तत्वकी गुदरी बीनी ॥ तीन गुणनसे ठाढी कीन्ही ॥ तामें जीव ब्रह्म औ माया ॥

समरथ ऐसा खेल बनाया ॥ जीवन पांच पचीसों लागे ॥ काम क्रोध मोह पद्पागे ॥ काया गुदरीका विस्तारा ॥ देखो सन्तो अनम सिंगारा ॥ चांद सूर दोह पेवन लागे ॥ गुरुपरतापसे सोवत जागे ॥ शब्द की सुई सुरतिका डोरा ॥ ज्ञानकी डोभ सिरजन जोरा ॥ अब गुदरीकी कर हुशियारी ॥ दाग न लागे देख विचारी ॥ सुमतिकी साबुन सिरजन धोई ॥ कुमिति मैलको डारा खोई ॥ जिन गुदरीका किया विचारा ॥ सो जन भेटन सिरजन हारा ॥ धीरजधुनी ध्यानधर आसन ॥ सतको कोपीन सहज सिंहासन॥ युगति कमण्डल करगहि लीन्हा ॥ प्रेम फावडी मुरशिद चीन्हा ॥ सेली शील विवेककी माला ॥ दयाकी टोपीतन धर्मशाला ॥ मिहर मतंगा मत वैसाखी ॥ मृगछाला मनहीको राखी ॥ निश्चय धोती पवन जनेऊ ॥ अजपा जपे सो जाने भेऊ ॥ रहै निरन्तर

सतगुरु दाया ॥ साधु संगति कर सब कुछ पाया ॥ लौकी लकुटी हृदया झोरी ॥ क्षमा खराऊँ पहिर बहोरी ॥ मुक्ति मेखला सुकृत सुमिरनी ॥ प्रेम पियाला पीवे मौनी॥उदास कूबरी कलह निवारी ॥ ममता कुत्तीको ललकारी ॥ युक्ति जंजीर बांधि जब लीन्हा ॥ अगम अगोचर खिरकी चीन्हा ॥ विराग त्याग विज्ञान निधाना ॥ तत्त तिलक दीन्ही निर्बाना ॥ गुरुगम चकमक मन समलूला ॥ ब्रह्म अग्नि प्रगट कर मूला ॥ संशयशोक सकल भ्रम जारा ॥ पांच पचीसी परगट मारा ॥ दिलका दर्पन दुविधा खोई ॥ सीवैरागी पक्का होई ॥ शून्य महलमें फेरी हैई ॥ अमृतसरकी भिक्षा लेई ॥ दुख सुख मेला जगका भाऊ ॥ तिरबेनीके घाट नहाऊ ॥ तनमन सोधि भया जब ज्ञाना ॥ तब लख पावे पद निर्बाना ॥ अष्टकं बल दल

चक्कर सूझा ॥ योगी आप आपमें बूझा ॥ इंगला पिंगलाके घरजाई ॥ सुषुमनि नीर ठहरा हराई ॥ ओहं सोहं तत्वविचारा ॥ वंकनालमें लिया संभारा॥ मनको मारि गगन चढि जाई ॥ मानसरोवर पैठि नहाई ॥ अनहद नाद नामका पूजा ॥ ब्रह्म वैराग देव नहिं दूजा ॥ छुट गये कशमल कर्मज लेखा ॥ यहि नैनन साहबको देखा ॥ अहंकार अभिमान विडारा ॥ घटका चौका कर उजियारा ॥ चितकर चंदन तुलसी फूला ॥ हितकर संपुट करले मूला ॥ श्रद्धा चँवर प्रीतिकर धूपा ॥ नौतम नाम साहिबका रूपा ॥ गुदरी पहिरे आप अलेखा ॥ जिन यह प्रगट चलाई भेखा ॥ साहब कबीर बख्शि जब दीन्हा ॥ सुर नर मुनि सब गुदरी लीन्हा ॥ ज्ञान गूदरी पढे प्रभाता ॥ जनम जनमके पातक जाता ॥ ज्ञान गूदरी पढे मध्याना ॥ सो लखि पावे पद

निर्वाना ॥ संज्ञासुमिरण जो नर करई । जरामरन भवसागर तरई ॥ कहै कबीर सुनो धर्मदासा ॥ ज्ञानगूदरी करो प्रकाशा ॥

साखी

मालाटोपी सुमिरिनी, सतगुरु दिया बखशीश ॥ पलपल गुरुको बन्दगी, चरण नवाऊं सीस॥भौ भंजन दुख परहरन, अम्मर करनशरीर ॥ आदि युगादीआप हौ, चारोंयुग कव्बीर ॥ बन्दी छोर कहाइयां, बलख शहर मंझार ॥ छूटे बंदे सब भेषकेधनधन कहे संसार ॥

सत्यनाम

अथ पिछले रातको विर*ह वर्णन

दोहा-यदि निश्चय कै नखत गण अपने अपने ढंग ।

* ब्राह्म मुहूर्तके प्रथम आंख खुलनेपर यदि अवकाश हो तो इसका पाठ करना फल दायक है ।

भय भ्रम हटे न दुख मिटे, होय न तिमिर विभंग १
करुणामय करुणानिरख. हरषि चितोनन और ।
सुख पावे मुख देखि हरि, होय बिरह निसिभोर ॥२॥
आवन आवन कहि गये. अजहुं न आये लाल ।
धावन फिरा न पिउ फिरे भा मन बालबिहाल ॥३॥

सवैया

ढिग मान सरोवर नंदनिमें, विधि मीन फिरे किहि कारनते। जबते रतिनाथ बिछोह भयो, मनके बिरहानल जारनते । प्रभु दीन दयाल दया करिये, विनती सुनि लाख हजारन ते। करुणाधर धारिहिये करुणा पतिया पति पाह सकारनते ॥ १ ॥

उनमाद उचाटभये मनमा, उदवेगन चाट सिंगारनते । नित लेत:उस्वास है आश लगी, तन छीन भयो मन मारनते ॥ गुन गान प्रलाप कलापन ते

तन तापत ताहि विचारनते । पलना बिखरे ललना सुरती, मूरति हरिहीय संभारन ते ॥ २ ॥

जग जान जहान उधारन हो, कलि कायर क्रूर सुधारन ते ॥ गनिका मनिका कह फेरत हैं, मोहिं सो कपटी भवतारनते ॥ प्रभु नाम जहाज तरीदलके छनमें जगती जिव भारनते । न मिले पिय नेह कबीर विना, विधि मीन फिरे यहि कारण ते ॥ ३ ॥

सोरठा

निशिदिन साले घाव, नींद मोहि आवे नहीं ।
पीय मिलनकी चाव, सो नैहर भावै नहीं ॥ १ ॥

सवैया

उर सालत घाव दिना रतिया, घरके छतिया नहिं चैन लई है ॥ सुख भूरि भरा तृण तेरि धरा, भलभोग सबै दुख रोग गई है ॥ प्रिय आजइ काल कहे परसों,

बरसों बरसों नहिं भेट भई है। मन मोहन मोहन मोह दई, बिन दर्द दई दिन शर्द दई है ॥ ४ ॥

जिनके चित्त चिन्त खचिन्त भयो, उर अन्तर ज्वाल निरंतर जारी। तन ठट्ट रहे मन भट्ट दहें, नित सोचय पोखन खोचन भारी ॥ तिय साधु मतीजिमती विधिको झुखै पुखै किमि आस हमारी। यदि औसर चौसर खेलहुंगी ननहू मनहू धन दावपै धारी ॥५॥

हरि नेरे अहो किधौं दूर कहूं, भरि पूर हजूर हो नैनन मेरे। हिय ठाहर हौं किधौं बाहर हौं, धरती अस्मान तुही तुहि टेरे ॥ गलि गोरिनमें तरुतीरिनमें जड साखन फूलन पातन हेरे। मोही समाय लखाय नहीं, कहु कौन उपाय गहौं पद तेरे ॥ ६ ॥

हमसूँ किधो भिन्न किधौं यक है तू मुहिमें किधों मैं तुहि मांही। सब पूरन देखत तुहि तुही, किधु

एक अहो धो अनेकन आही ॥ किधो स्वर्ग बसौ अपवर्ग किधो, निशिवासर वास किधो मोहि पाही ॥ पिय आपै आप जो व्याप सही किहि कारन ते दुविधा दरसाही ॥ ७ ॥

कहँ गोय रहे विष बोय रहे, नित मो मन मंदिर माहि बिहारी। बिनु लालन बाल बिहालपरी, वहकौन घरी जो हरी पगधारी ॥ सुखको नहीं लेश कलेश भयो कर, कहा पिया परदेश पधारी। अपने अपने हरि भेंट भई, मुँह खोल लखे दृग लोल लबारी ॥८॥

कबहूं न पिया अपमान किया, किमि कै विधि वाम बिछोह करी है। लकुटीकर ले मोहि मारकहूं जनु कांटकी मारहु फूल छरी है ॥ दुर दूर कह्यौं दब दूरि दुरा, जब टेर हरी तब पांय परी है ॥ जिहि भांतिसे राखि रही त्यौंहि त्यों, कछु भोग धरी तिहिं पेट भरी है ॥ ९ ॥

कह कबीर करो तन पोर परो, किमि धीर धरो नहिं प्रीतम आवो। दिनरात कराहि कराहि उठे- विरहा दव दाहि जो ताहि न पावो। हिय हूक परी कह चूक परी विधना सिधना मम काम पुरावो। सुन हेरि भट्ट अब ठाट टट्टू, मति धूसर दूसर वेष बनावो ॥ १० ॥

सब भूषण भू छटकाय दियो, सत्संग विभूतिले अंगन मेली।शिर टोप दया है कोपीन हया, जपमाल कथा सतनामको सेलो। करमंडल कर्म गहे कर में, चलि खोज पिया परिवारहिं पेली। बनि योगिन वेष विरागिनसों, सुख दुःख सबै अपनेतन झेली॥११॥

हरिद्वार गया नहिं मेल भया, न बनारस मांहि बनारस पीना। मथुरा न अवध न द्वारदरी, ददरी वदरीवन मक्कामदीना॥न प्रयाग न पुष्कर थान

जिया, भलछान किया सो पिया है कहीना । सब अरसट भर्मत भर्म भरी, कछु हाथ नरी निजनाथ न चीना ॥ १२ ॥

गिरिनारि न पैठि पहारनपै, ऋषिराय अखारन जायके जोही । सुन सान परो चवगान खरो, दुख दूर करो तिहिं जूनमें ओहो ॥ केहि पूछौं अवै लखि छूछौं सबै कोय पीय बतावहु बाट बटौही । सब खोज थकी पिय प्रेम छकी टरी काहू जो नाट मिले अब मोही ॥ १३ ॥

तब पैठि गुहा हरि ध्यान गहा, दम संयम नेम तपोधन भारी ॥ जपयोग अचार विचार घने हठ योग ठने दृढ लावहि तारी ॥ नभ जायके देखत ज्योति जगे, छबि छाई है मोतिनकी लर झारी ॥

तनको नसिकै मनको बसिकै, षट चक्रको वेध चढ़ी हैं अटारी ॥ १४ ॥

चढ जाइ जटा गढ छाय छटा, महिं चित्त उठा निजहित्त न हेरो जब और न दौर रही कतहूं, मतहू पतहू गतहू गतगेरो ॥ परि पाप विनय सतभाय करो, शरणागत मांगत हौं प्रभु तेरो । अब आन उपाय उपाय कहा, नहि पायहिं पाय थका इहि मेरो ॥१५॥

हाहरि पान शरीरमें वेधत, सीर समीरहु तीर सो लागे । हे हरि ! चन्द्रसमीशर नारत, मानहु आगि लुकारण दागे ॥ हे हरि धन्य सुभावसुभागिन, सोच रही बिरही नित जागे । हे हरि सो सुखसे किमि सोवत दुखः, दोहागिनी जो पति त्यागे ॥ १६ ॥

हे हरि आजु कन्हाई नहीं ग्रह, ग्रीषम ताप सो लाग जुन्हाये । हे हरि ई निसि नागिन डंसत, पीव

विना जीव कौन बनाये। हे हरि नैनतृषा जलपूरित सिन्धु स्वरूप विना न अघाये। हे हरि पातहु को खरका सुनि, जानि परे हमरो हरि आये ॥१६॥

विलपात वितै दिनरात सबै, ढिलगात अनेक जो आंख झपाई। कोई स्वप्नमें द्वार पुकार कहे,सुनु बाल लला तव द्वारपै आई॥ जब आंख उधारनको करके, करके शुभ अंग सगून लहाई। हरषे दुखदो सरके विरहा, हरिके हरिके सुनि आगम पाई ॥१८॥

अब आवनआवन होंय रह्यो, जिहि बार बलम्ब मेरे कर ऐहैं ॥ सुख सम्पति दम्पति देखतके, सुर नायकहू मन माहँ सिहै हैं ॥ हरि छूति विभूत भरी लभरी, कनधूलहु धूम न दूसर सैहै॥ तिहुँलोक पलोक विलोक नसो, धन धान्य न धाम धन दुरपै है ॥ १९ ॥

अजहूँ नहिं दूती सँदेश दियो, मन माहिं अन्देश

यही खटको।इतने महँ धावन आई गयो, अब साज शृङ्गार सबै ठटको । कछु बारमें आनि पहूँच पिया, धनि और नहीं गतमें भटको । सुनिके पिय आगम मोद महा, मग जोह सन्ताप घटा घटको ॥२०॥

कवित्त

नैन मीन परवाह सरितावलि अगाह, सागर स्वरूप हरि मिलन ललकमें । ठहरे कौन कौन विधि पाये बिनवार निधि, मिलन निहाल भई पलकि पलकमें॥ चरणामृत कन परयो आनि मुख धन भरी, गुण ज्ञान छन बुन्दकी छलकमें । प्रीतम प्यारे पगलागि पड़े भागजागि, पदरज सज निज आँखिन अलकमें॥ १॥

प्रातःसन्ध्या साखी

नमो नमो गुरुदेवजु, सत्य स्वरूपी देव।आदि अंत गुणकालके, मेटनहारे भेव॥ १ ॥ नमोनमोतुव चरणको

सतगुरुदीनदयाल । तुम्हारी कृपा कटाक्षसे, कटैं सकल भ्रमजाल ॥२॥ प्रणमों श्रीगुरुदेवको, सो है सदा दयाल । काम क्रोध मद लोभको, क्षणमें देवै टाल ॥३॥ वाणी निर्मल प्रकाश करी, बुद्धि निर्मल करिदेउ । मैं मूरख अज्ञान हूं, नहिं आवत कछु भेउ ॥४॥ मैं अधीन बन्दन करूं, सुनियो श्रीगुरुदाय मारग सिर्जनहारका, दीजै मोहिं बताय ॥५॥ भवसागर भारी भया, गहरा अगम अथाह । तुम दयाल दाया करो, तब पाऊँ कछु थाह ॥६॥ ठाढी हौं कर जोरिके. अरज करों गुरु देव । तुमही दीन दयाल हो, बांह गहीके लेव ॥ ७ ॥ नमोनमो गुरुदेवजी, प्रणाम करौं अनन्त । तव कृपाते पाइहौं, भवसागरको अन्त ॥ ८ ॥ तुम सत्य पुरुष परमात्मा, पूरण विश्वा बीस । सत्य गुरु अविचल तुही, कहि नवाऊँ सीस ॥ ९ ॥

बन्दों श्रीगुरुदेवजी, तुमही दीनदयाल। मैं अधीन विनती करूँ, काटो यह भवजाल ॥ १० ॥ बन्दों गुरुतव चरणको, मागूँ निर्मल बुद्धि। कालजालका भय बहु, लीजे मोरी शुद्धि ॥११॥ काल फँसायो जालमें, हरी ज्ञान अरु ध्यान। तव कृपा विनु सद्गुरु, कैसे पाऊँ ज्ञान ॥ १२ ॥ अब दुखवहू भवमें सह्यो, भटक्यों बहु जग आश ॥ तुमही प्रभु दुःख हरन, दीजे ज्ञान विलास ॥ १३ ॥ आदि गुरु अदली तुही, तो विनु नहिं कछु ठौर। बहु-विधि काल सताइया, सुनो हंस शिर मौर ॥ १४ ॥ आदि पुरुष अविचल तुही चलाचली संसार। अजर अमर नाम प्रभु तुमहि हौ, आधि-व्याधि गुण जार ॥ १५ ॥ तुमविन कैसे होइहौं, चिन्ता रहित अचिन्त। अमर पदारथ दीजिये अमर नाम निश्चिन्त ॥१६॥ कालक नगर विनाश है, क्षणमें

जाइ नशाय।गुरु पुरुष कृपा करैं, सार पदारथ पाय ॥१७॥ जाते भवबन्धन कटे, दीजो ज्ञान मुनीन्द्र। सत्य सुकृत कृपा करो, काटो कर्मके विन्द ॥१८॥ करुणामय करुणा करि, दीजै सत्य सुकाम। बन्दत हौं तव चरण प्रभु, आशा गुरु सत्तनाम ॥ १९ ॥ तुम दाता हम मांगता, सत्य कबीर दयाल।पारख देह व्याधा हरो, मेटो यमको जाल ॥२०॥ किसी कामका हूँ नहीं. रहित ज्ञान अरु ध्यान। सत्य कबीर सो कृपा करि, दीजे पारखध्यान॥२१॥ कोहमको जगत यह, रञ्चक जानों भेव।सत्य कबीर दुःख पर-हरू, पावौ आतम सेव॥२२॥ काल संधि झाई अहै, त्रयविधि कालके जाल। भेदवाक्य दीजे बता, सत्य कबीर दयाल ॥२३॥ सत्य कबीरका बालका, पारख बिन कंगाल। हंसी तुम्हारी होत है, वेगहि लेहु सँभाल

॥२४॥ हंसन नायक सद्गुरु, सत्य लोक जिहि बास।
जिनके शिशुको जगतमें काल देत हैं त्रास ॥२५॥
औगुण पूरति बाल बुद्धि, तदपि पिता गुणवंत।
नाम हँसावत पितहिको, सुनि कबीर महमंत॥२६॥
हंस उधारण सत्यगुरु, अधभ उधारण नाम।
बन्दीछोर कृपाल प्रभु, सत्य लोक तवधाम ॥२७॥
हंस उधारण तारण, तोर नाम जग माहिं।
मैं दुखिया भवमें रहौं, बिरद तुम्हार लजाहिं॥२८॥
कहँ लगि कहुँ अशरण शरण, निर्भय पद दातार।
मैं अनाथ तुव शरण हो, वेगि उतारो पार ॥२९॥
जो तुम नहीं सुधि लेवे तो, दूसर कौन सहाय।
काल जालको मेटिके, देवे पार लगाय ॥ ३० ॥

प्रभाती स्तुति

भुजंगप्रयात छंद

कबीरं रविं ज्ञान गो मुक्तिहस्तं। उदे द्योस नाथा

सनाथा समस्तं ॥ जनं रञ्जनं भञ्जनं भौविषादं ।
अनन्तं अनादं स्वसम्वेद वादं ॥ निरीहं निराधार
ज्ञानं गभीरम् । शरीरं मनोवाक वन्दे कबीरं ॥१॥
भयं माननं काननं कर्म दहनं । दुखं दारिदं
दालकं कालगहनं ॥ मुनीशं ऋषीशं अहीशं अमेयं ।
जगन्नायकं पावकं सेऽव्य सेऽव्यं । वली केल गर्व दलो
बांह वीरं । शरीरं मनोवाक बन्दे कबीरं ॥ २ ॥
जनं पातकं घातकं सर्व दोषं । अहतं परे पार
भौ काल काषं ॥ नभौ मूजनं पूजनं पादकंजं॥कृतांतं
कृतं निवृत्त भर्म भञ्जं ॥ दूरे चोरे सोहं परे धौरं थीरं
शरीर मनोवाक बन्दे कबीरं ॥ ३ ॥
स्वसम्वाद वक्ता विरक्ता विहारं ॥ गुणं निर्गुणं
सर्गुणं सर्वसारं ॥ अखंण्डं अदण्डं प्रभुं निर्विकारं

महत्वं गुणं पंचतत्वंतु पारं ॥ नरं तारनं कारनं तार तीरं । शरीरं मनोवाक बन्दे कबीरं ॥ ४ ॥

निराकारअंकार हंकार हन्ता । विषम वासना सासना शंक अन्ता ॥ अछेदं अभेदं अकोहं अमोहं। गुणं ज्ञान गेहं ओहं अद्रोहं ॥ कृपा लोचनं मोचनं मृत्यु पीरं । शरीरं मनोवाक वन्दे कबीरं ॥ ५ ॥

क्षरंपार पुरुषोत्तमं अक्षरादिं । अलेखं अभेदं निरच्छरं अनादिं ॥ गहंतं महाव्याल कलं करालं । दहतं भवं सम्भवं दुःखजालं ॥ नलेशं कलेशं न माया समीरं । शमीरं मनो वाक बन्दे कबीरं ॥ ६ ॥

गुणानन्तधामं निकामं अयोगी । अविद्या परं हे क्षमा हेत छोनी ॥ उपायं पुनःपोष पालं कृपालं । दहा दौर्मद्दा भैरवी भैरुकालं ॥ धराधै धर्मधै धर्मधी ध्यानधीरं । शरीरं मनो वाक बन्दे कबीरं ॥ ७ ॥

कृति सुकृति सुकृतो चित चीते । प्रभा ज्ञान गम्यं पदाम्भोज प्रीते॥ कबीराष्टकं ये पठंते प्रभाते॥ मने भूरिमै भर्म कर्म निपातं ॥ लहे लाभं हिरंबरं रम्य चीरं शरीरं मनोवाक बन्दे कबीरं ॥ ८ ॥

कबीर भानु उदय सवैया

रवि आगम साख समागमको, घरियाल पुकार लगी जबलोहीं । सुनि शब्द निशान पिसान भये, सठ सेन सहायक दुर्जन द्रोही ॥ नरनाम सुरासुर सीस नवै, उदयाचल पै रविमण्डल सोही । धन्य धन्य प्रभा करधाम प्रभा, खलवाम वहे तुम्हरो मुख जोही ॥१॥

---

१ भुजंग प्रयात छंद चार भगणका होता है यथा–यचौंमें प्रभुतें यह हाथ जोरी फिरे आपुते न कबो बुद्धिमोरी । भुजंग प्रयातोपमा चित जाको । जुरैं ना कदा भूलिके संग ताको । छन्दप्रभाकर ।

कुल कंटक वक्त्र विलाय गये, रथ चक्रलखे रवि चक्रवतीके ॥ गुन ज्ञान गँभीर हिये सरसे, परसे परसे प्रिय प्राणपतीके॥ बड़भाग सुभाग सुभागिनको सुख साज समाज है आज सतीके । विरहातप ताप संतापविते भ्रम भय चलिगये गलि ज्ञान गतीके॥२॥

यह रैन भयंकर घोर महा, तव तेज दहा तिहूँ लोकनस्वामी । अब सूझि परे कछू बूझि परे, सत्त नाम चरित्र पवित्र प्रनामी ॥ दुख दायक चोरचकोर चका, सब भाग अभाग कुमारग गामी। द्दगद्दष्टि खरी गुन ज्ञान भरी, जगसीस करीं तम पोस नमामी ॥ २ ॥

सत्य कबीरको सत्य और मन राजाको झूंठ, दोनोंका युद्ध वर्णन

पढि सत्य अगार नगार दियो, निज सत्य व शुद्ध स्वरूप समेते। छबि पुञ्ज महा सुख भुंज भले, धनधर्म

रुधीरज ध्यान सचेते॥मल सोधन राग विराग जिन्हें। नहिं क्रोध कषाय जहां लगि पेते। सुख दायक है सब लायक है, जन शोक सदायक दर्शन देते ॥ ४ ॥

असि मूलठे झूठ उठे तिहपै, जिनके हियमें सततें दुख भारी। एक ठौर कियो सजिसैम सटै, निज दौर जहां लगि ठानत रारी॥तिहि संग अनीभल ढंग वनी, तब अग्र चला समुहे ललकारी।दलदम्भ ठटे खल है निपटे, गहि मान मलानजुरे सब छारी ॥५॥

रनशूर महावल शूर सबै, नहिं नूर कहूं लखिये तन कारे। सव अस्त्रन वस्त्रन श्याम सजे, चलिये सब सत्यके युद्ध विचारे॥अभिमानके कुंजर झूठ चढा; निज फौज पराक्रम पूंज सुधारे।अरु सत्यके मार-नको सबही, अपनो अपनो बल वीर्य सकारे॥६॥

सह सत्य अकेल सहाय नहीं; रिपु मैं नहिं सो

मनमें कछु मानी।इतने महँ झूट निशान वजो अरु श्याम ध्वजां तहवाँ लहरानी॥ध्वज टूटि गयो रिपु फूटि गयो, सत ताक पताक दिशा दृग तानी।तिहि तेज प्रतापहुते, हुतेसब भागि चले विथुनी विहरानी७

कोई शूर सपूत बड़े तिनमें, जो गुमान गहे पग डारत आगे । विनसे सबही जिन मान गही, नहिं तेज सही मरिगे कछु भागे ॥ दहिगो सब बाहन राहनमें, रहिगो यक झूठ अजौं जिह जागे । जब पेलि बढाय चढाय कियो, सत सन्मुख होकर युद्ध जो मांगे ॥८॥ जिमि श्याम घटा रन आनि डटा, निज मत मतंग चलावत सोई । अति रूप भयानक कै जग जीव, डरावन जालिम है जिमि जोई । ज्योंहीं ज्यों सत्त समीप गयो बलछीन भयो सब सञ्चन खोई

नियरान गयन्देहि प्राण तबै जरि छार भयो तन खाक मिलोई ॥ ९ ॥

वैराग विवेक विचार बढे, अरु ज्ञान चढे है निशान बजाई । इन चारिहु युत्थप संग अनी, चतुरंग धनी दम संयमताई ॥ शुचि साधन मौन रु दान दया, है आचार तपोधन कौन गनाई । दल साजिके सत्य कबीर चढै, रिपु धीर कहा जो सकै समुहाई॥ १०॥

दुसरी दिशिते मनराव अनी, नहिं जाति गनी अगनी गहि धाई । तहँ काम रु क्रोध है मोह महा, अरु लोभ रहा सरदार लड़ाई॥ निरदाय असत्त अशौच लिये सब आय सहाय भये यक ठाई॥ चौगान समाज जुरे दल दो, घमसान परे तहँ लोह चलाई ॥ ११॥

दिननायक सायक छूटि चले, महि खसेघनी-ध्वजनी ध्वज टूटे । तमके दमके द्युति दामिनिज्यों,

दशहूं दिशि घेरि लियो खल फूटे ॥ करको सर कोटि दिवाकरको सब देशविदेशनमें जब टूटे । नहिं सूर कोई भजि, दूर गये, रिपुसेन सहा, ये सबै गहि कूटे ॥ १२ ॥

हरिश्वेत ध्वजा फहरान लगे, गहनान लगे हैं अनाहत डंका । यम यत्थ अपार खभार परे जितही तितही सब सोच ससंका ॥ वलबीर कबीरके सन्मुख हो नहिं धीर धरे तिरछा अरु बंका । गणतीर शरीर समाय गये, घनमांह भये सब कालकोफंका ॥ १३ ॥

मद मार महावतवार चले, समुहाय वजावत दोल दमामा । गहि शस्त्र अनेक चमू चमकी पहिरै, गहिरे रंग जामिन जामा ॥ दुरबुद्धि दया छल छिद्र पगा, तहँ कपट अखंड सगा सठ तामा ॥ भय मर्म भयावन भूत चले, बहु दूत कपून रले अघधामा ॥ १४ ॥

क्रमही क्रम ज्यों नियराय चले, सियराम चले

अगीले भट भोरे ॥ हरुए हरुए बिचले बिचले, पछिले महिपाल रहे कछु थोरे। थिरता पद हानि डटे कितने, अभिमानते बात सटे बरजोरे। जब पेलि अगार लगार चले गहि गूञ्जसों सूर्य हडावरि फोरे॥ १५॥

शर शब्द सरासर छूटि चले, यहि ओरते शत्रुके सेनमें छाई। सब घायल भूमि परे छनमें, अरिचंड प्रचंड अनी बिचलाई॥ गहि ज्ञानके गोलनसर्द कियो, महिमर्द गनी महि गर्द मिलाई। रनमें मन राडको हाड गडे, वैराग विवेकी टेक रहाई ॥ १६ ॥

बनवान विरागरु ज्ञान भये, रिपु सैनविये सब ही विचलाई। जय शंख निशान रु घंट बजे, शहनात अनाहत केरि सुहाई। चहुँ ओरते घेरि लिये गलियोजब बन्धन बांधि लिया मनराई। गढमें पहरा बिठवाय दियो, अरु नम्र फिरी सतनाम दुहाई ॥ १७ ॥

प्रभु दीनप्रकाश जो उग्रनको, सोइ सूपच छुद्र चमार चण्डारो॥नहिं तारत बार लखा विलखा, अघ ओघ नशाय कषाय उबारो ।। सम भाव दुराव नहीं जिनके, यमनादिकहू सुखधाम सिधारो। कर्मनासहि देव सरी समके, खल पाव सत्त है नाम तुम्हारो१८

प्रभु देखि सतोगुन व्यापि गयो, कलिमें धृत है कृतकी व्रत बाना। महि भीतरको डर गाड धने, तम घोर व उल्लासमी उस बाना ॥ निजुसेन समेत समाय तहां, तुमरे डरते कलि जाय छिपाना। चकचौंधरिचो चमगादरके, प्रभु निंदक ताहि न काहिं ठिकाना१९

रथ धर्म अरूढ अगार बढें, गहि ज्ञानन गूढ निसा मद हारी ॥ मुख सप्त तुरङ्ग सुरङ्ग सजे प्रभु अंश प्रशंस पुरान पुकारी ॥ सतनाम सही रथवाहक तौ रथ चक्र जो वेद स्वत्म्मं उचारी ॥ गुरुचार सोई

गुनचार बने, तप तेज अमै कर दुष्ट सँहारी॥२०॥

कवित्त

जब ज्वाल जरत जगतपति जोहि, जग, जीवन जियावत जुडाव जगजरनी। भाग भल भक्त भगवन्त भजु भोर भोर, भंजत भरम भय भीर भय भरनी। वारिनिधि वोहित वहत बुध बेरुबर, वेद वरदानन बखान बर बरनी।घलि कलामख कुल कंटक कटत कोटि, कीर्तन कबीर करतारकी कतरनी ॥.

इति कबीर भानु उदय सवैया और कवित्त

मध्याह्न संध्या साखी

साहब दीनदयाल गुरु, सो पर और न कोय
शरण आय यम सो बचे, आवागमन न होय॥१॥
दया करन अवगुणहरन, तारण तरण उदार। अशरण
शरण बन्दूं चरण, तुम विनु नहिं निस्तार ॥ २ ॥

देखि अधमता आपनी,परवश यमकेहाथ। त्रसित गहा साहिबचरण,भवभय हारि सनाथ॥३॥प्रभु सबलायक पारखी,हौं भर्मिक अज्ञान । लोह कनक पारस करे, साहब शरण समान ॥४॥वन्दौं चरण सब दुखह- रन, प्रभु प्रसाद दुख भूरि।दया करी सब दुखहरी, संसृत शूल भो दूरि ॥५॥ बहे बहाये जात थे भौसा गरके मांहि, दयाकरी परखाय सब, शरण आय गहिं बाह॥६॥सतत अभय गुरुके चरण, सदा परख प्रकाश। समन सबे भवजालतम, राम रहस सुख बास ॥७॥ सर्वोपरि गुरुके चरण, जो हारी भवखेद । परम उदार सागर दया, थाह न पावेवेद॥८॥वारौं तन मन धन सबे, पद परवावन हार । युग अनन्त जो पचि, मरे, बिनु गुरु नहिं निस्तार ॥९॥ संधि परखावे, जीवकी, काटे यमको फन्द।साहब दीन दयालसौं,

संशय खण्डे द्वन्द्व ॥१०॥ द्वन्दज सत्य असत्यको, जहां नहीं कुछ लेश। सो प्रकाश गुरु परख है मेटत सकल कलेश ॥ ११ ॥ जाहि दया गुरु परखलहि, मेटे सब भव जाल। रक्षक वन्दीछोर सो साहब दीन दयाल ॥१२॥ भेष अमङ्गल नष्ट गुण जेते त्रय विधि फांस। अदल चलाई कालपर, सो त्रिदोषहिं नाश ॥ १३ ॥ अदल जलाई सत्यका साहब बन्दी छोर। पारखि छोरे जीवनको यमके हाथ मरोर ॥१४॥ दयाल पारखलहि, मुधरे सब भ्रमजाल। अदल चले तब सत्यका, शिर धुनि रोवे काल ॥१५॥ प्रथम शब्द सुधारिके, टारे त्रयविधि जाल। झायीं मेटत संधिको, ऐसो शरण दयाल ॥१६॥ पारख गुरु सुख वास है, जहां न फन्दा काल। सो विनु जीव विनाश है, चौरासीके जाल ॥१७॥ जो रह संयुत पारखी, साहब सांचा सोय।

तरे तारे भव जालसो, काल देखि रहे रोय॥१८॥
पारख तोडे भ्रम गड़े, खीजे काल कराल, करि न
सके प्रभुता कछू, ऐसो शरण दयाल ॥१९॥ सत्य
शरण प्रभु पायते, टूटे मोहके डोर। अभय भक्ति
पारख सदा, कला न लागे चोर॥२०॥प्रभुके शरण
सहाय बिन, कैसे होय उबार। अधमकाल ग्रासे
सबे,अपनी आल पसार॥२१॥परवश जियरा कालके,
दुख पावे संसार। बिनु पारख भटकत फिरे, थके
विचार विचार ॥२२॥चारि वेद षट अंशसों, प्रगट
भये जग आय। अर्थ विचारत जिव थके, झगरा, बहुत
मचाय॥२३॥ षट षट षटके जानहीं ते न परैं भव
फंद। गुरु पारख प्रतापसों, सदा रहे आनन्द॥२४॥
महासागर संसार है, जाके संशय सार। सुर नर मुनि
सब बहिगये, पारिख उतरे पार ॥२५॥ पारख अचल

खंडहै, ताहि परे नहिं और। विनु तेहि भटकि जग रहे, जहां नहीं तिथि ठौर ॥२६॥ रामरहस साहब-चरण अभय अंशक उदोत। आवागमनकी गम नहीं, भोर सांझ नहीं होत ॥२७॥ नाशकके सब रूप है, रहे तेहि मध्य समाय। कष्ट विविध विधि पात्रते, पारख लीन छुड़ाय ॥२८॥ प्रभु शरणागत परख दृढ, सत्यलोक प्रमाण। सन्तत जीव विलास है, टूटा काल गुमान ॥२९॥ जो जीव बिलासमें, लहे सदा सुख चैन। तिनके त्रास न कालके, और कहेंको बैन ॥ ३० ॥ परख विलासी जीवजे, धनी सोई संसार। और सबै निर्धन रहे, यमके हाथ खुबार ॥ ३१ ॥ सतत सुख है परखमें, साधन यतन बिनास। भूलि भटक मति जाहु जिव, विविधिकर्मके फांस ॥३२॥ धन्य धन्य तारण तरण,

जिन परखा संसार । तेइ बंदी छोर है, तारणतरण उदार ।। ३२ ।।

अथ मध्याह्न दिनकी स्तुति

नराच छंद

प्रभु परं परायणं समस्त ज्ञानसागरं।।विश्वंभरं धरा धरं कृपाकरं उजागरं ।। कलिकलंक नाशनं कबीर नाम नागरं।कृतान्त तीख त्राशनं कृपानिधे नमोस्तुते।।१।।

कृपा सुवारि तोषकं सुतन्तशालि पालकं । कृपा सुभक्तितोषकं पराग पापघालकं ।। समस्तशोकशोषकं दरिद्रदोषदालकं । सुकृत सर्व सार कृत कारकं नमोस्तुते ।। २ ।।

निंज निरीहनिर्गुणं अनंतलोकनायकं।अनादिदेव-पायकं सुभक्तिमुक्तिदायकं ।। करालकालदालकं तौ संकट सहायकं । निरञ्जनं नरायणं नरोत्तमं नमोस्तु ते ।। ३ ।।

गणेश शेष शारदं गुणानि नित्यगावनं। अजादि देव नारदं सुकृत नाम ध्यावनं ॥ शरीरभै नशावनं कबीर जन्मपावनं। सुभक्त चित्त भावनं सोहावनं नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥

चकोर चित्त चोरकं चारु, चन्द शोभितं। मुनिन्द पादपंकजं अलिन्द सन्त लोभितं॥विज्ञाननैन जोहिंनं सुकण्ठ नाम पोहितं। निचिन्त निर्विकल्पकं सकल्पकं नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥

क्रमं वनं सहारणं सुबारणं कुमारकं।बिनीतप्रीति पालनं सुबुद्धिनिद्धिधारकं। दुख तरुं कुठारकं भ्वभय-विदारकं। कबीर नाम तारकं विहारकं नमोऽस्तुते॥६॥

अगोचरं अछेदनं अभेदनं अखंडनं। सुभक्तचित्त मण्डनं शुभं भवं तर डनं॥यशं भकंत अण्डनं प्रतापतो प्रचण्डनं। कृतांत दंड दंडनं विहंडनं नमोस्तु ते॥७॥

तव नाम ब्रह्मबीजकं शरीरवृक्षमूलकं। द्विचार अष्ट फलकं अनंत लोक थूलकं। त्वसक्ति भक्तिसागरं द्विलोक वेद कूलकं। हनं शोक शूलकं अतूलकं नमोस्तु ते ॥ ८ ॥

स्नेहवारि पूरितं विषै कुजन्तु भूरितं। चरीतमुक्ति माणिकं बिकारबासदूरितं॥पदार्थ अष्ट षष्टकं त्वभक्ति रत्नमूरितं।रमन्त योगिना विराग नामतोनमोस्तुते॥९
मंथतं शोकसिन्धु तो मुनीन्द्र नाम मंदरं। धराच वेद उद्धरंत मच्छ कच्छ सुंदरं। हिरण्य अक्षघालनं अनूपरूप भूधरं। निकाम काम दायकं सहायकं नमोस्तु ते ॥ १० ॥

नारसिंह वामनं द्विजाति राम पावनं। ब्रजैक बल्लभं नरेशकं सदावनं ॥ बउद्ध निष्कलंक गुणतो गुणानि गाथ गावनं ॥ पदाम्बुजैकभक्त भौर भावनं नमोस्तु ते ॥ ११ ॥

त्रिलोक लोक पालकं त्रिदेव देवयक्षकम् । उपा-
यकं च रक्षकं पुनः समस्त भक्षकम् । त्वं सर्वमय
अक्षकं प्रतापतो प्रत्यक्षकम् । वसन्त वासुदेवकं
अमवेकं नमोस्तु ते ॥ १२ ॥

त्रयशूल पाणि दीन दानि कत्रशूल नाशनं ।
त्रयकाल पाप तर पुरं तो दाहकं हुताशनम् ॥ समाधि
तव अखंडित प्रचण्ड योग आसनं । शुभं करोति
शंकरं भयंकरं नमोस्तु ते ॥ ११ ॥

कबीर नाम आदितं सुभक्त चित्त राजितंविमोह
यामिनी गतं प्रकाश ज्ञान भाजितं । कलिमलं
अपर्वंल उलूक लेखभाजितं । कबीरं कारणं बरं
कृपाकरं नमोस्तु ते ॥ १४ ॥

जलं सुस्वाति ताम तौ सुभक्त चित्त चातकं
ककार ब्रह्म राजसं वकार विष्णु सात्विकं ॥ रकार

शम्भु तामसं उपाय पोष घातकं। समस्त दोष पातकं निपातकं नमोस्तु ते ॥ १५ ॥

कबीर पाद पंकजं सनेम प्रेम ध्यायकं । गुणानि नाम कीर्तनं सुधाम काम दायकं ॥ विराग त्याग लभ्यते हृदं पदं गहायकं । तरंत तारनं भयं विदारनं नमोस्तु ते ॥ १६ ॥

अथ मध्याह्न सवैया

तन मंग पतंग उतग भये, वट पार जुवारकी खोजन पाई । बरते नव खंडमें तेज महा, ब्रह्मांडमें आनि रह्यो ठहराई॥पहरी अरु स्वान सुखी सवही, पथिको निर्भय श्रम पन्थ बिहाई । तुमरे परताप सन्ताप गयो, दंडप्रणाम तुम्हें रविराई ॥ १ ॥

गिरि कंदर अन्दर दुष्ट दुरे, रवि तेजप्रवाह सभी तम भंजे । यम काल सकाल विहाल पडे, नहिं आय

कोई धर्मराजके पंजे ॥ दृगदृष्टि प्रचंड ते अंड सुझै, जन रञ्जन पायनके रज अंजे। गुरु नाम चरित्र पवित्र लखे, खल चोर निशान निसाशर गंजे ॥ २ ॥

तम वंश विध्वंस न संशकहूँ, दशहूँ दिशि हंस सभा सरसाई। मृत्यु नाथ अनाथ बेहाथ भये, बल वीरज धीरज तेज गँवाई ॥ रमि राम चले पर धाम सबे, चहुँ ओर फिरी सत नाम दुहाई। भ्रम भंड करे न विहंडहंकने, यम दंडक दंडन मारि भजाई ॥३॥

नहिं खोट है औट उलूक लुके, सुचि सात सती विरती वर गाजे। सब झार कबीर कबीर कहै, छल छिद्रपै भ्रम संशय भाजे ॥ तिहुँ काल है सत्य कबीर दुखी, गुण गाव सभी सुखको सज साजे। यह बारहपंथ कला रविको, प्रभु पूरण ब्रह्म हो व्योम विराजे ॥ ४ ॥

हिमजार जुबार खुबार घन निज शृंग शिलापै

किला घर छाई। बड वृद्धि भई खगरे बगरे, फिर स्वर्ग दिशा शिर ऊँच लठाई ॥ हरषे नहिं धर्म रखे करखे, दम संयम भक्ति कृषी दुख दाई। जब सूरज तेज तपै तिनपै, तेहि वेरजते धरिधूर्ज मिलाई ॥ ५ ॥

कह सूर्य सुखी यक पाय खडा, चितवै चित चाहते सीस नवावै जेहि प्रीति अभंग पतंग पिया, पदनीरज को धरि धीरज ध्यावे॥श्रम भंजकहू वन कंज खिले. दिन भूप स्वरूप अनूप दिखावे। गिरि निश्चल आसन ध्यान धरे, करुणा प्रभु लाल अमोलक पावे ॥६॥

प्रभु तीक्ष्ण तेज तपै महिपे, वन लोल लवारन आगिते पूरी। नव खंडमें पवन प्रचंड चले, मरिमारन मूठिन ता दृग धूरी। तम ग्रीषम झार अगार तपै प्रभुनाम जपै जनभक्त अँकूरी। दिननाथ दयाल भये तबही, जनको सबही दुख कीनेहु दूरी ॥ ७ ॥

गुण खान पियाको हिया हरषा, करी तोष तिया बर्षा झरि लायो । धरती भई गर्भवती तबहीं, चहुँ खानिके जिन्सको वंश उपायो ॥ तप कीन महीनन लौं भलसौं, अबतो सबको फल पूरण पायो । बढ़ि वृद्धि भई पुत्र पौत्रनको. बहु रंगमें थावर जङ्गम जायो ॥ ८ ॥

फुलबागन फूल अनन्त फुले, धनवन्त यथा यश-वन्त सुहाई । जनु सम्पति पाय सती गिरही, श्रद्धा-युत द्विज साधु बुलाई ॥ बहु बाल चमेलिन फैलि रही, हरि भक्तनकी जिमि कीरति छाई। फल पूरित शाख नवे कितहू, मन अर्थ लहैसु गहैं नमराई ॥९॥

लहरी तृणपात भरी धरती, तपसिद्ध तपी ऋधि ज्ञान ज्यों पूरे । कहूँ ऊपर घास न फूस रहे, गम्म गुरु बिना हिय सून्य ज्यों कूरे ॥ जल कीचहैं भूरि न धूरि कहूँ, सतसंगतिसों जिमि दुर्जन दूरे । पार

त्यागलो पंजन खंजनहू, श्रम भंजन दरशने ज्ञान ज्यों फूरे ॥ १० ॥

कहूँ भूख संहारक ऊँख भई, पर हेत सरें दुख जो अधिकारा । कहूँ स्वेत कपास विकास कियो । पर छिद्र छपा वन जो तन धारा ॥ कहुँ अन्न रु साग व पात उगे, तरकारी वनस्पति चौदह भारा। सुख साज सभी सब घेर मही, यह केवल भानु प्रताप तुम्हारा ॥ ११ ॥

कक आदि पिता कथि आदि निता, स्वस्व सुख-निरंजन ताहिते हेरा। खावते प्रगट भये खंड सबै, खख ज्योति अखण्ड दिशों दिशि हेरा । वसुदेव वकार विश्वभर है, बर बीज चराचर चीज चितेरा । रचनाके भण्डारको धारकसो धर ओष्ठन द्वारके ऊपर डेरा १२

भवसागर जालको काल बने, ररकार बडे सरकार कहायो । तिन खोलि केवाडि लिये बितको, तेहि ठाहर

तेगहि बाहर आयो ॥ तप घोर करे यक पाय खडे, भव बारिध जारिध राज लिखायो। तरनी-ककहै कढि-हार-बबा, रर दंड तिहूँ जगको उधरायो ॥ १३ ॥

ररकार धरे शिव बिन्दु जबै, इमि नादरु बिंदहै जिन्द यती सों। कृशान रु भान सशंक भये, नहिं पावत पार अपार गतीसो ॥ ररबिन्दके बीच अकार छपै, कहँ रामको नाम विकाश मतीसो। ररेफ गफे, सगें भेज सही, नहिं जात कही बहु बात रतीसो १४

रर पूरण ब्रह्म निरंजन है, बहु भाँतिके भाजन मञ्जन कीन्हों। बब बीज बिना कछु चीज नहीं, दोउ एक भये रचना चित दीनो ॥ कक कायक कर्म क्रिया सबही, फबही तबही जबही मिले तीनों ॥ ककही बबही ररही ररही, सरही सब काम कबीर जो चीन्हो ॥ १५ ॥

कक कंठपे बैठिके चेतनदे, जिवसंठ उदार सुधा-
रत बानी। बब अग्रगयो जहँ अग्र नयो, सरहद्द पै
लद्द जमा सब आनी॥ररवीर बली तब पीलचली,
कर क्रोध विरुद्ध हो युद्ध जो ठानी। ककहू बवहू
दबही रहिगै, ररको धरको थरको जगजानी॥१६॥

कक केवल ब्रह्म है देवलमें, बबदीनकपाट सुपाट
दुवारी। तहँ जाय जो कोई सो होय अभय, दरसै
दरपै परब्रह्म पुजारी॥ कोइ जान नहीं भ्रम भान
नहीं, शक खोलकी टोल लगी तहँ तारी॥ रर रार
करी पट टार धरी, गहि भारी भरी भव जार
सँवारी॥ १७॥

करुणामय कन्त कबीर कहो कवि कोविदको कुल
कर्म कटैगो।मनमोहन भीत मुनीन्द्र मिली, मद मोह
मनोज सुमोज मिलैगो॥ सत सुकृत सत्य स्वरूप
सदा, सतनाम सँभाल सुधाम सटैगो। घन घोर घटा

घट घाट गिरे, गट घालत घूमर घेर घटैगो॥१८॥

रसपाय सुधा यस गाय बुधा, मम लेखनि पै सुर वृक्षकी शाखा। मुखते यहि अमृत धार स्रवे, न मरे न परे भव जो सब चाखा। न लगे कछु भूख पियूष पिये, न हिंये कछु और रही अभिलाषा। सब स्वारथको परमारथको फल चार पदारथ हाथ न राखा १९

युग आदिहु मध्यमें अन्त विषे, कलिहू कृतमें अरु द्वापर त्रेता। गुरु देव दयालहि चीन्हत जो चरनों चित लाइके होत सचेता॥ तिन सार लहा पुनि हार कहा भवपार गये परिवार समेता। कर कोरिके जोटि प्रणाम तिन्हें, तिहुँ काल जो जीवनको सुधि लेता॥ २०॥

छन्द मधुकर

सर्कार बडा सर्कार बड़ा। विश्वास करो हो आन खड़ा। वैपार कड़ा वैपार कड़ा। जो तौल सवै

गहि ज्ञान धड़ा ॥ जो डाल दियो सो डाल महा । कत्ताल समय पत्ताल गहा ॥ जय जक्त पिता जगदीश यजो । क.ऽबीर ल०बीर क०बीर भजो ॥१॥

साखी

हरि गुरु पीर कबीर लख, अलख पुरुष रुख जोय।
हजरतको पहिचान जब, बजरत कालन कोय ॥१॥

इति श्रीमध्याह्न स्तुति ॥

स्तोत्र

(छोटी एकोत्तरी नित्य पाठकी)

सतगुरु शरणं पंकज चरणं मनवच कर्म सदा गहियं। जरा मरण भय निवारणं अखिलेश्वर अभय कहियं ॥ मेषज नाम नित प्रति धामं महाकाल दारुण कहियं। दीनदयालं जन प्रतिपालं भवसागर तारण कहियं ॥ १ ॥

भवभय भंजन अन्तक गंजन सन्त चकारं मयकं लहियं। अनहद नादं दहत विषादं सोहं हंसा निश्चलयं॥ अजपा दापं हरत सन्तापं आदि नाम जपिये अभियं। सहज समाधं हरत विषादं दयावन्त सुकृत चहियं २

करुणा आदं नाम अनादं मोहित मुनि गेहित वियं। परमानन्दं सच्चिदानन्द सत्यलोक दृढरोहनियं॥ दीनबन्धु करुणासिन्धु अभय नाम जपिये अभयं। कलिकाल करालं फांसी व्यालं सत्यनाम निश्चय जापियं॥ ३ ॥

स्थिरं ज्ञानं बीजक ध्यानं अक्षयनाम निज अक्षरयं। नाम उजागरपति सुख सागर अक्षय राज नायक कहियं॥ अपर पारं नाम है सारं तासु भजन भौ निस्तारियं। सुखसागर दाता जागृत त्राता अजर अमर सांची लहियं॥ ४ ॥

दुर्गजदानी परम अभिमानी धर्मराय शिर मद-

नियं । कलिकाल करालं फांसी व्यालं तासु भजन भौ निस्तरिहं ॥ अजर अविगत नामं जन विश्रामं कृपा विशेषं निःअंशनियं । जय जय स्वामी अन्तर्यामी त्राहि त्राहि करुणानिलयं ॥ ५ ॥

सूक्ष्मं स्थूलं सम्बीमूलं अनइच्छा रूप सुजस भनियं । अशौच अशेषी अमृत पियूषी सर्वमयी अविनाशनियं । सूरति स्नेही अविचार देही आदि ब्रह्म अर्चित कहियं । स्वतःप्रकाशं अमरनिवासं पोह पदी[प] सामण्डनीयं ॥ ६ ॥

योग सन्तायन मुक्ति परायन जासु नाम अघ खण्डनियं । सुनु धर्मदासं परमबिलासं सत्त कबीर सुमिरन कहियं ॥ इति ॥

गुरु शंतकसागर नाम स्तोत्र

छन्द चौकडी

दीनबन्धु करुणामय सागर। हंस उधारण तारण आगर ॥ दीना नाथ शरण सुखदाई। अभय तासु पदगुरुसमराई। बन्दीछोर बिरद अतितासू। हंसरूप प्रगटे जग जासू॥अधम उधारण तारण स्वामी प्रवर दिगार मालिक अनुगामी। कालजालके काटनहारे। विरदलाग राखन पति प्यारे॥धीरज क्षमातत्व संयुक्ता राम भूमिका वासक युक्ता ॥ चिंता रहित अचिन्त गुसांई॥पारखरूप प्रकाशकसाईं ॥ अलख ब्रह्माण्डके जाननहारे। कर्ता नाम प्रगट विस्तारे ॥ निःकामी माया परचडा। ताकोनाशकपूरन ब्रह्मण्डा॥ मंगल-रूपी गुसाईं आपू। जगत विदित पूरण परितापू॥ साहब निर्भयपद दातारा। कर्ता पुरुष सबनकेपारा ॥

महामोह हल नाशक स्वामी । हंसन नाह अपार अगामी । आनन्द सिंधु अहंतातीता । रामरूपमें परम पुनीता ॥ सत्य यथारथ अतिप्रिय साधू । मन मायाको मेटेउ व्याधू ॥ पूजनीय अनुमान विनाशक । सत्यसुकृत प्रकाश प्रकाशक । नाम मुनीन्द्र सबन सुखदाई । बारम्बार कहौं गोहराई ॥ सत्य सिंधु प्रभु दीन दयाला । नाशक अनुमय सहज कृपाला । आप जीव निःकर्म निधाना ॥ शब्दी अजर अकाल सम जाना॥साईं शब्द परखनहारे । तारण तरण विगत संभारे ॥ मन अनुमान गुमान विनाशक । मोद प्रत्यक्ष दाननिज दासक ॥ वेद पुरान बुझाय यथारथ । मनकर्म वचन साधुमें स्वारथ ॥ इत्ति शतनाम गुरुगानि आई । सब

वृतान्त गुरु मुख जो बुझाई । साधु गुरु कबीर गुसांई । बन्दीछोर नाम जपु गाई ॥

रतनाबाईकृत स्तुति

गुरुध्यान सार भज वारवार सब तज विकार सतनाम सार सोकर यारी ॥ जै जै गुरु पीरं सत्त कबीरं अमर शरीरं अधिकारी ॥ निर्गुण निजमूलं धीरस्थूलंकाट निझूलंभौमारी ॥ सुरति निजसोहं कलिमलखोहं जनमन मोहं छबिभारी ॥ अपुरवासी सब सुखरासी सदाविलासी बलिहारी ॥ पीरोंके पीरा मतिके धीरा अलख फकीरा ब्रह्मचारी । हंसन हितकारी जगपगधारी गर्वप्रहारी उपकारी । काशी आये दास कहाये हंस बचाय प्रणधारी । रामानन्द स्वामी अन्तर्यामी हैं बड नामी संसारी ॥ उनको गुरु कीन्हा मतबुधि लीन्हा उनहु न चीन्हा करतारी ॥ ब्राह्मण संन्यासी कीन्हीं हांसी तब

अविनाशी पगुधारी ॥ मगहर स्थाना किया पयाना
दे परवाना जनतारी । तहां बलधीरा तजे शरीरा
काटन पीरा भवभारी॥हूं बीरसिंहदेव राजा सुनि
बलगाजा सब दल साजा संहारी ।। उतपीर पठाना
अति बलवाना लाय कमाना कर डारी ॥ सन्मुख
नियराना छूटे बाना भै घमसाना रणभारी । तब
गुरु ज्ञानी मनकी जानी अधरहि बानी उच्चारी ॥
तुम खोलो परदा है नहिं मुरदा जंझ अवस्था कर-
डारी ।। सुनिके यह बानी अचरज मानी देखि
निशानी शिरभारी ।। रोये परबीना हम मतहीना
तुमहि न चीन्हा करतारी ।। मगहर तजि वासा किया
प्रकासा जहां धर्मदासा व्रतधारी ।। तिनको शिष्य
कीन्हा सरबस दीन्हा दुख हरि लीन्हा भ्रम भारी॥
सतपन्थ चलाये भर्म मिटाये शब्द दृढाये संसारी ।।

रतना जन तेरोकरत निहोरो हम तन हेरो बलिहारो॥

अष्टक ३ त्रिभंगी छन्द

साहब गुरुज्ञानी, समरथ ध्यानो अकल स्थानी स्थीरं ॥ अविगत वानो, मुक्ति निशानी, जगमें आनी कब्बीरं ॥१॥ शीश विराजित तिलक अखण्डित, मुख सत्यसुकृत गम्भीरं ॥ ज्ञानी प्रचंडित, पाखण्ड खण्डित, सुमति मंडित, कब्बीरं ॥२॥ वेष रिसाला श्रवणीमाला, प्रेम उजाला' कृपा गहीरं दीनदयालं जन प्रतिपालं, सदा कृपालं कब्बीरं॥३॥ संकट टारन कष्ट निवारन, शीश विडारन, यम धीरं ॥ हंस उबारं जिव निस्तारं, भरम विडारं, कब्बीरं ॥ ४ ॥ सतयुग त्रेता द्वापर बीता रमता तीता, पर पीरं ॥ कलियुग कीता, सबसों जीता, प्रेम पुनीता, कब्बीरं ॥५॥ काशी छांडि उडीसा आये, आशा गाडे, सिन्धु तीरं ॥ ठाकुर पंडो, गर्व

विहंडो, पाखण्ड खंडो, कबीरं ॥६॥ पुरुष विदेही अविचल देही, नाम स्नेही, स्थीरं ॥ जैसन जानै, भेटो ताहि, दर्शन देहू कब्बीरं ॥ ७ ॥ कबीर अष्ट काटन कष्टं, धर्मनिदृष्टं, कबीरं ॥ धर्मनि दासं, नित अभ्यासं, प्राप्ति सुतासं कब्बीरं ॥ ८ ॥

स्तोत्र

नमो शब्दरूपी सोहै जक्त करता ॥ दया पाल स्वामी सबै कष्टहरता ॥ विशालं कृपालं धनी अंत्र जामी ॥ विदेहं स्वरूपं कबीरंनमामी ॥ अखंड अकर्म अनिच्छाअदेही ॥ जपे शेष जाको लहे नाहि तेही । लगीशंभुतारीगहौअर्धनामी ॥ विदेहंसरूपं-कबीरंनमामी । तकोजीवशरनामवसिन्धुतरना ॥ अधेखानटरना गहो बेगरचना ॥ अभैरूपजाको महापरमधामी ॥ विदेहंसरूपं कबीरं नमामी ॥ जहां जेव पुकारे तहांको सिधारे ॥ भये दीन जेते सो

तेते उबारे । लखे कोई न जाको अनामी सनामी ॥ विदेहं सरूपं कबीरं नमामी ॥ परेसिंधमारे सी साहब पुकारे ॥ करी आय रक्षा सुताको उबारे ॥ अभैमुक्तदाता मिले आय स्वामी ॥ विदेहंसरूपं कबीरं नमामी ॥ तुही सृष्टि करता तुही आपहरता ॥ तुही सोष सिंधुतुहीफेरभरता । तुही सर्वकामीतुहीहै अकामी ॥ विदेहंसरूपं कबीरं नमामी॥तुहीबीनवीना नवीना बजावै ॥ तुही आपरीझै तुही आपगावै ॥ बयेदीनडोले मोह ऐसकामी ॥ विदेहंसरूपं कबीरं नमामी ॥ तुही रामरावन तुही कंसकृष्णा ॥ तुही ब्रह्मरुद्रा तुही देवविष्णा ॥ तुहीशेषब्रह्मा तुही भूमथामी विदेहंसरूपं कबीरं नमामी ॥ तुही सर्व जीवन के हो रक्षाकारी तुहीचार खानी सोबानी सुवानी ॥ तुही आपजी न देवोसच्च नामी ॥ विदेहंसरूपं कबीरं नमामी ॥ तुही आप खेलै खिलावे अकेला ॥

तुही आप सामी तुही आप चेला ।। तुही खेतभागे लडेधारसामी ।। विदेहंसरूपं कबीरं नमामी ।। उभै-भेषधारी धरैं भेषधारी ।। तुही भोगभोगी तुही ब्रह्मचारी ।। कहेको कहांलो अपारं अनामी विदेहं सरूपं कबीरं नमामी ।। दई कालपीरा जबजिव सताये । छिये नामलाहा जोलहा होय आये ।। लखो रे लखोरे कृपासिंधुसामी विदेहं सरूपं कबीरं नमामी ।। अधैखान जेते कियो हान तेते ।। गहौं-सत्तपन्थे उहैं संतहेते ।। बसोदेशजाको जहां है अरामी ।। विदेहं कबीरं सरूपं नमामी ।। जपोनाम नोको सदाए कबीरं मिले लोक वासा हरेकाल-पीरं ।। अमोरं अपोरं सौहैता सुनामी ।। बिदेहं सरूपं कबीरं नमामी ।। हरंमत्तमंदा करैंले अघ-न्दा ।। उबारो उबारो महाकालफन्दा ।। अभै बासजाको सोंह अन्त्रजामी ।। विदेहं सरूपं कबीरं

नमामी ॥ कबीर अष्टकं जो पढै औ पढावै ॥ महाप्रेमबानी सुनै औ सुनावै । कहे, दीनवन्दा सो फंदा न आनी ॥ विदेहं सरूपं कबीरं नमामी ॥

स्तोत्र

जैजै कबीर धीर हरन सकल कालपीर, निर्गुण अविनाशी ब्रह्मशब्दरूप साई॥चर अचल भूत व्याल व्योम मृत्यु और पताल, सुर नर मुनि यक्ष गंधर्व सकलमें समाई ॥ अमरलोकके निवास पोहपदीपका सुवास, शब्दकोट अति अनूप विविध बिध बनाई॥ जहां हंसनको निवास षोडश रविको प्रकाश, अमृत-फल चुके अघाय सर्वक्षुधाजाई ॥ जगमगात हंस अंग शब्दको भयो प्रसंग, अकहवृक्ष खाई सङ्ग राजत समदाई । बन्दी छोर प्रभुदयाल भंजन भौं सिंध जाल, सतगुरु साहब कृपाल मरत अवजाई॥ जहांसतगुरुको निवास कोटनशशिको प्रकाश, छांड

लोक हंसहेत भौ जलमें आई । कठिन कालको संहार कीन्हों हंसन उबार कीन्हों,भौसिन्धुपार सकल भ्रम मिटाई ॥ मायामद मोह हरन काम क्रोध गर्भ दलन, चिंतामनि हंसरमन संतन सुखपाई जे नर भये भक्ति हीन सो भये यमके अधीन, अटके, भौसिन्ध तीर नहीं पार पाई ॥ जो नर गुरु शरन आय लीन्हों उनको बचाय, काल जालसों छुड़ाय अमरघर पठाई ॥ निरंजन निराकार ब्रह्मा विष्णु शिव विचार, आदिशक्ति मायाजाल नहीं पारपाई ॥ निगमवेद कार पुकार केहू नहिं पाय पार, गुरु कबीर हरनपीर सुमिरत अघजाई ॥

स्तोत्र

नमो आदिब्रह्मं अरूपं अनामं ॥ भई आप इच्छा रचे सर्वधामं । न जानामि कोई करे कोन ख्यालं ॥

नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥ नहीं वेदब्रह्मा नहीं विष्णु ईशं । नहीं पंचतत्त्वं नहींते अहीशं ॥ नहीं जोत रूपा न मायाकरालं । नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥ नहीं देवदेवी न सूर्य प्रकाशं । नहीं चन्द्रतारा नहीं कोइ आसं ॥ न तो स्वर्ग भूलोक नहीं पतालं ॥ नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥ तहां आप इच्छा महाशब्द गाजं ॥ विदेहं सरूपं अनूपं बिराजं ॥ भई शब्दते सर्वलोके विशालं ॥ नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥ तुही सच्चिदानंद लोकेप्र-काशं ॥ सदा सर्वदा हंस करते विलासं ॥ तहां आपते आप प्रकटै सुकालं ॥ नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥ भयो तेजरूपं सबे विश्वकांपो कबीरं कबीरं सबे सृष्टिजापो । सुनी दीनवानी भये हैं दयालं ॥ नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥ तबे नाथ नररूप अवनीसिधारे ॥ धरे कालके फैल तेते उबारे ॥ महादीनदासे सुकरतेनिहालं ॥ नमोहं

नमोहं कबीरं कृपालं॥करेकोन तेरी प्रशंसासुबानी ॥ थके विष्णु ब्रह्मा महेशो भवानी ॥ थके शेष गण-नाथ वाणी विशालं॥ नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥ न काहूकहो नाथ तुव पारपावो ॥ अनादे अगम्मे निगम्मे बताओ ॥ तुही निर्गुणं सर्गुणं रूपजालं ॥ नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥ तुही काटकोटान ब्रह्मांडकीन्हो ॥ तुही सर्वको सर्वदा सुक्ख दीन्हों॥ बसे सर्वमें सर्वरूपं दयालं ॥ नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥ जुदे सर्वते हो मिले सर्व जीवं भ्रमे अनाथसर्वें लहे नहिंशीवं ॥ भई जोर माया ग्रसौ चित्तहालं ॥ नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥ सबे संतकारन तोही बतावै ॥ एक-ही वेदब्रह्मादि षट्शास्त्रगावै ॥ जपेनाम तेरो भजे जो त्रिकालं ॥ नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥ लहे ज्ञानविज्ञान कैवल्य पूरं महामोहमाया रहताहि दूरं॥

लखे ताहि डरपे महाचित्तकालं ॥ नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥ तजो विषयविस्मादके दुखभाई ॥ भजोरे कबीरं महासुखदाई। विनयहों करों कबीरं धन्य पापफलं ॥ नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥ चहा मोद जो नित्त चित्तविचारं ॥ कबीरं कबीरं कबीरं पुकारं ॥ ग्रहों चर्ण रहो रत भर्मजालं ॥ नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥ सदा दासपै तव तो कृपा जो विचारं ॥ गऊ वच्छ एतो हृदय प्रीतिधारं ॥ तजे स्वामी ऐसो जुहे निष्टभालं ॥ नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥ कबीरं अष्टकं जे सुनै औ सुनावै ॥ पढै प्रेमजुका सो मुक्ता कहावै ॥ भरेसन्तप्रीते करै कंध-मालं ॥ नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥ विनयदास मरयादकी चित्तदीजे ॥ प्रभूदासकौ दासतो मोहि कीजे ॥ सदा दीनके तुम हरो दुःखजालं ॥ नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥

स्तोत्र

कबीरसृष्टिकारणं स्थूलसूक्ष्म धारणं ॥ कबीर संतरंजनं दरिद्रदोषभंजनं ॥ कबीरब्रह्म अद्वयं अखण्ड व्यापतंस्वयं ॥ प्रणम्यपादपंक्जं कबीर सत् गुरुं अजं ॥१॥ कबीरसत्तसुक्तं मुनींद्रकरुनायतं ॥ कबीर योगजीतयं अचिंतअजर अव्ययं । कबीरज्ञानवर्धनं दयालपाल सज्जनं ॥ प्रणम्य पादपंकजं कबीरसत गुरुं अजं ॥२॥ कबीर सर्वलायर्कं सुभक्तिमुक्तिदा-दायकं ॥ कबीर त्वं भजाम्यहं विदेह पुरुषवस्वहं ॥ कबीरसत्त सिन्धये आद्यंत मध्यहीनये ॥ प्रणम्य पादपंकजं कबीर सतगुरुं अजं ॥ ३ ॥ कबीरचित्त कोमलं करोति हंस निर्मलं ॥ कबीर सुन्दरंबरं अना-दित्वं अगोचरं ॥ कबीरत्वं निरन्तरं बदंति सन्त तत्परं ॥ प्रणम्यपादपंकजं कबीर सद्गुरुं अजं ॥४॥ कबीरतातमातरंस्वदेवमित्रभ्रातरं ॥ कबीरयोगध्यान में

समूलमत्र प्रानमें । कबीरनाम सर्वदा जपंति रिद्धि सिद्धिदा ॥ प्रणम्य पादपंकजं कबीर सद्गुरुं रिजं ॥५॥ कबीरनाम भेषजं विध्वंस कर्मरोगजं ॥ कबीर सरन-चोत्तमं निर्द्वन्द्वमोद सत्यमं ॥ कबीरत्वं भवागतं प्रबोध जीवआरतं ॥ प्रणम्यपादपंकजं कबीर सद्गुरुं अजं ॥६॥ कबीर यह प्रसीदय सजातिलोकधीरयं ॥ कबीररूपजाहसेत जन्ममरणनासयेत ॥ ७ ॥ कबीर अस्तुतिर्नितं पठेत श्रेय शोभितं ॥ प्रणम्य पादपंकजं कबीरं सद्गुरुं अजं ॥ ८ ॥

स्तोत्र

नत्वातं पदपंकजं सद्गुरुं प्रनतपालं दयालं आदि पुरुषं विदेहं सरूपं अमरलोकेसुधीशम ॥ भोभो सत-कबीरजोग जितं मुनीन्द्रम् करुणामयंसर्वव्यापि केवलं॥ पूर्णुतया बन्दीछोरं दयांकुरु, सत्यं चिदानन्द अखण्ड

नामम् ॥ अद्वै अलैशब्द निर्वाणरूपम्, निहंगमूलं सकृतस्य ॥ अज्ञाधन सप्तसिन्धुः कृपालं, निस्तत्त्व निष्काम अजाविनासी ॥ निरक्षर ब्रह्मस्वयंप्रकाशी, अखण्ड तत्वं सजीवनं च ॥ पुरुषोत्तमं बन्दीछोरं नमस्ते, नस्मोस्तुते आदिनिरक्षर स्यात् ॥ त्वदक्षरं ब्रह्माक्षरस्य माया समस्तमूलं च जानामि को वा ॥ भजामि त्वं पाद पुरुषं विदेही, अन्तर्बहिर्मन्यते कायवाचं ॥ ध्यानस्मृतं पादमुखारविंदे जेनत्वं गृह्य चरणं संरन्यते ॥ सत्यलोके हमागमख्यात; मायापरं पुर्षत्वमेकसत्यं ॥ अनाद चैतन्य स्वतन्त्रनित्यं सुखागर सत्तलोकं अनूपं ॥ सिंहासनं पुष्प दीपं निवासं। असंख्यचन्द्रार्क प्रकाशयुक्तं ॥ पुरुषैककरोमं न च भानुतुल्यं, षष्ठ ससहं सूर्य हंसः प्रकाशं ॥ करोति ध्यानं चरणं नमस्ते, शिक्षात्वयापुर्ष बलवानमाया ॥ बिछोहकुरुब्रांतपदाम्बुजस्य । अपार संसार भो

दीनबन्धो ॥ जानामि सर्वाणि मनन्तरेषु, पुरुषंच एकं हुतःषोडशानां भवेभिन्नतामे निराकार आद्या शिवं शक्ति जायं विधि विष्णु रुद्रो ॥ कियो चार खानी शुजक्तं सभुद्धो, कूर्मजलारंग विवेकज्ञानं ॥ दया क्षमा शील निहकाम धैर्यं, अचिंतमानन्द सुभावप्रेमम् ॥ संतो षसहजं निरंजनाद्या, अग्रं च मृगं मथह श्रुतिसोहं ॥ सापंचमेयोग जीतं अमीयं, मुक्तामनिर्नां वेहदी विहंगं ॥ कवीरत्वंसर्ववीजं प्रनामं, नमस्तुते आदि पुरुषंविदेहि ॥ त्रैलोकबेदान सर्वोपरिस्त्वं, अनन्तब्रह्माण्डत्वयाश्रृतं च ॥ निर्गुणौ गुणस्यात् विस्तारकारं; नमोस्तुतेस्वामि समर्थ रूपं ॥ सतायेनंसत्तनामं ज्ञानि अजरं ॥ अचिन्तं पुरुषं मुनीन्द्रं ॥ करुणामयं जोगजीतं अभियं सनिर्विकारं गुरुरूपधारं॥ संसारपारं स्वजनाप्रियत्वं,यथाघटाकाश तथा त्वमेकं॥ शब्द स्वरूपं कबीर नमामी कबीरनाम

पतितं पुनीतं ॥ जुगेजुगे स्वामी हरन्तदुःखं दातार-मुक्तं पुरुषं पुराणं ॥ चरणारबिन्दं सततंनमामि, कबिरब्रह्मातु, मातापिता बंधुसखाद्यनाद्यं ॥ कबीरत्वं पारमतं न शेषं, प्रणम्य त्वंहादभोधर्मदासं ॥ बकंज सहतेज चतुरभुजेषु भवाब्धि कैवर्त चतुर्गुणां ॥ चित्को-मलं सर्वदुःखं ऋतंच, चूरामणंनाम सुदर्शनंच ॥ कुलपत प्रमोदं तत्केवल नामं, आमोल्माचार्य सुरतः सनेही ॥ तद्धिहितंहक्क सूपाकनामं, तुभ्यं नमः प्रगट नामं चधीर्यं ॥ किमस्तु तिस्वामिपरंपुराणं हंसः हितार्थाय वन्देगुरूणां ॥ मेदेमेदेहिचरणशरण्यं नमोनमोउग्रनाम प्रसिद्धं ॥ दयापालदृष्टो समग्र समुद्रो यथामान उदयत्तमो पुन्जदहनं ॥ तथास्तु त्रैतापस्य चरणं प्रपद्ये, नमोस्तुते वंस व्यालिसं च ॥ चरणामृतं पानमहाप्रसादं गुरुकृपायस्य सदाशु

भस्यं ॥ शरणागतं मुक्तभवेतहंसा, रिद्धिं च सिद्धिं च बुद्धिं च दाता ॥ विवर्धनं भक्त त्वमेव त्राता; जे भक्त कुर्यं त्वयादयापालं ॥ प्रमुच्यते सर्वदुःखस्य तस्यां, सर्वांह दहनं च योजीवमुक्तः ॥ इदं च स्तोत्रं नित्यं भणंते, पुरुषं च अन्सं नभोहंसंवंस ॥ प्रणम्य-स्वंदासं सीतलशरण्यं, नमस्तुतिस्वामि जानामि कोवा ॥ अकथ महत्वं परंपुराणं ॥ सदाकृपाहं सहितार्थरूपं, मेदेहि मेदेहि चरणं शरण्यम् ॥

स्तोत्र

नमामि कलातीत कामादि रहितं वरिष्ठं वरीयान् विज्ञानसहितं॥ ररकारभस्मी सदाकाल धन्यं, रमेति-कबीरः भेदानभिज्ञम् ॥ स्वयंशाश्वते केवलं ज्ञेयरूपं निजानन्दमखिलं अखण्डस्वरूपम्॥ सुधा शब्द पुंनं चंदमर्कइन्दम्, सदोदित्यनुदेशं तेजारविन्दं ॥ गुणं

निर्गुणं वर्णाश्रमं धर्मरहितस्थितप्रज्ञगुह्यं समेचित्य-
सततं॥ महदादिमेको गुणातीतनित्यं षष्ठं चतुष्टादि
शब्दादि व्यक्तम्॥ पृथिवितेजाकाश तोयं समीरनिज
किञ्चिदन्तव्यापकब्बीरं ॥ अनाम मनादि श्रुतियं-
वदंती कबीरादिशब्दं गिरनरवदंति ॥ उदयास्त-
तीतं परापारमीशं तुरीयादिमेको स्फुरत्त्चेवशेषं ॥
दया आदिदे धर्मसम्पन्नज्ञानं, लोभादिरागादि
तमनाशमानं ॥ अव्यबल निर्गुणं निर्विकतारं अना-
दिमव्यक्त गगनो विकारं ॥ पक्षं विपक्षं निजदेश
कालं, नमामि कबीरं गिरा सूत्रमालं ॥ इदंसर्वजक्तं
महाइन्द्रजालं मृगावारपस्यं प्रभोप्रज्ञिवालम् ॥
प्रभुवर दयालं जनानंदकारी, पुरुषोत्तमंयोमद्धिक्ष-
पादवारं॥ महारौद्रघोरं नरेशाववंशा, तोयं च बारञ्च
वह्निनींदनीशा ॥ मदोदमदमन्तं मतंगं च दीशां
मृगादी च पश्य करीशब्दाचीशा॥ महाभयेह सुल-

तानं सजदा पिजाई, कदमखाखकैवल्य खुदेतं खोदाई ॥ मुरशिद मेहबानसावं परवरदिगारं ॥ गुनह मार बन्दा तकसीरवारं ॥ विनैवेगसततं च करुणा निदानं ॥ सदासत्यसंगादिध्येयं च ज्ञानं ॥ रागस्यदी वंदीछोरं नमामी सदानन्दरूपं कबीरं भजामी ॥

दशाष्टक स्तोत्र

नमामि सर्व संत जिनको मनाऊं चरणरेणु जिनकी मैं शिरपर चढाऊं । चरणरेणु प्रताप भ्रम नाश जालं सुसंतन कृपाते मिले गुरु दयालं ॥ १ ॥

गुरु चरण शोभा सकेको वर्ण । तरेऽनन्त जीवा गुरु चर्ण शरणं ॥ गुरु चर्ण रेणु धरो मोर भालं । नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ २ ॥

रविचन्द्रऽनंतं गुरु अंगरूपं । गुरु देव देवं शिर

भूप भूपं ॥ कृतं पार भव सिन्धु यमधार तालं ॥ नमोगुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ ३ ॥

तीर्थ सर्व गंगादि गुरु चर्ण माहीं । गुरु कामधेनुकल्पवृक्ष छांहि ॥ भक्ती ज्ञान वैराग्य फलफूल डालं । नमो गुरुदयालं कबीरं कृपालं ॥ ४ ॥ गुरु चर्ण तोयं कटे पाप घोरं । लिये गुरु प्रसादं हटे यम जोरं ॥ मिटे ताप भवसिन्धु अमृतं रसालं । नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ ५ ॥

गुरु शम्भु ब्रह्मा विष्ण रूपं । गुरु आदि ब्रह्म अनादि अनूपं ॥ गुरुकी कृपा होय व्यापे न कालं। नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ ६ ॥

सत्य लोकवासी गुरु सुखविलासी । सोपरगटे काशी निर्गुण उपासी ॥ नहीं गर्भ जन्मभयें चन्द्रतालं । नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ ७ ॥

गुरु काशी सिधाये पंडित हराये। भक्तिभाव बोध पथ जगमें चलाये॥ नरपति पाप लगे खुले अनेक भालं। नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं॥८॥

बादशाह पीर परचा लेन काजे। जडे गुरुजंजीरा सो तीरा विराजे॥ मृतक सुत जिलाये कमाली कमालं। नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं॥ ९॥

पुरुषोत्तम पुरीमें जलत पण्डा बुझाये। सुने सिद्ध बन्धासो फन्दा छुडाये॥ अलख ज्ञान करके चिताये नृपालं। नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं॥ १०॥

थीरकीये आशा सिन्धु नीरं हटाये। गुरु दरस दे ज्ञान संशय मिटाये॥ वृक्ष बट प्रगट कर दिखाय बिशालं। नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं॥ ११॥

सुरनर मुनि नाग सबही गुरु मनावें। नारदमुनि

शुकदेव गुरुहीको ध्यावें ॥ गुरु वोइ मित्रं पिता रक्ष-पालं । नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥१२॥

गुरुयोग योग्यं तपस्यासुवरतं । सो भव रोगभग्यं गुरुं ध्यान धरतं ॥ गुरुकी कृपा होय व्यापे न कालं । नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ १३ ॥

गुरुलोक प्रकाशं शशि कोटि भानं । पुरुष रूप क्रांति कहोको बखानं ॥ गुरु लोक पहुँचे चले हंस चालं । नमो गुरुदयालं कबीरं कृपालं ॥१४॥

गुरु मोरि कर्म बहु हंस कीन्हे । सुनो तोहि आने तबही शर्णलीने ॥ दीजे मोहि दीदार लेहु संभाले । नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥१५॥

गुरऽनन्त तारे सकेको बखानी । समावे चिटी पेट सागरको पानी निगमनेति भाषे तो मैं कौंन वालं नमो गुर दयालं कबीरं कृपालं ॥१६॥

अहो गुरु ! मैं हूँ सदा दास तेरे । हृदयवास कीजे गुरु आन मेरे ॥ भक्ति ज्ञान दीजे सुनो प्रणत पालं । नमो गुरु दयालं कवीरं कृपालं ॥ १७ ॥

गुरुकी जो महिमा पढे नित्यनेमा । गुरु है कबीरं सो ताहिसो प्रेमा ॥ हरे पाप सब कहै शस्त्र * मालं । नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ १८ ॥

स्तोत्रदशक

नमस्कार बार बार सुन हमारं सतगुरुं । तिमिर हरण तमसू दलत शरन पाल सुरवरं ॥ प्रकाशवान् तेज भानु भक्त भूप सख्यतं । युगन युगन हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ १ ॥

अमर लोक अरु अशोक, सर्व दुःखनाशतं । तुव निवास सुख विलास, बहु प्रकाश शास्वतं ॥ आदि

* लं माला-समूह अर्थात् गत्र शास्त्र ।

पुरुष आप है, जहां अलेख अक्षतं । युगन युगन हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ २ ॥

सर्व गुणननिधान कृपासिंधु नागरं । सो प्रगटे अवनि आये ज्ञान गम्य उजागरं ॥ अनंत रूप ऊपमा सके सो कौन अख्यतं । युगन युगन हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ ३ ॥

सर्वाजीत विद्या रीति सर्व देश जीतियं । तोहि निहार गयो हार गत हंकार बीतियं ॥ काशी वासी पडित भये निराश झख्यतं । युगन युगन हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ ४ ॥

वादशाह दगा चाह गयन्द लाज गर्जनं । तुम दयाल हो विशाल सिंह नाद तर्जनं ॥ तोरि जञ्जीर भये तीर रहे सर्व थक्यतं । युगन युगन हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ ५ ॥

रंक राव बलख आदि सकल जीव तारनं। तजि अमीर हो फकीर ज्ञान गम्य धारनं ॥ भक्ति पक्ष शुद्ध लक्ष थक्के जो स्वाद थक्यतं। युगन २ हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ ६ ॥

पतित बहु परे पाय शरण भक्तवत्सलं। जानि दास मेटि त्रास दीन बास अविचलं ॥ सदा सुख नाहिं दुःख हंस शब्द परसि छक्यतं। युगन युगन हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ ७ ॥

विरद रावरो संभारु हो दयाल दुखहरं। ले उबार विघ्न टार अघ निवार सुख करं ॥ मेटो त्रास करत सब जिव भक्ष्यतं ॥ युगन युगन हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ ८ ॥

गंग बारि करे पुकार सुन हमार समरत्थं। त्राहि त्राहि शरण पाहि सखमाया अत्रतं ॥ अगाध महिमा

साधु जाने सुनि देव यक्षतं । युगन २ हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ ९ ॥

सांझ सवार नेम धार गुण तुम्हार उच्चरं । तुम कबीर हरण पीर करण तीर भव परं । मैं अज्ञान शरण आयो, राख शर्म सख्यतं । युगन युगन हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ १० ॥

स्तोत्र

जय दीन दयाल कृपाल हितं । मद लोभ रुमोह सदा रहितं ॥ अनवद्य अखण्ड अनादि अजं । सुत सन्त कबिंद्र मुनिन्द्र भजं ॥ १ ॥

वरियान वरेष्ट सु ब्रह्म वरं । क्षर अक्षर आतम पारपरं ॥ सत्त नाम कबीर गंभीर धयं । अणिमा महिमा लघिमा साधियं ॥ २ ॥

शिव सिद्ध सुरेश—मुनीश अबे । मिलि माधव

चरण बँदे जो सबे ॥ गुण ज्ञान निधान विज्ञान अयं । निर्भय निर्मल सुःख ब्रह्म स्वयं ॥ ३ ॥

उद्याचल ऊपर सूदर्शा । वचनामृत पोषत चन्द्र जसा ॥ अक्षपाल कृपाल हमेश वरं हनुमन्त सुधारन काज परं ॥ ४ ॥

सनकादिक ज्ञान जैसे गहिरे । सर्वलोकमें नारद ज्यों विहरे । सर्व योगिन गोरख धीर यती । सत्य धारणसो हरिचन्द सती ॥ ५ ॥

गिरिजापति नित ज्यों ध्यान धरं । अचलं गिरि सिन्धु समं समरं ॥ शुकदेव जैसे गुरु ज्ञान गनं । सब दासन पाप परं समनं ॥ ६ ॥

वचनं किरनं जन कंज खिलं । तव नाम लिये सत्तलोक मिले । वर्णाश्रम गायन वेद धुनी सबके पर आप विराज मुनि ॥ ७ ॥

नवखण्ड विहंडन काल कले । ब्रह्मण्ड इकीस जु आप गले ॥ भय टारन हारसो आप भजै । तेहि कारन आतम राम भजै ॥ ८ ॥

उस कारण आप सदा अजयं । जग काम रु क्रोध सवै तजयं ॥ गज राज प्रचण्ड मतंग गजा ॥ जहँ केहरि सावक आप सजा ॥ ९ ॥

असुरं मदं मत्सर जो गज है । तुम सिंघ अवाज सुनी भजि हैं ॥ मन लोलुपता बहु दादुरजे । तेहि भक्षक पन्नग हों अंकजे ॥ १० ॥

अब दीन दयाल कबीर गुरु । नित दीजिये प्रेम जो प्रीति करूं ॥ गुरु सागर नागर आप ऐसे । परकाशक सो जग सुर जैसे ॥ ११ ॥

गत रोग न दोष मान मदं । अचलं अमलं

सुखदं शुभदं। सिद्ध साधक हार रहे सगरे। पक्ष धुन्ध धरे जकरार गरे ॥ १२ ॥

सुलतान निरेश अडे चरचा। बहु धार अनेक दिये परचा। त्रिय रूप भये दृग देखतही। उधरचो हियरा गुरु पेखतही ॥ १३ ॥

नृप साधु गये जग जानत है। गुरु ब्रह्म कबीरहि मानत है ॥ पवन नभ तेज पृथ्वी रु जलं ॥ सब आप सदा अचलं ॥ १४ ॥

शब्दादिक पंच विषय सब ही। तेहि व्यापत नाहिं कदी कबही। शरणागत पालक आप सुनो अदमां पद दायन मान गुनो ॥ १५ ॥

महिमा बहु एक रसाय समं। वरणो कहिबात गुनी वचनं ॥ कबिता शुद्ध आप कृपा चरणं ? जन (आतमराम) सो है शरणं ॥ १६ ॥

स्तोत्र सप्तक

जै जै भवतारण भर्म निवारण हंस उवारण तव शरणं । शब्द विलासी अकह अविनाशी सत्य प्रकाशी भय हरणं ॥ १ ॥

निर्मल दयालं सार कृपालं आप विशालं अभय करणं । सतचित भावन रूप अजावन आतम पावन तिहि शरणं ॥ २ ॥

यह जिव अविनाशी ब्रह्मविलासी जगत प्रकाशी आप भये । आपहिं कीन्हा मति नहिं चीन्हा पंचम-भिन्नं रूप लगे ॥ ३ ॥

गरु आकर संगे चित्त मन रंगे चाल बिहंगे मूल परे । विन रूप गुसाई अदल चलाई शून्य बसाई न्यार भये ॥ ४ ॥

ते पहुचारी निगम पुकारी गाफिल धारी खार

परे । निराधार जहां चलना वाके शरना भारजो धरना भार परे ॥ ५ ॥

विनु निज पहिचाने हठ मत ठाने श्वान समाने मुदित फिरे । गुरु दीनो मत धीरा पायो चित्त थीरा आशा रतपर असर सरे ॥ ६ ॥

जो हंस पद न्यारा है निर्धारा अपरम्पारा आप रहे ॥ सोई दीजै स्वामी निरभय नामी अनुभव गामी सुरत लहे ॥ ७ ॥

स्तोत्र अष्टक

भो कवीर हरण पीर धीर बुद्धि धारणं । सत्य नाम परम धाम सर्व करन कारणं ॥ १ ॥

हंस रूप परम भूप वेद विद्या छेदकं । ज्ञान नीति अति अजीत ज्ञान बुद्धि धारणं ॥ २ ॥

सन्त रक्ष साधु पक्ष भुक्ति मुक्ति तारनं गुणातीत भयाभीत सर्व सृष्टि पारणं ॥ ३ ॥

निराधार सत्याधार परम पार पारणं । प्रणत-पाल अति दयाल काल जाल टारणं ॥ ४ ॥

दया सिन्धु क्षमा इन्दु श्वेत इन्दु शोभितं । शब्द रूप अति अनूप अमितरूप सारणं ॥ ५ ॥

अकह नाम त्वं अकाम मानहीन पालनं । पाप ताप दहन कृत तिहुँ ताप नाशनं ॥ ६ ॥

भवातीत योगजीत हंस रूप लक्षणं । सत्य रूप गुरु स्वरूप शरणागत तारणं ॥ ७ ॥

साखी

सद्गुरु परज प्रीति अति, सरासार विचार ।
सत्यनाम हंसा गहे, उतरे भवनिधि पार ॥

स्तोत्र

छन्द शिखरणी

विभुं सिन्धुं बुद्धे विमलवचसा शान्ति वरदं ।
निजानन्दं स्वामिन् भवभयहरं स्वस्तिपददम् ॥
कबीर ज्ञानांभूसुखदचरणं भ्रांतिदलनं । समीडेऽजं-
त्वाहं बहुजडमतिःसर्व सुखदम् ॥ १ ॥

प्रभुं निष्ठुं शोकं कठिनजनुषोमोहवहता ।
जनानां मृत्योश्च प्रचुरसुगुणं नष्टकुहकम् ॥ मनोमा-
यादूरं सरल हृदयं भक्तिसुलभं । सतां कर्तृ प्रीतिंधृत
नरतनं मूर्तिसदयम् ॥ २ ॥

स्वयं सिन्धुं नित्यं कलहरहितं मानपददं । प्रभो
द्रै कंजाक्षं जलजवदनं वारिजपदम् ॥ कृपासिन्धुं
श्रीदं मुनिवरवरं निर्मलबलं । सदा शिष्यैरुग्रैर्जगति
बहुभिः सेवितमिह ॥ ३ ॥

बुधैर्वन्द्यं निन्द्यं कुजनपुरुषैश्चाति विमुखं गुरुं गर्भा तीतं प्रतियुगभवं भक्तिजरसि ॥ महामोहं हर्तृरवि- भिवभवे धर्मवपुषां बहुग्रंथैस्तीव्रैःपरिहृतमनस्संशय रिपुम् ॥ ४ ॥

त्रयस्तापं हर्तुं विधुमिव जनानां च सबलं । निरीहं गम्भीरं सदयपुरुषस्थानपरमम् ॥ शुभशक्स्थौ युक्तं प्रकटयशसे सत्यसुकृतं ॥ महातेजःपुंजं प्रसुल- भपदं शुद्धमनसैः ॥ ५ ॥

चिदाकारं शुद्धं मुचिमुचिदुःखपारखविभो। अजा- काशं शांतं किल भवजयं निर्भयपदम् ॥ महाकायं धीरं कलुषदहनं चारुवचनं । मनश्चिन्तायास्तत्त्व- पदमतानां च सुमते ॥ ६ ॥

परं शुद्धं धीरं स्वचितमहतां पादरजसो। मुद्रायेत्यं भ्यांपरमपदवीलब्धिकरणम् ॥ मुनीन्द्रं प्रत्रातुं चरण

सुगतान् वन्द्यसकलं । समर्थः सर्वज्ञो भवजलनिधेर्ही नमनसः ॥ ७ ॥

स्तुतिर्दिव्या साध्वी भवतु महतां चित्तरमणी । सदेयं वा प्रीत्यै कलुषदहिनी मोहदमनी॥कवीराख्यां वाताहतकलिमलानाहि विमलाः । खल्वत्कृष्टारम्या जनहितकरीं कण्ठमधुराम् ॥ ८ ॥

नाराच छन्द

नमामि सर्व लायकं, सुभक्ति युक्ति दायकं, गुरुजी सन्त भायकं, सुशुद्ध ज्ञान नायकं ॥ १ ॥

निःकाम आप सुन्दरं अकाम नाम मन्दरं, विभुं प्रकाश भासिकं, कामादि दुःखनाशिकं ॥ २ ॥

भयप्रवाह वारणं, अपार पार तारणं, पुरान वेद गावितं सो पार नहिं पावितं ॥ ३ ॥

सुज्ञान सन्त रूपही, परख प्रकाश भूपही, मुनीश ईश ईशही, हटाये काल पीसही ॥ ४ ॥

येहि हमार वीनती, करिये आप गीनती हुआ बहान जालही, कराल कालकालही ॥ ५ ॥

जन्मादि दुःखते अति, अधीर मोर चित्तही, सह्यो न ज़ात मोहिसो, हियं जो पीर होतही ॥ ६ ॥

न कोई मोह जक्त मैं, न आश धन्यते कही, सुआश एक आपके न दूसरी सहाइके ॥ ७ ॥

तूहि सुजान आपही, मिटाइ देह्न तापसी, प्रभुजी तोहि छांडिकै दुजा न कोइ साथही ॥ ८ ॥

गुरुं कबीर रंजनं, नमामि दुःख भजनं करो, सनाथ मोह आजु, शिशु तुमार जानिकै ॥ ९ ॥

स्तोत्र

कृपालं चित्त नन्दनं, अज्ञान भेद खंडनं सुश्रेष्ठ धर्म मंडनं, दुःखीत जीव देखिकै ॥ १ ॥

अपार ज्ञान सानरं पशांत चित्त आगरं, न राग द्वेष पासही, सुमुक्ति रूप राजही ॥ २ ॥

अनाथ सा विचारिलै, कृपाजु मोहि कीजिये, अज्ञान मोह दाहिके, चरण वास दीजिये ॥ ३ ॥

अनन्त बन्धनों करि, संयुक्त मोरि चित्तही, छूट्यो न जात मोहिसो, अनेक दुःख देतही ॥ ४ ॥

महा भवाब्धि धारमें, विषै तरंग मध्यमें, झकोरि मोरि चित्तको, बूढत हो ना शुद्धमें ॥ ५ ॥

महान मोह वेगमें, वहुत हों जू नाथ मैं, स्वशिष्य बाल जानिकै, जू वाह झालि लीजिये ॥ ६ ॥

आपै जू ऐसी कोजिये, सो पीर मोरि छीजिये, न आप त्यागि और मैं, शरण चाहि लीजिये ॥७॥

दयाल गुरु आपही, प्रखाय भवतापही, करो निहाल पालि तब, दास मुझे जानिही ॥ ८ ॥

स्तोत्र
छन्द तोटक

परमं सजयं भवतापहरं, जन पीन महासुख वृन्द ददं। शरणागत पारंपार प्रभुं, गुरुदेवमजं विमलं च भजे ॥ १ ॥

मुनि केशव वेश गणेशनुतं। सुरराज विराज नरेन्द्रनुतं। सनकादि फनींद्र कपींद्रनुतं गुरुदेवमजं विमलं च भजे ॥ २ ॥

करुणामय रूपमनंत कलं, पदपंकज रेणु विशुद्ध जनं। अघ पुंज हरं मति शुद्ध करं, गुरुदेवमजं विमलं च भजे ॥ ३ ॥

श्रुति सार विराज इति विभुकं हरिचन्द्रकल। सम्भा विपुलं। कवि वंदित पाद सरोज युगं, गुरु-देवमजं विमलं च भजे ॥ ४ ॥

निज रूप गदं फल मोक्ष ददं, सरलं वरदं सुख सिंधु तरं। कलि काल विकार सो मोह दहं, गुरुदेवमजं विमलं च भजे ॥ ५ ॥

यमभीति हरं पर हेतु तनुं, कलु साफ हकं रिपु काम दहं। शिवजीव विचार सो मनो विरतं गुरुदेवमजं विमलं च भजे ॥ ६ ॥

मद मोह रिभंजन सूरपटं, द्विपदं विभुजं नररूप शुद्धं। विदु शाब्द मोदकरं वचसा गुरुदेवमजं विमलं च भजे ॥ ७ ॥

सम दृष्टि सुवाद मनो विरतं भ्रम जालकवाद वितर्क मतिं। शुभदं पद सार कबीर वरं, गुरुदेवमजं विमलं च भजे ॥ ८ ॥

स्तोत्र अष्टक

विभुं व्यापकं शुद्ध धीरं गंभीरं। सदाशिवरूपं

प्रकाशी निरीहं ॥ अमोल्यं अडोरयं अशोच्यं प्रणामि । जपेहं भजेहं कबीरं नमामि ॥ १ ॥

निहीसो निराकार निरवाररूपं चिदाकाशमाकाशसाक्षि स्वरूपं ॥ अभेद्यं अछेद्यं धनी अंत्रजामी । जपेऽहं भजेहं कबीरं नमामि ॥ २ ॥

विषयपंच कोशादि व्याने न तेही । मदादिक माहि नहिं शोक जेही ॥ ऐसा सु प्रिये गुरुहे मोहि स्वामी ॥ जपेऽहं भजेहं कबीरं नमामि ॥ ३ ॥

स्वयं सिंधुराशि क्षमाके प्रकाशी । दयानिधिवासी सबे सुख पासी ॥ सोई धर्मदास गुसांई सुपामी । जपेऽहं भजेहं कबीरं नमामि ॥ ४ ॥

तीनों कालदर्शी घटोज्ञान वर्शी । बडानंदकर्शी मिटावंत तर्शी ॥ अखण्डं निर्द्वंद्वं अभै पदगामी । जपेऽहं भजेहं कबीरं नमामि ॥ ५ ॥

पंचोल्केश इहितं षटो उर्मिदहितं। वेदोक्त कुवानी प्रखी सर्व वहितं॥ यथा सुउतोत्कृष्ट हे गुरुनामी॥ जपेऽहं भजेहं कबीरं नमामि॥ ६॥

निजानन्द आपे देखी काल कांपे। माया नहीं व्यापे जपे मूनि जापे॥ सोई शरणोंमें टरुं ठाम ठामी॥ जपेऽहं भजेहं कबीरं नमामि॥ ७॥

अजन्मं अमरणं सदा सिंधुकर्णं। भवाब्धि महा-काल ताहि सुतर्णं॥ सोई तवदास धरे ध्यान सामी जपेऽहं भजेंह कबीरं नमामि॥ ८॥

श्लोक

इदं स्तोत्रं पठेन्नित्यं श्रद्धाभावेन संस्थितम्। यस्य सर्वफलं भुक्त्वा तस्य मुक्तिर्न संशयः॥ नमोऽस्तुते कबीरस्य साधुवृन्द नमोऽस्तुते। गोस्वामी धर्मदास स्य वन्दनं च पुनः पुनः॥

स्तोत्र पञ्चक

जयति जय धर्मधुर धीर कब्बीर गुरु जयति जय वीर वर ब्रह्मचारी ॥ दहन वन मोह गुण गहन भूषित विभो भक्त भव शूल निरमूल कारी ॥ टेक॥

अच्युतानन्द मुचकुन्द स्वच्छन्द दलि दोष दुख द्वन्द्व लीलाऽवतारी॥ कम्बुकर्पूर मदचूर अति धवल वपु सकल सुख गेह नर देह धारी ॥ जयति जय०॥

अमित सौन्दर्य सुखधाम अभिरामअति कोटि शतकाम गर्वापहारी ॥ तरुण कंजारुणहरखशोभा चरण दीन विश्राम परोपकारी॥ जयति जय० ॥२॥

सत्य पद पुष्ट दलि दुष्टदुर्वासना सदा सन्तुष्ट सन्तोष धारी। अमलअनवद्य अव्यक्त अविचल अजित अनघ अद्वैत अज निर्विकारी॥ जयति जय० ॥३॥

जगत् विख्यात तव चरित सुर सरित सम पतित

पावन परम पाप हारी । साधु जन वृन्द अरविन्द दिनकर उदय जयजयति सर्वै रुचारी ॥ जयतिजय ०४

येन चरणामृतं पान कृत्सर्वदा तस्य परिचारिका मुक्ति चारी ॥ सर्वै संत्रास धर्मदास नाशक प्रभो राजराजेन्द्र पारख बिहारी ॥ जयति जय० ॥ ५ ॥

द्वितीय स्तोत्र पञ्चक

जयति जय कंज पर्णज परीक्षक प्रभो पौढ गूढार्थ विप्र वेद सारम् । भक्त वत्सल दया सिधु करुणायतन राज राजेन्द्र लीलाऽवतारम् ॥ टे० ॥

आर्त तारण तरण दीन अशरण शरण मंगल कारण अति उदारम् । क्षमा वैराग्य सन्तोष समता दया अति युत शील धीरज विचारम् ॥ जयति जय कंज० ॥ १ ॥

परम कल्याण यम ध्यान निर्वाण प्रद रहित अनु-
मान माया विकारम्। विगत अज्ञान प्रज्ञात विज्ञानघन
मोह मद मान कानन कुठारम्॥ जयति जय० ॥२॥

लोभवन दहन अति प्रबल दावानलम् कामक्रोधादि
कौरव तुषारम्। सर्वतो भद्रवर प्रखर दिनकर निकर
उदय हरगाय जगदन्धकारम्॥ जयति जय० ॥३॥

यस्य प्रत्यक्ष हित योग जप यजन मुनि यत्न कुर्वंति
नाना प्रकारम्। तस्य विग्रह विधित साधु गुरु धृत
अघ ओघ हृतनिर्विकारम् ॥ जयति जय० ॥ ४ ॥

विविध गुण गणन श्रुति शारदा शेष निशि दिवस
यदि तदपि नहि लहत पारम् ॥ नौमि कबीर गुरु
नौमि कबीरं गुरुवदति धर्मदास इति वार वारम् ॥
जयति जय० ॥ ५ ॥

तृतीय स्तोत्र पञ्चक

जय धीर वीर कबीर भवजल पीरभीर विनाशनम्। शरतीय मनु शरीर धृत गंभीर ज्ञान प्रकाशनम् ॥ ॥टे०॥ झाई संधि विकार करि निरवार भार विदारनम् ॥ विविधि विधि टकसार गुरु मुखद्वार सार विचारणम् ॥ जयति जय० ॥

मारतंड प्रचंडतम पाखंड खंडन कारणम्। योग दंड अखंड तापप्रताप पापप्रहारणम् ॥ जयति जय ॥२॥

जय कल्पपाद पर्ण सम मृदु चरण हरण भवार्णवम्। मद मोह मंगलकरण अशरण शरणदीन उधारणम् ॥ जयति जय० ॥ ३ ॥

आनन्द कन्द स्वच्छन्द दलि दुख द्वन्द फंद निकन्दनम्। इति अन्त रहित अनन्त संत महंत गुण बन्दनम् ॥ जयति जय० ॥ ४ ॥

धर्मदास जासु विलास वास कराल जल विभंज-
नम् ॥ हलि शाल दीनदयाल की निहाल मुनिमन,
रंजनं ॥ जयति जय० ॥ ५ ॥

सत्यनाम

सत्यकबीराय नमः

अथ कबीरसांबराजस्तोत्र



शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्

नित्यानन्दसदात्मबोधरहितं चन्द्रावदातप्रभम् ।
लोकातीत महोदयं निजजसोद्धारावतारोदयम् ॥
सारासारविवेकपारगइति, पारीक्षकायोमतस्तस्मै
सद्गुरुरूपिणे कुरु नमः श्रीमत्कबीराय भोः॥१॥

प्रत्यक्षा प्रमितिर्न चागतिगती, चत्वारि भूतानि च। संधिर्भावगतश्च वाय्वर्मपरो देहान्न जीवस्तुहि ॥ चार्वाकैर्विरुतम्परीक्षयति यो भावं स्वभावात्पृथक्। तस्मै सद्गुरुरूपिणे कुरु नमः श्रीमत्कबीराय भोः ॥ २ ॥

जैन- प्राह जयं न जीवपितरं पुण्यञ्च पापं तथा द्रव्यं पुद्गलकञ्च कालमितियत्स्वातंत्र्यसत्कर्मणि ॥ तद्युक्त्यानुभवैः परीक्षयति यः किं तन्त्रता कर्मणस्तस्मै सद्गुरुरूपिणे कुरु नमः श्रीमत्कबीराय भोः ॥ ३ ॥

गोरक्षाप्रमुखा वदन्ति वपुष श्वासस्वसंशोधनै-रात्मानन्दकरोत्र भैरवनये सिद्धिःसमुज्जृम्भते। तच्चेदं नटवत्परीक्षयति यः कृत्याकिमि-

ष्टायुषा तस्मै सद्गुरूपिणे कुरु नमः श्रीमत्क-
बीराय भोः ॥ ४ ॥

शून्याज्जातमशून्यताश्रुतसुत,शून्यं भविष्यं-ज्जगद्बाह्याभ्यन्तरभेदतः परिणता चिद्वासना भासते ॥ इत्थं बौद्धमतं परीक्षयति यः शून्यस्य साक्षी स कस्तस्मै सद्गुरु० ॥ ५ ॥

योगी प्राह यमादिभिर्बहुविधैः स्याच्चेतसो निग्रहस्तेनात्मा प्रभुतामुपैति मणितो लोहः सुवर्णायते ॥ इत्युक्तं किमृतं परीक्षयति यो जातः कचित्तामियात्तस्मैः स० ॥ ६ ॥

स्वज्ञान्धे इव कर्तृभोक्तृकलिते नित्ये अजाजं रत मृत्युः कुंभवदेव सा परिणता मुक्तस्तया यः क्ररी । इत्युक्तं क्रियते परीक्षयति यः का भोक्तृ-कर्त्रोर्भिदा तस्मै स० ॥ ७ ॥

मीमांसासुमिते श्रुतिर्विधिगतासूयाकृतिः स्यान्मुदे आत्मगुनगुणेश्वरेव परमं देवाश्च मन्त्रात्मकाः ॥ इत्युक्तं प्रकटं परीक्षयति यः कर्त्ता कथञ्चित्क्रियास्तस्मै सद्गुरुरूपिणे० ॥ ८ ॥

आत्मानौ च विभू स्वतंत्रपरतंत्राभ्यां भिदः संक्षयाद्भून्यादेः परमाणवः कृतनयाः कार्यस्य चारंभकाः ॥ काणादेः कथितं परीक्षयति यः कालश्च किं वा विभोस्तस्मै सद्गुरुरूपिणे०॥९॥

प्रामाण्यदिवसुद्धयार्थं विदुषोऽमी संजगौ गौतमे दुःखध्वंसकृतं दशादशप्रथाद्योनो पमर्दादिति ॥ तत्किं तथ्यमिदं परीक्षयति यो दुःखात्पये किं सुखं तस्मै स० ॥ १० ॥

सत्यब्रह्म न चान्यदस्ति किमपि ब्रह्मैव चाहं ममाज्ञानाद्भाति ह्यनादितो जगदिदं रज्जौ भुजं

गाकृति ॥ इत्थं दण्डिमतं परीक्षयति यः खण्डि-
ब्यतण्डात्मकं तस्मै स० ॥ ११ ॥

ननामूर्तिधरः पृथकथगयं पूज्यश्च पौरा-
णिकाः प्राहुः शंकरशाकरीशिवसुतः सूर्यो हरि-
र्वाविधिः । इत्याख्यानभरं परीक्षयति यः
कोऽसावमूर्तिः परस्तस्मै० ॥ १२ ॥

शाक्तानां भणितं सुखात्मकथनं शक्तिःस्वध-
र्मात्मिका तस्या व्यक्तिरिहास्ति कौलकृतयश्री,
र्णैर्मकारैः स्वतः ॥ एतत्कामकृतं परीक्षयति यो
लोकस्य वाचाजुषंस्तस्मै स ॥ १३ ॥

यच्चोक्तं यवनैर्जगज्जनिकरोऽल्लेपास्तिसोल्ला
परोजीवा नित्यनवाः क्रियाफलजुषः कस्मिंश्चि-
देवान्तरे॥तच्चैतद्व्यथता परीक्षयति यः स्वात्मा
नबोधोदयात्तस्मै स० ॥ १४ ॥

द्वैताद्वैताविभेदक निराकारप्रकारादिवल्लक्ष्यालक्ष्यप्रकाश्यकाशप्रीतभूप्ऐवापशेषातिगः । यः कश्चिद्वदता भवेद्धि विरतौ साम्राज्यलक्ष्यास्थि स्तस्मै स० ॥ १५ ॥

एकोऽनेकसुशक्तिरादिपुरुषो जन्मावसानोर्जिते बीजं विश्वतरोर्विभुर्विहरतां यः पक्षिणां सन्मुदे ॥ भव्यं स्वानुभवं फलव्यातिरितं यस्मै समभ्यर्थयत्तस्मै स० ॥ १६ ॥

अमरपुरनिवासी पूरुषो योगदक्षश्चरणकमलमास्याभ्यंचतामार्य्यवर्य्यः ॥ य इह गुरुकवीरं तस्य साम्राज्यकीर्तिस्तवमखिलकलाढ्यं पूर्णमभ्यस्य पूर्णः ॥ १७ ॥

गुरुस्तुतिः

ध्यानात्मानं परमात्मानं दानं ध्यानं योग-

ज्ञानम् ॥ तीर्थस्नानं इष्टध्यानं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ १ ॥

प्राणा देहं गेहं राज्यं स्वर्गं भोग्यं मोक्षं भक्तिम् ॥ पुत्रं पित्र्यं वित्तकलत्रं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ २ ॥

वानप्रस्थं पतिविधिधर्मं पारमहंस्यं भिक्षोश्चरितम् ॥ साधोः सेवा भूसुरभक्तिं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ३ ॥

विष्णोर्भक्तिपूजनचरितं वैष्णवसेवा मातरि भक्तिम् ॥ विष्णोः पित्रोः सेवनयोग्यं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ४ ॥

प्रत्याहारं चेन्द्रियजयतां प्राणायामं न्यासविधानम् ॥ इष्टः पूजा जपतपभक्तिं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ५ ॥

मत्स्यः कूर्मः श्रीवाराहो नरहरिरूपो वामनदेवः ॥ त्रिभुवनसारो महिमापारो न गुरोरधिको न गुरोरधिकः ॥ ६ ॥

श्रीभृगुदेवः श्रीरघुनाथः श्रीयदुनाथो बौद्धसुकल्की ॥ अवतारा दश वेदे प्रोक्ता न गुरोरधिको न गुरोरधिकः ॥ ७ ॥

गङ्गा काशी काञ्चीद्वारा मायाऽयोध्याऽवंती मथुरा ॥ यमुना रेवा पुष्करतीर्थं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ८ ॥

गोकुलगमनं गोपुरमथनं श्रीवृन्दावनमधुपुरटनम् ॥ एतत् सर्वं सुमहत्पुण्यं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ९ ॥

तुलसी-सेवा हरिहरभक्तिर्गंगासागरसंगम-

मुक्तिः ॥ किमपरमाधिक रामे भक्तिर्न गुरो-
रधिकं न गुरोरधिकम् ॥ १० ॥

काली दुर्गा भुवना बगला श्रीमातंगी धूमा तारा । छिन्ना त्रिपुरा भैरवि कमला न गुरोर-धिकं न गुरोरधिकं ॥ ११ ॥

एतत् स्तोत्रं पठति च नित्यं मोक्षज्ञानं सोप्यति धन्यः ॥ ब्रह्माण्डांतर्यद्यद्देवं न गुरोर-धिकं न गुरोरधिकम् ॥ १२ ॥ इति ॥

स्तोत्र–सवैया

भूतल काल काल मन पेखि, अभय पद ब्रह्म लखा व्रतको तो । देखि प्रपंच अनेक लुभावन, जौ फिरतो मन ठावन टोतो ॥ आप धनी निर्धार कियो, इतने दिन नाहक ऊसर जोतो । को भवसिंधु उबारत जीवन जो कलिनाम कबीर न हो तो ॥ १ ॥

बूड़त जो अघकुंडनमें यम, फन्दन फूँक समूह बधीतो। कर्म अकर्मनके गजरा शिर, पायतलोधर आन स्वगोतो ॥ ठावन ठान कुठान सबै तति-कंचन कांच उठाव लयोतो। को भवसिन्धु उबारत जीवन, जो कलि नाम कबीर न हो तो ॥ २ ॥

जो प्रभु स्वर्ग पताल करे सब, जो प्रभु लोक अखंडित छाये। जो प्रभु खान रचे पर चार वही प्रभु वेद सुवेद बनाये ॥ सो सर्वज्ञ कहे सुखलाल, रमो सबहीं नर भेद न पाये। सो प्रभु नाम कबीर कहाये, उबारन जीवनको जग आये ॥ ३ ॥

दै निज नाम लखाय हिये सत, शब्द गहे सत लोक सिधाये। जीवनको अपनो करिकै गुरु, ज्ञान अखंडितसो दरसाये ॥ हे प्रभु ब्रह्म अपार अगोचर,

को बरने गुरुके गुन पाये। सो प्रभु नाम कबीर कहाये, उबारन जीवनको जग आये ॥ ४ ॥

कवित्त

काशी है सुवश नगर प्रभुको निवास जहां, सन्तन शिरताज वास देखो दृग भीरकी। मारी अघ पुंज कँपें देखि दयाको सिन्धु, वरनको लोक शोभा गुनके गभीर को ॥ कहे सुखलाभ शुक्ल शोभित प्रकाश जाको, ताहिको निशान शुक्ल अति सुख हीरको कहे सुने शम्भु गौरा जागे नर नाहिं बौरा, भाने यम जौरा चौरा परसे कबीरको ॥ ५ ॥

दोहा

सद्गुरु ब्रह्म कबीरको, जप मन बारम्बार ।
बिना जपे तोहि फल मिले, परै न यमकी धार ॥

अथ वंशगुरुस्तुति प्रारम्भ

सवैया

पुरुषसो इच्छा उपजी जबै फिर, तिनहु लोक भये पल मांही। सोरह मांही काल लखो फिर, सोलह सी न्यारा वह नाहीं॥ तारक शक्ति भई गुण तीन सो, वेद पुरानको राह लखाही॥ सन्तनकी सतसंग करो तकि, न्यारा भेद तबे दरसाही ॥ ६ ॥

है निर अक्षर नाम सही, फिर कैसे लखवेमो आवे। जैसे फूलमें बास कहे फिर, रूपन रेखा नजर नहिं धावे ॥ पूरे गुरु जाहि मिले कृपानिधि शब्दहीमो पुनि ताहि लखावे। राग रागिनी रागहिमों, फिर ऐसेही निरअक्षर लखि पावै ॥ ७ ॥

अरजी मेरी मरजी तेरी, बिन मरजी कछु अर्ज नहीं है। जो विधि अंकलिखा धरिया, सो टारन हार,

एक तुही है ॥ मूरख जीव करे करनी, बल क्रिया सिद्धि तुरन्त लही है। सत इक ईशकी और परे पर, सत्तगुरु सत्य कबीर सही है ॥ ८ ॥

नाम कबीर सनातनको, जगमाहिं कटाय आप- केशा ॥ अजर नामको छाप ले आये, काल कर्मकी ताहि न संशा ॥ जापर दृष्टि करे करुणानिधि कागाते कर डारत हंसा ॥ देहिं अभयपद दीनन जान, सो बालावीर पुरुष जिन आशा ॥ ९ ॥

शब्द स्वरूप अखण्ड अनामी देखि जीव दुखी जग आये हैं। हितकारी कर्म पहारी, मुक्ति पदा- रथ लाये हैं। अविनाशी परम विलासी, मुक्ति पदारथ गाये हैं। मुक्तिको रूप नाम मुक्तामनि, जीवन बन्ध छुड़ाये हैं ॥ १० ॥

कामीके मनकामवसेफिर, लोभी के मन लोभरहावे।

निंदक मन निंदाहि वसे, फिर घातिकके मन घात समावे ॥ ज्यों नलनी सुवना अरुझी फिरि, छोड़ न कोटि उपाय करावे। ऐसे ही नामको ध्यान धरे फिर, औरहि बात कछू नहिं भावे ॥ ११ ॥

कवित्त

भारी भवसागरको दीसे नहीं बारा पार, ताहिको पार कहो कैसेके पाइये। मनहीको पवन जान मायाकी लहर उठे, शोभा अब कहो ताकी कहँ लों बताइये ॥ शब्दको जहाज डार कृपाको वरदवान भक्तके काज हेतु जगमें पठाइये ॥ पूरे हैं गुरु दयाल क्षणही मों करैं पार, सांचे मलाह आज ताहीको गाइये ॥ १२ ॥

दीननके नाथ तुम दीन्हहूँ पे दया करो, अधम उधारबेको जगतमें आये हो। पापो परपंच वाकी लोभके विकार मरो, मोहीसे अधम काज काहे विस-

राये हो ॥ मेरी तो बन्धछोर हौं मैं सब तिहारे, ताहीके काज आज तोही मैं गाये हो ॥ सांचे कबीर धीर दीननको हरो पीर, दीनबन्धु दीनानाथ ताहिते कहाये हो ॥ १३ ॥

सवैया

ज्ञान करे बहु ध्यान धरे, पोथी जो पढै अर्थ लगावे । योग करैं बश काम करै, दश इंद्रिन अपना करि लावे । भूति भविष्य कहे वर्तमान सों तीरथ कोटि कहां फिर आवे । सतगुरु शब्द प्रसंग बिना, फिर जन्म अनेकन काल नचावे ॥ १४ ॥

कुण्डलिया

अधम उधारन नाम हो, अधमन करो उधार । दीनबंधु दुखहरन हो, दीनन लेहु उबार ॥ दीनन-लेहु उबार, अपनी ओर निहारो। औगुण मम अप-राध बख्सि स्वामी चित धारो। ताते अर्जी मैं करौं,

तुम गुरु आनन्दधाम । पतितनको जब तारिहो; पतित उधारण नाम ॥ १५ ॥

सवैया

हौंवड़ भूप धरचो जगरूप, ताहि न चीन्हे मतिके मन्दा । कारण सूक्ष्म देह नहीं, पांचहु तीन पचीसके संदा ॥ शब्द स्वरूपको रूप लखो अब, ताहिको ध्यान धरो निज अन्दा । तजि कुल आस चरण कर बास, सो नाम सुदर्शन काटे फन्दा ॥ १६ ॥

अक्षर वृक्षकी मूल लखो, फिरि ताहि सो उपजी सब शाखा । पंच अभी शाख वह जान सरे, शंख रमैंनी पत्रहिं भाखा ॥ ताहिको पुष्प कहो अब योग सों, तत्व पदारथ फल मह राखा । मुक्ति पदारथ हैं फल तासु, सो संत सनेही निशि दिनि चाखा ॥ १७ ॥

अकस अलिप्त अकामी सोहं, जीव देखि दुखी

जग आये हैं कलिमल हरणं जनम न मरणं, परमानन्द कहाये हैं। हो अविनाशी परम विलासी, दीनबन्धु छुड़ाये हैं। हंसन हितकारी कर्म प्रहारी गुरु सुरति सनेही गाये हैं ॥ १८ ॥

अनुग्रह जापर साहब, ताको नहीं व्यापे कछु शंका। काटे फंद मिटे दुखः द्वन्द सो ऐसा है निज नाम निशंका ॥ देहि परवाना छाप सही वह, चाहे भूप होइ कि रंका। कुलपति नामको ध्यान धरों, अब काल बली शिर ऊपर डंका ॥ १९ ॥

जाको ध्यान धरो निशि वासर, सब विधि काम सुधारें सोई। अरसठ तीरथको फल मान, चरण ताको महि जानहु लोई। चारि पदारथको फलभोग, सो मन कर्म वचन जपे जो कोई। कमल नामको नाम जपो, सो काल बली तहँ बैठे रोई ॥ २० ॥

हितके चित्तके उरमें जो धरे, निशि वासर तासु चरणकर वासा । तीनहु देवको छोड़िय आसा, करो निशिवासर भक्ति विलासा ॥ है बड़ जाल महाबल काल सो, ताकर है चौरासी फासा॥अमोल नामको मोल नहीं, फिर राखो जासुके नामकी आशा ॥२१॥

हक्कहि साहबको न्याव जहां, सो निशि करहीं अपने मनमाहीं । नामके अस्त्रधरे हन शत्रु, सो यम काल बली मनहार लजाहीं । देखत रूप भजे यम भूप, सो औरहि जीवकी कौन चलाहीं । हक नामकी हांक परे नहिं, दृष्टि परे दुष्टनकी छांहीं ॥ २२ ॥

जे देवनकी सेव करे फिर, आवागमन रहित नहिं ताहीं ॥ वेद पुराणकी गम्य नहीं, अवशेष रहे निशिवासर जाहीं ॥ तीरथ व्रत करे तप नेम, सो मुक्ति पदारथ तामें नाहीं । दश औतारनकी गम्य नहीं सोई फल आनी सन्तन याहीं ॥

कवित्त

सच्चिदानन्द ब्रह्म निर्गुण स्वरूप आप, पुहुप दीपको निवास तजि प्रगटे भवजलमें। महाभव सिंधु घोर कालकी देखे जोर, जीवनको बन्दछोर लीन्हों उबार पलमें ॥ दीन्हों सुख सिन्धुवास सकल हंसको निवास, षोडस रविको प्रकाश, सुमन सेज जलमें अविचल देही पुरुष हे विदेही, ऐसे सुरतिके स्नेही बंदिये पल पलमें ॥ २४ ॥

सवैया

ज्ञान समूह प्रकाश विभाकर, शील अमीकी मूरति जेही ! आनन्द धाम कृपानिधि है प्रभु, हंसन ईश जपो अब तेंही ॥ जीव परे भवकूप पुकारत, आय धरी तेहि कारज देही । देत अभय पद दीन न जान तो नाथ सुधा सम सुरति सनेही ॥ २५ ॥

ब्रह्म अखंड अलौकिक जागृत, जीवचराचर सेवहिं जेही॥देखि दयानिधि जीवनको दुख,आय धरी भव-सागर तेही॥जीवन काज किये बहुभांति, दिये सुख सागर अविचल तेही। कालहिं जीति अक्षय पद दायक नाम अखंडित सुरति सनेही ॥२६॥

गुरु ध्यान समान न योग कछू, भवभंजन नाम जपो नर तेही। भक्ति विराग उभय फलदायक, देहि कृपाकरि शब्द विदेही ॥ विधि विष्णु महेश सुरेश पावत सो पद देत विलोकत जेही। काग मराल करे पल भीतर, अधम उधारन सुरति सनेही ॥ २७ ॥

शब्द स्वरूप लखो गुरु मूरति अक्षय रूप धरे जब देही। ब्रह्म अखंड रमें हुहि माहि,लखे कोई सज्जन शब्द सनेही ॥ जीव पुकार सुनि सतलोकमें आय-

गये करुणाकर जेही। शब्द लखाय किये अपने जिव, दुःख निवारन सुरति सनेही ॥ २८ ॥

गुरु मूरति अक्षरभो दरशे, निःअक्षर रूप सो जानिये तेही। जो पद शंकर शेष नपावत, ध्यावत हैं निशि वासर जेही॥जाहिं सुदृष्टि विलोकत हैं, प्रभु देहिं अभय पद नाम विदेही। हंस उबार किये भव पार सो, नाम उजागर सुरति सनेही ॥ २८ ॥

और गुरु सब स्वारथके, ये रस परमारथ पंथ सनेही। अक्षर रूप रमे सबही जग, है निःअक्षरशब्द विदेही॥दे सन्त शब्द करें अपने जिव, दूसरे काल निहारत जेही। चीन्हि ताहि गहो पद पंकज, नाम सनातन सुरति सनेही ॥ ३० ॥

अष्टक

चरणारबिन्दं सदगुरुं कृपालं नाम कबीरं नमामि

नमस्त्व । जग कारण कर्त्ता प्रोक्तं सुसत्यं गुरु धारं च जीवं तरती ॥ १ ॥ अव्ययमचिंतं गुणातीत नित्यं वर्णाश्रम ग्राम आक्तस्समाप्तं ॥ सुकृति गुरु यामस्थापनाय न महं कृतोक्त मुक्तामणि सो ॥२॥ अजन्मा अरूपाणि बहु रूपाणि धारयेत् । अव्यक्तो सर्व व्यक्तो वा सुदर्शनं नमामित्वं ॥३॥ विरक्तंसर्वदु-खानांरक्तं सर्वेषु दुस्पदा । सानंदा परमानंदं कुलपत्य नमाम्यहं ॥ ४ ॥ विषयालिप्त लिप्तां च सर्वलोकनमोऽस्तुते । सर्वभूत मयं ब्रह्म प्रबोध गुरुं नमामि ॥ ५ ॥ केवलं आलयं राज्यं बिदेहं प्रोक्त देह कृतं । कवलानाथ भयमीसं केवलनाम नमाम्यहं ॥ ६ ॥ अपनिर्भयं प्राप्ते च अभयं षटदर्शनं रवि । नौधा भक्तिमेकया मल नाम नमाम्यहं ॥ ७ ॥ अक्षरातीत रहितो यःस्वतःसिद्धषोडशोसुतः ॥ अण्डोयभेक सिख रांतं

सुरतिस्नेही नमाम्यहं ॥ ८ ॥ गिरं जानोयं तेजस्य अण्डा पुरुषं परं सर्व स्वप्नास रहितं । त्वयं स पुरुषं सदगुरुं कबीरं नमस्कृतं हक्कनाम सुवमरः ॥ ॥ ॥

अथ पाकनामाष्टकम्

भो दयाल ! जगत पाल काल जल खण्डनम । पाप ताप दहनहार दिव्य ज्ञान मण्डनम् ॥ भावापर करणधार पाकनाय अंकजम् । चरण शरण देहि मे नमामि पादपंकजम् ॥ १ ॥

सत्तः प्रकाश चिदाभास नामरूप अक्षकम् । जगत ब्रह्म आत्मसर्व साक्षी आदि लक्षणम् ॥ दया-धीर युक्त यो शुद्ध नाम अंकजम । चरण शरण देहि मे नमामि पादपंकजम् ॥ २ ॥

हंस भूप परम रूप भक्ति मुक्ति दायकम् । दया क्षमा रक्ष प्रभो सर्व सन्त नायकम् ॥ परीक्ष अक्ष

निर्मलं विशुद्धनाभ अंकजम् । चरण शरण देहि मे नमामि पादपंकजम् ॥ ३ ॥

विरह कलोल ब्रह्म गोल तत्त्वमसि छेदकम् । वेद विद्यातीत तत्त्वं चतुस्थान भेदकम् ॥ स्वयमक्ष साधु पक्ष शुद्धनाम अंकजम् । चरण शरण देहि मे नमामि पादपंकजम् ॥ ४ ॥

परस्व भानु सत्य ध्यान षट्पुट्टी विनाशकम् । आदि अन्त मध्यनाम नेति भासकम् ॥ कृपासिन्धु शील इन्दु शुद्धनाम अंजकम् । चरण शरण देहि मे नमामि पादपंकजम् ॥ ५ ॥

विश्व चित्र तासु मित्र तत् पवित्र शासनम् । शुचि पवित्र त्वं विचित्र सार शब्द भासनम् ॥ करुणामय कबीर योग शुद्धनाम अंकजम् । चरण शरण देहि मे नमामि पादपंकजम् ॥ ६ ॥

योन जीत भव अतीत न्याय नीति कारणम् । रिद्धि निद्धि सिद्धि दाता बृहद हस्त धारणम् ॥ सुखाब्धि दीन पालकं विशुद्ध नाम अंकजम् । चरण शरण देहि मे नमामि पादपंकजम् ॥ ७ ॥

बुद्धि अन्ध ज्ञान मन्द हीन छन्द स्पष्टकम् ॥ पूर्णदास भाषते सु पाकनाम् अष्टकम ॥ त्वम् प्रसाद सुगम सर्व शुद्ध नाम अंकजम् । चरण शरण देहि मे नमामि पादपंकजम् ॥ ८ ॥

अथ प्रगट नामाष्टकम्

हो कृपाल दीन पाल दुष्ट काल भंजनम् । संशया घृतमकिंच दिव्यजान भंशनम् । प्रगट नाम वंसहंस सद्य मोक्ष कन्दकम् । चरण शरण देहि मे नमःपदोरविन्दकम् ॥ १ ॥

करम मरम नाशकञ्ज धर्मराय गंजनम् । सार-

शब्द भासकंज सन्त रंजनम् । अन्तकाल रक्षकं च सत्य पीयूष सिन्धुकम् । चरण शरण देहि मे नमः पदारविन्दकम् ॥ २ ॥

सर्व हंस नायकं च ऐक्य भक्ति धारणम् । ज्ञान बुद्धि दायकं च सन्त निर्विकारकम् ॥ अज्ञसुज्ञकारकं च विघ्नहा निकन्दकम् । चरण शरण देहि मे नमामि पदारविन्दकम् ॥ ३ ॥

सत्यलोक राजितं च तेजपुंज रूपनम् । गीत हंस सिर्जकं च अंशभाव नूपनम् ॥ सद्गुरु कवीर नाम सद्य मोक्ष कन्दकम् । चरण शरण देहि मे नमामि पदारविन्दकम् ॥ ४ ॥

भक्त रूप भावनं च जीव बुद्धि नाशकम् । ज्ञान बुद्धि भासकं च हंसधी प्रकाशकम् ॥ बन्ध मुक्त

पत्रदं च कर्म चक्र छिन्दकम् । चरण शरण देहि मे नमामि पदारविन्दकम् ॥ ५ ॥

आद्यदा निवारणं च माया विलासनम् । विषमकाल मर्दनं च सद्यमोक्षकन्दकम् ॥ योग युक्ति मङ्गलं च देह कष्ट नाशकम् ॥ चरण शरण देहि मे नमामि पदारविन्दकम् ॥ ६ ॥

वंदनं वास्तिमान् हत सरोज अन्तरम् । काय वाच मानसिक सर्वदा निरन्तरम् । सत्य कबीर सत्य कबीर दुष्कारं निकन्दकम् । चरण शरण देहि मे नमामि पदारविंन्दकम् ॥ ७ ॥

बुद्धि नष्ट चित्त भ्रष्ट दुष्ट तुष्टकम् । भजन दास गीयते सु प्रगट नाम अष्टकम् ॥ त्वं प्रसाद कथ्यतेपिनौ गुणारविन्दकम् । चरण शरण देहि मे नमामि पदारविन्दकम् ॥ ८ ॥

अथ उग्रनामस्तुतिपंचकम्

जय उग्रनाम अकाम मंगलधाम नित्य निरामयम् । भवश्रमित शुभ विश्राम अति अभिराम पद निर्मयम् ॥ टेक ॥

मोह माया मान दम्भ मदादि मत्सर दूषणम् ॥ रहित नाता राग परम विराग सहित विभूषणम् ॥ १ ॥ जय उ०

सानुरोध पराध हरण प्रबोध मय कारण परम् । विपतद्वन्द स्वच्छन्द परमानन्द कन्दति निरभरम् ॥ २ ॥ जय उ० ॥

काल शेष खगेश भवदुपदेश भो करुणाकरम् । भव्य बर बर देश अखिल अशेष श्रेय मुदावरम ॥ ३ ॥ जय उ० ॥

भक्त कंज दिनेश ज्ञान धनेश क्लेश जगद्भवम् । समान सकल अहेतु प्रभु वृषकेतु सेतु भवार्णवम ॥ ४ ॥ जय उ० ॥

शम्भु यस्य पदारविंद पराग संचित कर्मजम् ।
व्याधि निखिल प्रभृत अति अनुभूत पावन भेषजम् ।
॥ ५ ॥ जय उ० ॥

अथ कबीर चालीसा

ॐ नमो आदि ब्रह्माय शब्दे स्वरूपं । नमो जीव जावद्मयं विश्वरूपं ॥ रहूं शरण जो सुखसिंधु चहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ १ ॥

क रूप कर्त्ताय निर्वाय देखो । ब रूप विस्तार नहिं आन पेखो ॥ र रुद्र रमताहि सब माहि रहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ २ ॥

क कृष्ण रूपं स्वरूपं अरूपं । व विष्णुधारी सबे देव भूपं ॥ र रुद्र रमताहिन्दमताहि गहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ ३ ॥

क कुल कुला जो नहिं आन कोई । वेलबेलो

अकेलो न दोई । र रार भेटो समेटो न बहुरे ।
कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ ४ ॥

क काही कवल्य कर्त्ताहि आपे । बा बीज विस्तार हरे त्रयतापे ॥ र रोम रोमा हि धर ताहि गहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ ५ ॥

क काल मर्दन सो हर्दन जपोरे । बा बीज सेठ रान तप ना तपोरे ॥ न राह निर्वाह गुरु बाड़ गहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ ६ ॥

क काही डरपे जो अरपे शिरूको । ब धोले बोले सो गहुरे गुरूको । र राह यही सो देही न बहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ ७ ॥

क कोउ तेरी सो महिमा पढे हैं । बा कै रूपे सरूपे गढे है ॥ र सर्व रमताहिं सब माहिं रहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ ८ ॥

जिहि पाइ इच्छाय सतलोक कीन्हा। उपजाय कंजाय तुहँ बास लीन्हा ॥ बहु भांति सुख धाम तहँ रास रहुरे। कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ ९ ॥

तहां एक अण्डाय तैजस भयऊ। करि लोक न्यारा सो त्रयलोक दयऊ ॥ तहिं आय जग जीव यम दाह दहुरे। कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ ११ ॥

जीव त्रास यम फांस करुणा उचारे। तै पुर्ष हे पुर्ष वाणी पुकारे। सुनि श्रवण झनकार रुर करा बहुरे। कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ ११ ॥

नर रूप धरि भूप गुरु रूप धाये। जिमि दाढ बांधेसे सुरभी छुड़ाये ॥ निज भक्त यम जीव गजग्राह गहुरे। कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ १२ ॥

सत्य शब्दे विदारी विथा है। युगन युगन जीव की करनी कथा है कलियुग जिवकाज दुख आय सहुरे। कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ १३ ॥

हे ब्रह्म आपे सो लीला करी है। नौ तत्त्व पांचों न देही धरी हैं ॥ सुख दुखः न्यारे हैं कहये में अहुरे। कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ १४ ॥

साह सिकन्दर सु अन्दरमें लेखा। कैसी फकीर हैं चाहिये सो देखा ॥ कर बांधकर पग बांध बोरे सु अहुरे। कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥१५॥

टूटे हैं जंजीर बैठे हैं तीरा। बोला सो शाह सांचा फकीरा ॥ फिर बोले बोल कि, गज मस्तक आहुरे। कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ १६ ॥

मातङ्ग माते न जाते ठिगे है। लखि रूप सिंघे सो चिक्कार भगे हैं। दे शाह अजमत स्वामी सुव-हुरे। कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ १७ ॥

देख्यो सब काम करता बिजूका। भरत तोप गोला

सो रोपा बिजूका ।। जिमी देह गज तू गोलं न लहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ।। १८ ।।

हे दीन बन्धू दया देख अन्दर। गति जौन जैसी सो नाचत बन्दर । तिमि आप शाह्व सिकन्दर जो चहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ।। १९ ।।

फिर शाह बोला यह गोला न डरपे।।देतेगे अनेक चलाया है डरपै ।। जलधार जिमि सार मझि आय बहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ।। २० ।।

कहां कहौ और केती कहानी । तजि स्वामि ऐसो भुलानोरे प्रानी ।। निष्काम निःक्रोध निर्लोभ बहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ।। २१ ।।

हारा हे शाह सो दैनेग पीरा । नाहीं फकीर है यह आव पीरा ।। जाना सो नर नाह शर नाहे गहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ।।२२।।

खूने अनेके जो शाह न कीन्हा । जानही अपने सो चितमें न दीन्हा ॥ जिमी तातसुत करे अवगुन न कहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ २३ ॥

डारे सो शिर पेंज ऐंचे सो सूछे । कालते कालेते जातें जो पूछे ॥ हे स्वामी सब करे सव मांहि बहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ २४ ॥

फिर एक और सुनोरे गुनेरे तजि स्वामी ऐसो न तीसे घुनेरे ॥ यही है पूरी आप काशीमें रहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ २५ ॥

गोपाल पण्डासी अटका पयासो । फुटयो है फट कासु चटका बुझायो ॥ काहू न ताको सो यह भेद लहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ २६ ॥

बोधे दोई दीन तहां सो कीन्ह ऐसा । समझाय दर्साय जहि जौन जैसा ॥ तजि देह दोउ ओर हथियार गहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥२७॥

दोऊ ओर क्रोधा सो योद्धा बढे हैं। अपनेजो अपने सो प्रण पर अडे हैं ॥ तखतास निरायन यह बान गहुरे। कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥२८॥

देखो उघारी वहां है त्रह नाही। केहि काज न लड़ते सो मरते बृथाही ॥ तब आय दोउ दीन रेखा न अहुरे। कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥२९॥

स्थूल घर फूलअघु न भारी। हे ब्रह्म हे पीर रटना पुकारी ॥ सुनीदीन बानी तेहि दर्श वहुरे। कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ ३० ॥

पुनि एक ओरो सुनोरे सुनाऊँ। लखि स्वामी ऐसो सो दिन रैंन गाऊँ ॥ तत्त्व जीव प्राण ऐसो गहुरे। कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥३१॥

सूखो हता एक लड़का पुरानो। हरिपाय जेहि चरण चर्णोदि जानो। गडो है आय अँयनाय बहुरे। कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥३२॥

जुडि आय बहु बेष दृग देखि लीजै। पानी सो छानी और गुरु जान कीजें॥ साधु सो हैं सूर प्रणपूर गहुरे। कव्बीर कव्बीर कव्बीर कहुरे ॥ ३३ ॥

न्यारे सुन्यारे ले चरना पखारे। जेहि भांति जिहि रीति कर प्रीति डारे॥ हरियान नाहीं सो उर दाह दहुरे। कव्बीर कव्बीर कव्बीर कहुरे ॥३४॥

तब जानि जन प्रीति प्रणपूर आये। उदरदाह लागि सो क्षणमें बुझाये ॥ लै चरण चर्णोद मन मोद बहुरे। कव्बीर कव्बीर कव्बीर कहुरे॥३५॥

ढरद्यो है कर पोटि परतीत आई। हरियात निर्जीव सरजीव भाई॥ दोउ भाइ निर्द्वन्द्व शरण सो गहुरे। कव्बीर कव्बीर कव्बीर कहुरे ॥ ३६ ॥

सों टूट ना आयाजी उक्त केरे। जर भक्ति अंकुर सो यमराज पेरे ॥ सौ आप गुरु रूप निज

स्वरूप वहुरे । कव्बीर कव्बीर कव्बीर कहुरे॥३७॥

चरणा देई मृत्यु समरत्थ केरो । करुणाऽक्षयकी कोर फिर आप हेरे । हरिनाम सो पान नर ताहि गहुरे । कव्बीर कव्बीर कव्बीर कहुरे ॥ ३८ ॥

नर धाय पदपंकजका मन मौज कीजे । यह चैन वह चैन सुख वास लीजे ॥ देउ और पक्ष सो स्वक्ष गहुरे । कव्बीर कव्बीर कव्बीर कहुरे ॥ ३९ ॥

कहि ताहि सुखलाल सुखलाल वरने । मिटिजात जगजात जन्मादि मरने ॥ यह जानेमन मान शरना सु गहुरे । कव्बीर कव्बीर कव्बीर कहुरे ॥ ४० ॥

दोहा

चालिस छन्द प्रवन्ध ये, बांचे डरपे काल ।
साधन प्रेम बढावई, यमदूतनको साल॥१॥

इति कबीर चालीसा ॥

अथ कबीर पञ्चाशिकाप्रारम्भ

तोटक छंद

जय सत्य कबीर कृपाल घनं । दल दुष्ट हनपय पुष्ट जनं ॥ योगजीत अतीस पुनीत प्रभु । वपु धारन कारन तारन भू ॥ १ ॥

सत सुकृत सत्य स्वरूप सदा । जन ध्यावत पावत मुक्तिपदा । मुक्तामनि ते जिव जो युक्ता । मृत्यु लोकन भव भुक्ता ॥ २ ॥

हम दीन दुखी किमि त्याग चहौं । करुणामयहो करुणामय हो। करुणा तन धरि करी करुणा । करुणा धौं करुणा वरुणा ॥ ३॥

सुरसिद्ध बखानत खान दया । जिव देखि अनाथ सनाथ किया ॥ जेहि ज्वाल जला यम भक्ष करे । विनु देव दयालको रक्ष करे ॥४ ॥

यम जालिम जीवन जेर कियो । सुधि लेन दया-निधि देर कियो । सुख लेन न केतक क्लेश भरे । जगदीश परे जगदीश परे ॥ ५ ॥

जिव कालकरालके ज्वालदहे । तर ऊपर भर-पूर धाय गहे । हम जानि दयाल जो काल भजे । गुण ग्राम प्रनाम सो नाम तजे ॥ ६ ॥

घटवाह मलाह सलाह कहो । फिरि कैलकी गैलकी सैल न हो । वह सिंह समान शिकार करे । पिय पीव विना कहँ जीव तरे ॥७॥

हरिके हरि देहरि पार करो । सरकार उडे बरकार करो ॥ भय भञ्जन रञ्जन दासनको । खल डाटत गाटत कासनको ॥ ८ ॥

भवसागर झागर काल बली । तहँ जीवकी युक्ति न उक्ति चली । लहिं एक उपाय बनाय बनी । करु काज गरीब निवाजगनी ॥ ९ ॥

प्रभु पेखतही जिव शीतल है । क्षणमें भवसिंधु का पार लहै ॥ करुणा दृग कोटिन काल हनै । खुर सिंधु कणा गिरि बिन्दु बनै ॥ १० ॥

मति धीर कबीर कबीर भजो । हित नाम प्रिया वित वाम तजो ॥ तपखान किरसान शिलादहके । जरते प्रभु मारगते वहके ॥ ११ ॥

तलफै तपतीख सभीतलमें । त्रिनुनाथके नेह नहीं पलमें ॥ निज शिष्ट निवाज सुदृष्टि लखो । सिरपै समरत्थ जो हत्थ रखो ॥ १२ ॥

नर वाल विहाल निहाल मही । दुख द्वन्द्व दवारि न देह वही ॥ मन भौ मदमोचन लोचन है । जन रक्षक भक्षक पोचन है ॥ १३ ॥

सब लायक लायक हंसनके । जिव मोषक पोषक अंशनके ॥ सर्वोपर साहब शीवनके । तुम जीवन नाथ हो जीवनके ॥ १४ ॥

प्रभुके श्रमते जपते बजरे । यहि तप्त शिलापर आनि जरे ॥ न पिया जपिता पिया परखे । विधि वेदन वेदनते हरखे ॥ १५ ॥

जीव काज चले शिरताज सभी । महराज भया सुख साज सभी ॥ भवभार हनो करतार धनी । धरमराय न पाय कषाय दुनी ॥१६॥

करि नेह विदेह जो देह धृतम् । शब्दामृत जीव मैं कृत्तकृतम् ॥ मृत नायक सायक तीख हते । पद प्रीतिप्रतीत सहीत गते ॥ १७ ॥

परमारथि भारथि नाथ सदा । गहते लहते भव पाथ सदा ॥ जन जाय सभाय अमान पदा । शुभ ज्ञान कुरान नसान मदा ॥ १८ ॥

सुनि मानस हंस मुनीन्द्रमता । समता लह पाय

परता रमता ॥ तव नाम सुधा वसुधा जो पिया । न क्षुधा युगही युग जीव जिया ॥ १९ ॥

दुखिया हित आय महासुखिया । लखि पीवहि जीव भये सुखिया। कहूँ और न दौर तो और परे। शरनी परनी करनी न खरे ॥ २० ॥

पद तीर कबीर शरीर जिते। लह शाह में ब्रह्म अकार तिते ॥ जग योनि जहान महान महा । गुरु देवको सेव न मेव लहा ॥ २१ ॥

कमलापति धौं कमलापतिको । पद कीरति कीरति कीरति हो। मृगव्याध समाध अगाध गहे। कल्याण सिरान न ध्यान लहे ॥ २२ ॥

गुण गाय फणीगणराय निति। नहिं पावत पार अपार गति ॥ लवलीन प्रवीन नवीन जसे । कलि पंक कलंक निशंक नसे ॥ २३ ॥

विषया बन राय भुलाय परे । दुख दबन विनाकर कौन धरे कह कौन संदेश अन्देश बडा । मग भूलि गई ठग आनि अडा ॥ २४ ॥

जिव शोककी ओकमें भूली रहा ॥ करता भरता भ्रम झूलि रहा । तिहुँलोक विलोक लगी अगिनी । वह जामिन है यमकी भगिनी ॥ २५ ॥

तकसूरको नूर जहूर हुआ । ममता रजनी दुख दूर हुआ ॥ सगरे पगरे रगरे बगरे । पशुज्ञान महे डगरे डगरे ॥ २६ ॥

बक चाल सभी न मराल गती । विन एकरती बन न एक मती ॥ जब गर्भमें अर्भक अर्ज करे । तिहि गाढदे साहब गाढि धरे ॥ २७ ॥

इति औरहि डालको ख्याल खिला । बुद्धि खपत पर यहि तप्त शिला ॥ वह औंध अचेत सुषोपति

सौ। कह पाय पराग नरसको ॥ २८ ॥

निज धामते राम पयान लिया। जगती भगती पद दाय लिया ॥ कितहो पलकी मनसा मलकी। अरु अन्ध अचेतकी मय टलकी ॥ २९ ॥

दृगदानि किबानि बिहानि इते। मकरन्दके फन्दको जीव जिते ॥ मृत सृङ्गन ब्रिंग बिहार करें। कर्म रेख विशेष न देखपरे ॥ ३० ॥

नहिं क्रोधित अन्धन गन्ध मिले। जीव दंडक भंडक भीर हिले ॥ गुरु पीर कबीर उजागर है। भज वोहित सागर पारग है ॥ ३१ ॥

जग बन्दन भर्म निकन्दन है। शरनी सत लोक की सन्दन है ॥ सतनाम सनेह सुधाम चढे। कलिमां वलिमां कलिसांह पढे ॥ ३२ ॥

गुण गर्भ निकाम कबीर कबी। यश गावत

पावत कोटि छवी ।। धुरधर्मधरा धर बार कहो । भवतारक पंथ प्रचार कहो ।। ३३ ।।

नर पामर धामर बुद्धि बिना । यम ज्योति पतंगके ढंग बना ।। जग व्याधि रु आधि असाध करे । चरणाम्बुज चूरण चारु हरे ।। ३४ ।।

भवतारण हेत निकेत कृपा । यम गाम लियो सुखधाम नृपा ।। धुर भूद स्वरूप अनूप छिपा । रवि सोम जो कोटिक रोम दिपा ।। ३५ ।।

गुरु गुप्त कियो धुरको बरनन । भव और भया वन तौ शरनन । हमरे उरके पुरवास करो । निजु दासनको अब दास करो ।। ३६ ।।

बिन कन्तके भजवल जप्त घने । दुख द्वन्तक फन्दक फन्द फने ।। जंगकी बांह निबाह लहे । भ्रम भोडरमें भेडर भीरवहे ।। ३७ ।।

दनुजात वलात निपात भये । रणधीरनधीर वहीर गये ॥ जिहि जानत जाम सुधाम धरे । मुनिके मन मंदिरमें विहरे ॥ ३८ ॥

मन मत्त मतंग गते यहि गौ । तुहि रावत होय महाउत नौं । चित चंचक वंचर वंचक है । सम सञ्ज विरंचन रंचक है ॥ ३९ ॥

यम वंकट संकट जीव महा । दमको गमको रमको न रहा । भव सेत अभै पद देत तुही । कलिकण्टक कोटिक कर्म दहो ॥ ४० ॥

चढि सेत पपोलन दील तहां । लंघेदीन पयो-निधि पीन महा । न वज्रको हाड न रहो वाड । मन वाक शरीर कवीर कहो ॥ ४१ ॥

गुरु नेह नवी सन दोष जिन्हें । सुख वास न

आस है त्रास तिन्हे ॥ तुम दीनन बन्धु न पीन नके। नित चाहौ दास अधीननके ॥ ४२ ॥

मदमान भला न हिये अरभौ । नर नागर सागर भौ गरभौ ॥ करि पाय कलाय करे बनिया । विषबीज अभी फलको लुनिया ॥ ४३ ॥

हरिमें हरिमें हमही बरषे ॥ लहरी भव भक्ति हरि हरषे ॥ दुख दारिद वारिद ज्ञान घने । निर्भ-यकारि भय समनं समनं ॥ ४४ ॥

जीव कालके जाल परे बपुरे । सतनाम निकाम सदा जपुरे ॥ गुरु भक्ति निनार किनार गहे । चतुरे लुतरे भवधारबरे ॥ ४५ ॥

भ्रम भूलते भूलते जात भये । बुध बालन ढालन पास लगे ॥ मन वाचक जापक हौं दरको । तुम छोड अछोड सभी घरको ॥ ४६ ॥

प्रभुनामको दान निदान चहौं । कोई भास रु वास विकासन हो ॥ तरती बनी तब नाम जहां । गहिये लहिये विश्राम तहां ॥ ४७ ॥

रसना रस रास रसैं रससो । जस तो बस और सबै कस सो ॥ चढ नाम रथा गई बीन विथा । रसना रस न बिन कीर्ति कथा ॥ ४८ ॥

पदपंकज प्यार जो जूटि गया । अरु सूत सनेहको टूटि गया ॥ ठग ठाकुर आनिके जूटि गया । जगजीवनकी बुद्धि छूटि गया ॥ ४९ ॥

रहगीर मते बडी भीर भई । सतपंथ बिहाय कुपंथ लई ॥ गुरु भक्ति विना भव भूली पडे । शरणागत पाहि कबीर हरे ॥ ५० ॥

दोहा

यह कबीर पंचाशिका, पढै सप्रीति परतीति।
परम पुरुष पद पावई, काल कष्टको जीति॥ १॥

कबीरभानुप्रकाशांतर्गता श्रीकबीरपंचा-
शिका स्तुतिः समाप्ता।

इति स्तुति रत्नाकर समाप्त।

समाप्तोऽयं दशमो विश्रामः

सत्यनाम

विनय रत्नाकर

(कबीरोपासनापद्धति अन्तर्गत)

एकादश विश्राम



अथ आरती प्रारम्भः

आरती १

संझा आरती नाम तुम्हारी । अनहद धुनि गुरु ज्ञान विचारी ॥ तत्त्व कर तेल दया कर दीप । ब्रह्म अग्नि मन पवन समीप ॥ पांचों वाती निरमल बारी । सुरति चँवर लइ सनमुख ढारी ॥ प्रेम के पुहुप धूम धर ध्याना । चित चंदन घांसे आगे आना ॥ अविगत रूप अधर प्रकाशा ॥ आरती गावे कबीर धर्मदासा ॥

आरती २

आन आरती अमृत बानी । पूरन ब्रह्म लेहु पंहिचानी ॥ त्रिदेवा मिलि ज्योति बखानी ॥ निरंकारकी अकथ कहानी ॥ यही आशा सबही मिली ठानी । भरमि भरमि मुये निर प्रानी । दृष्टि विना दुनिया बौरानी । साहिब छाडि यम हाथ बिकानी । कहहिं कबीर कोइ संतसुजाना।जिनजिन शब्द हमारा माना॥

आरती ३

कैसे मैं आरति करों तुम्हारी। महा मलिन गति देह हमारी ॥ मैलसे उपज्यो संसारा । हौ छुतिया गुण गाउँ तुम्हारा ॥ झरना झरे दशोदिशि द्वारे । कैसे मैं आवो निकट तुम्हारो ॥ जब तुम देहु अग्रकी देही । जब हम होइहौं नाम सनेही ॥ मलयागिरिमें बसे भुजंगा। विष अमृत गो एक संगा ॥ तिनुका तोरि देहु पर-

वाना । तब हम पाएब पद निरवाना । धनी धर्मदास कबीर बलगाजे । गुरु प्रताप आरती साजे ॥

आरती ४

अखण्ड आरती खण्ड न कोई । कालहि मारी रसातल खोई ॥ खंडि पिंड इकइस ब्रह्मण्डा । खंडित नदी अठारह गंडा ॥ खंडित रघुपति खंडित रावन । खंडित कृष्ण वीर बली वामन ॥ खंडित धरती पवन अकाशा । खंडित चांद सूरज कैलासा ॥ खंडित जहँलगि सकल पसारा । खंड अखंड कबीर पुकारा ॥

आरती ५

मंगल रूप आरती साजे । अभय निशान ज्ञान धुनि बाजे ॥ निशि वासर जहँ सुरज न चन्दा ॥ परम पुरुष जहँ करे अनन्दा ॥ अनै वृक्ष जाकी

अमर छाया । प्रेम प्रकाश अमृत फल पाया ॥ जरा मरनकी संशय मेटो । सुरति संतापन सतगुरु मेटो ॥ तन मन धन जिन्ह अरपन कीन्हा । परम पुरुष परमातम चीन्हा । कहैं कबीर हिरम्बर होय। निरख नाम निज चीन्हे सोय ॥

आरती ६

आरती संत कबीर तुम्हारी ।
दया करो जाऊ बलिहारी ॥

पहिली आरती पुहुमी आये। काशी प्रगटे दास कहाये॥दूसर आरती देवल थपायो। आसा रोपि समुद्र हटायो ॥ तीसर आरती चरण जलढारे । हरिके पंडा जरत उबारे। चौथी आरती तुरतहि धाये। तोरि जंजीर तीर ले आये॥ पांचे आरती बलख सिधाये॥ चौरासी सिद्धके बन्ध छुठाये ॥ छठई आरती अबि-

गति धारे । मुरदासों जिन्दा कर डारे ॥ सतयें आरती पीर कहाये । मगहर अमी नदी वहाये ॥ आठैं आरती मंडल सिधाये । जन ज्ञानीको संशय मिटाये ॥ कहँ लगि कहौं बरनि नहिं जाय । धर्मदास आरती सचपाय ॥

आरती ७

आरती कीजे बन्दीछोर समरथकी ।
चरण शरण सत नाम पुरुषकी ॥

आरती कर पुहुमी पग धारे । सत युगमें सतनाम पुकारे ॥ आरती कर मुख मंगल गाये । त्रेता नाम मुनींद्र धराये । कर आरती जग पंथ चलाये । द्वापरमें करुणामय कहलाये ॥ आरती युग युग बांधे आशा । कलियुग केवल नाम प्रकाशा ॥ चारों युग धरे प्रगट शरीरा । आरती गावें बन्दीछोर कबीरा ॥

आरती ८

आरती करहिं धनि धर्मदासा ।
पांच तत्व मुख भेद प्रकाशा ॥

प्रथमहि वायु तेज है पानी । रहत अकाश निरंतर जानी ॥ गगन वायु गरजे असमाना । निज घर निती ध्वजा फहराना ॥ कोट ब्रह्म जहँ कथे पुराना । कोट रुद्र जहां धरहीं ध्याना । कोट विष्णु विनवे कर जोरी । औरहु देवतें तीस करोरी ॥ शेष सहसमुख निशिदिन गावे । स्तुति करे पार नहिं पावे ॥ जो गुरु मिले तो भेद लखावे ॥ कहैं कबीर हंसा पति आये । धर्मदास आरती सचुपाये ॥

आरती ९

ऐसी आरती देऊँ लगाई ।
निरखत अधर ज्योती फैलाई ॥

गहु निजाक्षर गहु निज डोरी । धरमरायसो तिनुका तोरी ॥ युग बांधो निरखौ टकसारा । जासो उतरो भव-जल पारा ॥ कोट जनमको कर्म कटाये। चौदह काल जीत घर आये ॥ हीरा कोटि होय परकाशा । विना सुगंध पुहुपकी बासा ॥ चन्द्र लगन गहि करो प्रकाशा ॥ चौदह यम माने त्रासा ॥ धरती धर्मनि उदित अकाशा ॥ जापर सूरज करे प्रकाशा ॥ कहै कवीर सुनौ धर्मदासा । जब जालिम माने त्रासा ॥

आरती १०

आरति नाम निरंतर भावे ।
तेतीसो मिलि मंगल गावे ॥

चित कर थार ज्योति जिव गाजे। शब्द अना-हद झालर बाजे ॥ घटहीमें यन्त्र बजावहिं बाजा । सत-गुरु मिले भय सब भाजा ॥ विना करताल पखावज बाजे । श्वेत सिंहासन छत्र विराजे ॥ कर सनमान

जीव भये आगे (साहेब) कबीर गुरुके चरणन लागे ॥

आरती ११

आरति सनमानकी कीजै ।
जीवन जनम सुफल कर लीजै ॥

अग्रकी थार अनूपम बाती । ज्योति प्रकाश करे दिन राती ॥ मुरली ध्वनि अनूपम बाजे । शब्द अन हद धनु तहँ गाजे ॥ त्रिकुटी संगम झलके हीरा ॥ चरण कमल चित राखु शरीरा ॥ सतसुकृति आरति चित दीजे । तन मन धनहि निछावरि कीजै ॥

आरती १२

जाघर आरति दास करत हैं ।
जनम जनमको पाप हरत हैं ॥

कदलीदल पुहुपनके द्वारा । सत्त सुकृत जा घर पग धारा॥परिमल अग्र गुलाल गुवासा॥ जा घर हंस

करे सुखवासा ॥ अनहद ताल पखावज वाजे सप्त सिंहासन छत्र विराजे ॥ नाम एकोतर सुमिरे जबहीं । सतगुरु बैठसिंहासन तबहीं । तत्त्वमता नारियपावाना । सतगुरु कृपा होय निर्वाना ॥ नरियर मोरत वांस उडाई ॥ पल एक साहेब विलमें आई ॥ सतगुरु दया प्रगट जब होई । पाप प्रसाद महाफल सोई ॥ महा प्रसाद तत्त्व विधि पावे । कहैं कबीर सतलोक सिधाये ॥

आरती १३

मंगलरूप आरति होई ।
शब्दसुरति चितराखु समोई ॥

दीप अमोल अगम उजियारा। संत पुरुष कीन्हो विस्तारा॥ हंस हिरम्बर शब्द समाई । वृक्ष गुरुम्बर बैठक पाई ॥ शीतल नीर सुरति भरलावें । हंस सोहंनम चौर डुरावैं। मणि माणिक हंसनकी पाती।

शब्द स्वरूपसुरतिकी क्रांती ॥ हंससुजनअन-आज्ञाकारी । हंसन काज देह निज धारी ॥ मनबच कर्म जो आरति साजे। कहै कबीर सतलोक विराजे ॥

आरती १४

आरति सतगुरु साहेब कबीर बन्दीछोरकी। करत किलोल हंस पति अगर आनन्द विमल विनोदकी ॥ त्रिगुण तेल पंच मुख बाती मानिक ज्योति अपार । हरिन धार संजोय सकल विधि पूरन नाम अधार ॥ संगति सकल सुकृति भये ठाढे कहत संदेश अपार । जाकी सुरति भई तन व्याकुल अति आतुर दीदार ॥ बाजत ताल मृदंग झालरी वीना शब्द रसाल। धुधुक धुधुक जहां तुरही बाजे गरजत शब्द अपार । पूरण पुरुष सिंहासन राजे बहु सौभा स्थीर । धर्मदास आरति कर जोरे गावहिं साहब कबीर ॥

आरती १५

संझा आरति कीजै गुरु सेवा।
संपुट खोलि मिले गुरु देवा॥

तेज पुंजके ज्योती उजियारा। घण्ट माल बाजे अधिकारा॥ अनहद शब्द अखण्डित होई। अगर वासमें रहें समोई। सुकृत अंस पुरुवाके धावे। सतगुरु चिन्ह चरन चितलावे॥ मन वच कर्म जो आरति गावै। कहै कबीर सतलोक सिधावै॥

आरती १६

संझा आरति सुकृत कीना॥ हंस उवार आपन कर लीन्हा॥ गगन मण्डल बीच फूल एक फूला। तरे भये डार ऊपर भये मूला॥ गगन मंडल बीच आरति साजे। सोहं हंसा आन विराजे॥ तत

निहतत्त्वमें जाइ समाने। देखहु द्वीप अधर स्थाने॥ कहैं कबीर सुनु साधू भाई। अजर अमर घर रहो समाई ॥

आरती १७

संझा आरति करो बिचारी।
काल दूत यम रहे झकमारी ॥

खुल गई सुषमनि कूचीतारा । अनहदशब्द उठे झनकारा। सुरति निरति देउ उलटि सभावे। मकर तार जहँ ढोर लगावे॥ उनमनि शब्द अगर घर होई। अचाह कमलमें रहे समाई॥ विगसे सित कमल होय प्रकासा। आरति गावे कबीर धर्मदासा॥

आरती १८

संझा आरति सुकृत संजोई।
चरन कमल चित राख समोई ॥

तिरगुन तेल भरो दुई वाती। ज्योति प्रकाश धरे दिन राती॥ शून्य शिखर पर झालर बाजे। महापुरुष घर राज विराजे॥ शब्द सरूपी आप विराजे। दर्शन होय सकल भ्रम भाजे॥ प्रेमप्रीतिकै संवा लावे। गुरु मम होय परम पद पावे॥ सुख आनन्द है आरति गावे। कहै कबीर सतलोक सिधावे॥

आरती १९

जय जय सत्य कबीर

सतनाम सत सुकृत सतरत हत कामी। विगत क्लेश सत धमी त्रिभुवन पति स्वामी॥ टेक॥ जयतिजयति कबीरं नाशक भवभीरम्। धायो मनुज शरीरं शिशुवर शर तीरम्॥जय०॥ कमल पत्र पर शोभित शोभाजित कैसे। नीलाचलपर रजित मुक्ता मणि जैसे॥ जय०॥ परम मनोहर रूपं पर मुदित

सुखराशी । अति अभिनव अविनाशी काशीपुर वासी ॥जय०॥ हंस उबारन कारण प्रकटे तन धारी । परख रूप बिहारी अविचल अविकारी ॥ जय० ॥ साहब कबीरकी आरति अगणित अघहारी । धर्मदास बलिहारी मुद मंगल कारी ॥ जय० ॥

आरती २०

जय जय श्री गुरुदेव

पारख रूप कृपालं, मुद मय त्रय कालं । मानस साधुमरालं नाशक भवजालं ॥ १ ॥ टेक ॥ कुन्द इन्दु वर सुन्दर, सन्तन हितकारी । शांताकार शरीरम् श्वेताम्बर धारी ॥ ज जय श्री गुरुदेव ॥ २ ॥

श्वेत मुकुट चक्रांकित मस्तकपर सोहे । शुभ तिलक युत भृकुटि, लखि मुनि मन मोहे ॥ जय जय श्रीगुरुदेव ॥ ३ ॥

हीरा मणि मुक्तादिक, भूषित उरदेशं । पदमासन सिंहासन, स्थित मंगलवेशं ॥ जय२ श्रीगुरुदेव ॥४॥

तरुण अरुण कंजांघ्री जनमन वशकारी । तम अज्ञान प्रहारी, नखदुति अति भारी ॥ जय जय श्रीगुरुदेव ॥ ५ ॥

सत्य कबीरकी आरती जो कोई गावे । भक्तिपदारथ पावे, मौन नहिं आवे॥जय जय श्रीगुरुदेव॥६॥

आरती २१

संझा आरति कीजे सेवा । संपुट खोलि मिले गुरु देवा ॥ १ तेज पुंजकी ज्योति उजियारी । घण्टा ताल बजे झंकारी ॥ २ ॥ अनहद नाद अखंडित होई । अग्र वासमैं हंस समोई ॥३॥ शब्द स्वरूपी आप बिराजे । दर्शन मुक्ति सकल भ्रम भाजे ॥४॥ सुकृत हंस अगमको धावे । सतगुरु सेह चरण चित

लावे ॥५॥ मन वच कर्म जो आरति गावे। कहहि कबीर सत लोक सिधावे ॥ ६ ॥

आरती २२

आरती निज नाम तुम्हारी अवगति अगम अलेख सुरारी ॥१॥ पहिली आरति पियाजीको पाये। रोम रोममें अलख लखाये ॥ २ ॥ दूसरी आरती दुतिया नहीं कोई। जहां देखौ तहां हरि होई ॥३॥ तिसरी आरति त्रिगुण नाई। चौथे पदमें रहे समाई ॥४॥ चौथी आरती चहुँ दिशि भरपूर। गगन न्दिल बाजे अनहद तूर ॥ ५ ॥ पंचयें आरती पूरन प्यार था कहहिं छबीर साहेब न्यारा ॥६॥

आरती २३

संझा आरति सुमरण सोई। सुमिरण करत महा फल होई ॥ १ ॥ पहिली अरति प्रेम प्रकाशा।

कर्म भर्म सब कीन्ह विनाशा ॥ २ ॥ दूसरी आरति दिलहीमें देवा । योग युक्तिसे करले सेवा ॥ ३ ॥ तीसरि आरति त्रिभुवन सूझै । गुरुगमज्ञान अगोचर बूझै ॥४॥ चौथी आरति चहुंयुग पूजा । गुरु सम देव और नहीं दूजा ॥ ५ ॥ पचयें आरति पद निरवाना । कहहीं कबीर हंसा लोकमसाना ॥६॥

आरती २४

आरति परम पुरुष निजदेवा । अनन्त कोटि जहां लावहिं सेवा ॥१॥ ओंकार घंटाधुनि वाजे । सतगुण विष्णु आरती साजे ॥ २ ॥ शेष महीकर कीन्हों मारा । सूर असंखन ज्योति अपारा ॥ ३ ॥ शिव सनकादिक मुनि ऋषि सारे । अस्तुति ब्रह्मा वेद उचारे ॥४॥ ध्रुव प्रहलाद चँवर लिये ढारे । धूप दीप गणपति विस्तारे ॥ ५ ॥ बरुण इन्द्र पुहुपनके

माला । नाना रूप अनंत विशाला ॥ ६ ॥ व्यास वशिष्ठ कपिल सतधारी । विविधिविधान सब साज सँवारी ॥ ७ ॥ शुकदेव नारद वेनु बजावैं । साहेब कबीर आरति गावैं ॥ ८ ॥

आरती २९

ऐसी आरती घुरे निसाना । सुनहु चितदै सन्त सुजाना ॥१॥ जिह्वा वचन झूठ मति भाखो । सत्य शब्दमें चित दे राखो ॥ २ ॥ परधन त्यागो और परनारी । शब्द अनाहद लेहु विचारी ॥३॥ काम क्रोध छांडो यह लक्षण । हंसदशाधरि होइ सुलक्षण ॥ ४ ॥ तन मनसे परचे करु भाई । बिन परचे यम हाथ विंकाई ॥ ५ ॥ छाडहु दर दुरकेर बसेरा । उल्टा लै मिसो हँस है मेरा ॥ ६ ॥ पक्ष वेष तजो चतुराई । सतसुकृत तब होहि सहाई ॥ ७ ॥ आशा

तृष्णा तजहु विकारा। सो ज्ञानी कहिय तत्त्व सारा ॥८॥ संत विवेकी शीतल अंगा। अगर वास जैसे चन्दन संगा ॥ ९ ॥ प्रेम प्रकाश भक्ति लवलीना। निर्मल कबहुँ न हीरा सलीना ॥१०॥ निर्मल सोई जाके संशय नाहीं। आपामध्ये आप समाही ॥११॥ कहहि कबीर संतनसुखदाई। अजर अमर स्थिर वर पाई ॥ १२ ॥

आरती २६

ऐसी आरती गुरुहि लखाई। निरखत शब्द सुरति ठहराई ॥१॥ ऐसी आरती आत्म पोर। आगे पला न पकडे चोर ॥ २ ॥ गहो शब्द निअक्षर जोडी। धर्मराय से तिनका तोडी ॥ ३ ॥ तन धरती चित-लग्यो आकाशा। विना पुहुप सुगंध निवासा ॥४॥ उलटि अगोचर अमीरस चाखे। दरियां पार सुरति

ले राखे ॥५॥अनन्त जन्मकी उरझ मिटावे । चौदह काल जीत घर आवै ॥६॥ कहहि कबीर भाग नरे तेरा । सतगुरु किये अमर पुर डेरा ॥ ७ ॥

आरती २७

कैसे मैं आरति करौं तुम्हारी । महा मलिन साहब देह हमारी ॥ १ ॥ छूतहिसे उपजे संसारा । मैं छुनिआ गुनगांव तुम्हारा ॥ २ ॥ झरना झेर दशोदिशि द्वारा । कैसे मैं गुन आऊं साहब निकट तुम्हारा ॥ ३ ॥ जो प्रभु देह अग्रकी देही । तव हम पायब साहेब नाम स्नेही ॥४॥ मलियागिरिपर बसे भुअङ्गा । विष अमृत रहे एकै संगा ॥ ५ ॥ तिनुका तोड दियो प्रवाना । तब पाये साहेब पद निर्वाना ॥६॥ धनि धर्मदासे कबीर बल गाजे । गुरु प्रताप आरती साजे ॥ ७ ॥

आरती २८

आरती सतगुरु करौं तुम्हारी । कलह कल्पना हरहु हमारी ॥१॥ पहिले पुरुष पीछे भौ नारी। तेहि पीछे तीहुँलोक सवारी ॥ २ ॥ जो नारी सों अंग छुवावे । सो चौरासीमें भर्मावे,॥३॥ जो नारी सों न्यारा रहे । ज्ञान ध्यान योग सब दहे ॥४॥ साहेब कबीर कहे समुझाई । आपन अपनि निवेरहु भाई ॥ ५ ॥

आरती २९

सिरपर राखिय सोई परम गुरुदेवता। सुमिरनभजन आरती पूजा सन्मुख करले सेवा ॥१॥ भव नदिया विन नावरी, गुरु अधर उतारे। पार विनसे भी उपर ले राखै, घटहीमें निज सार ॥ २ ॥ मानसरोवर मंजन करिले, त्रिबेनीके घाट । अनहद धुनि सुनि

पांचों मोहे, खुलिगै ज्ञान कपाट ॥३॥ अलपा जाप जपैं बिनु जिभ्या, मूल मंत्र और राधि । स्थिर ध्यान दृढ आसन, लगे सहज समाधि ॥४॥ चांद सूर निसि वासर नहीं, नहिं तहां विद्यावेद ॥ साहेब कबीर मिले सुखसागर, विरला पावे भेद ॥ ५ ॥

आरती ३०

आरति कीजै आतम पूजा । प्राण पुरुष सो अवर न दूजा ॥१॥ ज्ञान प्रकाश दीप उजियारा । घट घट देखो प्रान पियारा ॥२॥ भावभक्ति कर अवर न भेवा । दया स्वरूपी करिले सेवा ॥३॥ सत संगत मिलि शब्द विराजे । धोका द्वंद भर्म सब भाजे ॥४॥ काया नगरी थिर होय भाई । आनन्द रूप सरल सुखदाई ॥ ५ ॥ शून्य ध्यान सबके मनमाना । तुम बैठो आत्मस्थाना ॥ ६ ॥ शब्द सुरति ले हृदय

वसाओ । कपट क्रोधको दूर वहाओ ॥७॥ कहहि कबीर जिन रहनि सम्हारी । सद आनंद रहते नर नारी ॥ ८ ॥

आरती ३१

सत स्वरूपकी आरति कीजै। साहव चाहि चरण चितदीजै ॥ १ ॥ जिन्हों चिन्हों मन चित लाई । विन चिन्हे कह जाओ भाई ॥२॥ जिन्ह चिन्ह तिन निर्मल अङ्गा । विना चिन्हें ते भये पतंगा ॥ ३ ॥ जव लग साहेब सो नहि भेटा । तवलग भावभक्ति सब झूठा ॥ ४ ॥ शून्य सेज आरति करई । विन कन्त क्या पूरी परई ॥ ५ ॥ भूषण पहिरौ रूपकी रासी। फूलन सेज महलमें प्यासी ॥ ६ ॥ आरती किये कन्तको जागे। पति विनु प्रेम कहौ केहि लागे ॥ ७ ॥ केतिक पंडित मुनि जनयोगी । केतिक नागे भक्त वियोगी ॥८॥ झूने झूने बहुत्त जमाती । विन

दुलहेकी कवन बराती ॥ ९ ॥ खोजो गगन शून्य ब्रह्माण्डा । सात द्वीप पृथ्वी नव खंडा ॥१०॥ गुह माया तजि भये दिवाना । आप अपनपौ मर्म न जाना ॥११॥ जिनके दूख नाशिरा नाहीं । आपा मध्ये आपहि आहीं ॥१२॥ चेत चेत संशय कर दूरी । घटही माही सजीवन मूरी ॥१३॥ सांचे सत गुरुकी बलिहारी । जिन यह कुंजि कुफल उघारी ॥१४॥ नख सिखते पूरण भरपूरी । ते साहबको कहिये दूरी ॥१५॥ निरखि निरखि अमृतरस पीजै । तन मन शीश सब अर्पण कीजै ॥१६॥ दिलदरियामें हिरा-मणी । काया कबीर बोलता धनी ॥ १७ ॥ लौकि बाती पवनसे वारी । दीपक ज्ञान शब्द उजियारी ॥ १८ ॥ कहहि कबीर यह ख्याल हमारी । विनु समझन हम सबते न्यारी ॥ १९ ॥

आरती ३२

आरति कीजै अन्न ब्रह्मकी । सकल कला सुख प्रान पतिकी ॥ १ ॥ धनि धनि अन्न धनि धनि पानी । अन्नकी भक्ति नारायण ठानो ॥ २ ॥ अन्न भयो गिरिधरिही ध्यान । अन्नमें वसे सबहीके प्राण ॥३॥ अन्न अहेरी पुरवै जाला। अन्नहि जियावे अन्नहि काला ॥४॥ अन्नहि माया अन्नहि गावे । अन्न विना सुख बात न आवे ॥ ५ ॥ अन्नकी भक्ति ले कीजैं कामा । कहत कबीर तब रीझे आत्मारामा ॥ ६ ॥

आरती ३३

आरति अन्न देव तुम्हारी । जाते काया पले हमारी ॥१॥ जलकी उत्पत्ति यह संसारी । भोजन करे सकल नर नारी ॥२॥ ब्रह्मा विष्णु और महादेवा । यह सब करे अन्नकी सेवा ॥३॥ राजा

प्रजा और मठधारी। ये सब आसा जिये तुम्हारी ॥४॥ पीर औलिया अजमन धारी। सुर नर मुनि सब अन्न अहारी ॥५॥ अन्न बनावे अन्न भुलावे। अन्न बिना मुख बात न आवे ॥ ६ ॥ अन्न अहारी पूर्व जियाला। अन्न जिआवे अन्नहि काला ॥ ७ ॥ जहां जहां लगी अन्नकी ढेरी। सुर नर मुनि सब बैठे घेरी ॥८॥ दयाकी दीप भावकी बाती। सब अन्नकी आरति साजी ॥ ९ ॥ अन्न आरति आतम पूजा। कहहिं कबीर याते देव ते न दूजा ॥१०॥

अन्न नाम नित मूल है, सोई हमारा कीन्ह ॥
एक अन्नको बिछुरे, कोई काहु नहिं चीन्ह ॥११॥

आरती रत्नाकर समाप्त

एकादश विश्राम अन्तर्गत–

विनय रत्नावली

दोहा

सत्य कबीर कृपायतन, तन धरि जियके काज । मोहि सम वायस मलिन भव, तन पद नलिन जहाज ॥ ९ ॥ भक्ति गरीबी दीजिये, नाथ कीजिये नेह । और दौर मन चौर भय, हौस रही यक एह ॥२॥ तुम बिन जीव बिलकत फिरे, खिलकत भई बिहाल। चिलकत प्रभु जग यम भजे, ढिलकत बन्धन माल ३

सवैया

जगमें बहुसूर सती जपिया ततिया सो पिया पद पावत नीके । हमतो सबही विधि हीन महा, शुभ धर्म कहा गुण ज्ञान न फीके ॥ नहीं उपाय सहाय

करोयक, आश किये करुणामय जीके। कछु जोर नहीं दृग कोर लखो दलिहौ दुबिधा चलिहौं गुरुलोके॥१॥

मोहिसों नहिं हीन मलीन कहूं, गुरु धर्म न जो शुभ कर्महि जानी। दम संयम नेम न क्षम किया, भव भोग प्रिया नहिं योग निशानी॥ पति राखि लियो पति राखि लियो, जगमें मम लाज इलाज लहानी। अब किंकर काल दयाल मिले, निज किंकरको महि किंकर मानी॥ २॥

कोई मांगत मुक्ति है युक्ति कोई कोई चाहत हैं युगही युग जीजै। कोई देवसे स्वर्गकी ठेव धरे, उधरा धन धान्य घरा धरि लीजै॥ तब दासन आस वही सबही, पदही सदही लदही रति कीजै। जेहिं चाह न अन्य है धन्य वही, गुरु भक्ति अनन्य दया कर दीजै॥ ३॥

सुख साज धनो गज बाजि घनो,सब शोचसमान विना जिवकेरो । धन द्रव्य ले नर्कमें गर्क करे कुल रूप सुजातिकुटुम्ब बडेरो। वर विद्या जहां लगि चातुरता, ज्योंहि ज्योंजावमें होय धनेरो । तेवहिं त्यों भक्तिसे दूर करे, मद पूर कहे विषयोंवन घेरो॥४॥

सुख स्वर्ग लहो, अपवर्ग लहो ऋधि सिद्धि समृद्धि जिते जग मांहीं । जप योग रु युक्ति और उक्ति सभी पद इन्द्र उपेन्द्र जहां लगि आही ॥ जेहि जीव मदेवर वेद वदे, अभिमान लहैं भ्रमकी सब छांही । धन्य धन्य सोई पद लागु जो, भक्ति समान कहूं कछु नाहीं ॥ ५ ॥

कर लेकर काह मिले प्रभुसे,कर भेट कहा करदाम न कोई॥जहँ झार तपोधनके धनिका, कबीर तुम्हारा रहे दृग कोई ॥ जिमि हंसनमें बगुला अकुला,

देखर. मैं अपनो मुख जोई। विनती हमारी बुद्धि यादपरी, करुणा कर नाथ कबूलहु सोई ॥ ६ ॥

नहिं सायर हीं कुलकायर हों, परि पायरहो नित नाथ भरोसे। कहुं मोसम तुच्छ न और कोई, गुन ज्ञान न छूछ बने प्रभु पोसे ॥ करजोरि विनय प्रभु मोर सुनी जान राखहु पायन पंकज गोसे। कह पूत कपूत प्रसूत प्रसू, जठरा जठरा भरको तजि तोसे ॥३॥

यमदूत कपूत बडे रसिहा, खिसिहा बसिके कसि लीनेहु दण्डी। घिघियात दया कसिबात जिन्हें, अधिको वधिको विधि कूटत मुण्डी। बल वाह न साहस आतुरता, सब चातुरता तहवां भइ भुंडी। कोइ यार नहीं हथियार नहीं, यक देह रही विनु शस्त्रके लुण्डी ॥ ८ ॥

नहिं लेश दया हृदया तनिको, जब छेदत हैं यम

बांधि गटैया । इतनी उत हेरके टेरसबै, कहु मो नहीं चहुँ ओर उपैया ॥ परिवार सगे न गोहार लगे, तजि भौन भगे दुख कौन घटैया । सुनि आवत बैन पुकारत आय, सहायक राम है बंदि कटैया ॥९॥

भवपाट महा अतिपीन जहां, किमि दीन पपीलहिं पार करीजे । बल भंग मतंग भयो जिह्मिं, गुरु संगविना तेहिमाह मरीजे । कह मुक्ति कोई जग युक्ति लोई नहिं नाथ जो साथ तो पाथमें छीजे । भवश्वेत अभय पद देत तुही, प्रभु आस यही कर दास गहीजे ॥ १० ॥

भव सिंधु अगाह न थाह कहूं, गम नावतरी एक नाथ निहोरे । झरझोर झकोर न ठौर कहूं, भलभायचरी यक नाथ निहोरे ॥ मद मोह तरङ्ग, कुरङ्ग रहे, बडभाग भरी यकनाथ निहोरे । महि खेस चले मभ केस महे, कर धाय धरी यक नाम निहोरे ॥११॥

जेहि सिन्धुमें, पौन प्रचंडचरे पलमें शत खंड करे तृणतूरी। खगराजहुके बसको दलजो, हमरो बन बाहन पाहन पूरी। हम धूल थराजहँ सूल नरा, दुर्गम्य दुकूल परा अति दूरि। शरणागतहूँ शरणागतहूं, शरणागत नाथ हरो भय भूरी ॥ १२ ॥

समरत्थने हत्थ गहीर गही, जल रत्थ मेरी गुरु सत्यतरी है। समवाय बहाय सहाय करी, बालपापहरी थल धाय धरी है। गम षात टुटी गुणसो न जुटी, जेहि कोट दरार करार करी है। बिनु सत्य कबीरको पीर हरे भवभौर भयावन भीर परी है॥ १३॥

कलिकालबिहाल कियो जिवको, पिवको पदसोकहि भांति सो पावे। जहां जाप नहीं जहं ताप नहीं, जिव पापमही दिन रैन गमावे॥ अति बुद्धि मलीन जो लीन विषय, नहीं शुद्धि सतोगण एकहु आवे। यम फन्द परे

नहिं द्वन्द्व टरै उबरे जब सत्य कबीर बचावे ॥ १४ ॥

अमरावति नम्र बसो जेहि में, तेहीदर चार सुधार बनाये । वैराग्य विवेकहु ज्ञान गनाय, विचार सो चार गुरु बनि आवे । तेहि मध्य सिंहासन आसन तब. जगे ज्योति सोहंगम चौर ढुरापे । सोई द्वार ते जाय सो पाय तुम्हें दुनिया बुधिसे पुनि यों कहि गाये ॥ १५ ॥

पद पादुक और पद त्रान तेरो, पद धूल पदामृत चार विचारे । पद पादुक ते सुक धर्म सबै पदकी पनही धनही जिवचारे ॥ पद धूल हरे तिहुँ शूलनको चरणामृत कर्महि धोय पवारे । गरुचारहुजक्त उबार लियो, यम जीतन नाथ प्रताप तुम्हारे ॥ १६ ॥

गुण सिंधु यथा तुम आगर हौं, तीहि अवगुण सागर मो सम नाहीं । दोउ मेल मिले यम जेल ढिले, अस खेड खिले करुणा मय वाही ॥ कण तुच्छ

मिला मण अम्बर जो तब वेणु हिरम्बर वेणु कहा ही। विषयादि समीर सरीरन छै, भव तीर लगे नहिं आवहिं जाहीं ॥ १७ ॥

दिल देवल देव दया दरिया, थरिया भरि सन्तत नैव निहारी। दुख दारिद कंपत चंपत भो, सुख संपति संपति सो भरमारी। सुखसाज सखट्ट अघट्ट दई, शिर आवन हट्टसो वापनसारी॥ बयपारकरी वयपारकरि, बयपारन संगमें येबयपारी॥ १८ ॥

हिरम्भर चीर कबीर कवी. कविता सविता गुण गावत पायो ॥ टुटै न फुटै न कटै कबहूँ. रुचि राउरकी पहिरा उर आयो ॥ न मुनिन्द्रभरे न सो इन्द्रधरे, भगवान कृपा भगवान भगायो। सतनाम निकामररो सुधरो,सुधरोहग दिव्य दयाल बतायो १९

गज ज्ञान अपानकी पीठ चढे, दल दैत्य विकार

विषय विहराना। गहि वज्र विवेककी टेक हिये, निज नाम निशानको मारुव्याना ॥ सहसक्ष प्रतक्ष स्वरूप सखे तम भक्ष कृपा भ्रम कूप विहाना ॥ जन राउर गद्यपि बाउर है, पद पंकज पास कियो निज थाना ॥ २० ॥ इति ॥

अर्जनामा-प्रारम्भः

(१)

(अर्जनामा धर्मदासजीका)

करतहौं पुकार मेरे तुमही हौ अधार, सुनिये वेगही गोहार, बार काहेको लाये हौ, बडे बडे संकटमें सन्तन सहाय कीन्हो, राखि प्रन जनको जिज पैजहू बढाये हौ ॥ जनको दुःख दुखित देखि, आप सन्तनको काला पेखि, दुख दहनक्षेप सुख सागर देन आये हौ। सेतु बन्ध बांधियोंको रामचन्द्र व्याकुल भये, लिखि सत्य

रेखा जल पाहन उपराये हौ । द्वापर पगधारे निस्तारे नृपवधू, व्यालविषम बिडारे यम फंदते छुडाये हौ ॥ पांडुके कुमार विकल यज्ञके प्रकार, पडे संशयकी धार हारि शीश भूम लाये हौ ॥ वाको यज्ञ सारयो बिडारयो दुख दारुणते, सकल वेष भूपन मिली जय जय उचराये हौ ॥ कलाऊ तन धारे सब वेषनके काज सारे, प्रथमें पुरुषोत्तम पुरि देवल थपाये हौ ॥ सागर हटाय श्रम भोजन मिटाये, परगटे अन्तररूप चकित द्विज कराये हौ । बलख सिधाये छुडाये बहु वेषन, दृढाइ सुलतान भक्तिमारग लखाये हौ ॥ सिन्धु बोहित बचाये दाह पांडवको बुझाये, आये नगर काशी पुरवासी गुणगाये हौ ॥ चर्चा भई भारे काजी पंडित पचिहारे, इस्मकूँ फेर शाह सिकन्दर समुझाये हौ ॥ शेखतकी बार बार कसनी लेके रह्यो हार कुदरत कमाल सुत मृतक जिवाये

हौ ॥ गोरखपुर मगहर बोधे दोऊ दीन परबोधे, बांधो गढ वघेला रानखाना सचुपाये हौ । कौतुक दिखाये नदी आमी बहाये तहां, ध्याये नरनारी मन वांछित फल पाये हौ। जीवनके धनी हौ गुनी प्रभुताके लायक, जैसी जाकी आशा वैसेही ताको पुराये हौ। वटक बीज बोवायेखोजि हटाये, संशय मिटावे जनज्ञानी समुझाये हौ॥होरि तको अपनी ओर कृपा करो चक्षु-कोर, निरखत हौं तुम्हारी ओर काहूँ न ध्याये हौ। हौं सपूत और कपूत होउ लाज पिता, और जननीको अपनो प्रणपक्ष जानि नाहीं विल लगाये हौ । जाको जन विकल कल कैसो ता साहबको, दासकी हँसाई ठकुराई हँसी जायहौ बंदीछोर नाम तेरो वेग बंदी छोर मेरो, हौ तौ अधीन तेरो चेरो कहा अनेरो ठह-रामे हौ ॥ तुम्हरो बल जानन ठान जीवको दीन्हों

पान, सुनि लीजे विनतीयान धर्मनि गोहराये हो ॥

तब प्रगटे सत्यगुरु कबीर, धर्मनि चित्त धारी धीर । तन पुलकित चक्षुनीर धाय पाय लगे हो । निरखि वदन विकल बोले पग प्रकाश मन मकुर डोले हिय उमंग मन मुदित खोलेहो ॥ पग पैकर गयो छूट गुफाद्वार निपट गयो टूट भयो यमराज घर लूट लखि दुर्जन सब जागे हो ॥ द्वारपाल कीन्हों शोर सबै धाये चहुँ ओर, करत कलाप हायरोर पुत्र दुखित शाह अभागे हो । दंपति कहें करजोरि पुत्र इन मारा मोर, हमहू कस करब धोर पुत्र बिना अनुरागे हो ॥ तब बोले सत्तनाम बैन शाह हृदय राखुचैन तेरोसुन मिले ऐन तजु कुबुद्धि कागे हो। साजि आरति अनुमान सुतको दीनो पान, तब बालक गोहाराम लोक शोभा अनुरागेहो । धर्मन

चित भये आनन्द, मिटे सकल कालपड छोरेउ सत्त नाम बन्दि चूक बखशाये मांगेहो । धर्मनि दासानुदास सत्तनाम गह्यो विश्वास सत्यकबीर आय प्रेम उमंग पागेहो । इति अर्जनामा ॥ १ ॥

अर्जनामा

(२)

(गरीबदासजीका)

सतगुरु मिहरवान कीजे सहाय। जल थल सकल संगम मौले मलाय॥जल बुन्दते साज कीन्हा निशान॥ जठराग्नि बीच राखे अमान ॥ १ ॥ जठराग्नि बीच राखे सही । अमृत अभी खीर प्याया तुही ॥ नापै दसे पैद कीन्हा पिण्ड । जामै भवर अर्श कुर्सी है अण्ड ॥ २ ॥ स्वाहा सहज धुन शगीकत सरार । वह कौल बिसरा जो कीन्हे करार ॥ कुर्बान

कुर्बान जाह॥ भयकी दरिया बीच पकडी है बांह॥ निश्चल निराकार निर्गुण अनूप। स्थिर अनाहद सलाहद सरूप॥ रहना अर्शपे जो पडदे अदेख। है बेचगून बेचसून अलेख॥४॥खलिक खलक बीच हालिर हजूर। वाजे सुहंग विहंगम जो तूर॥ मोले मुरारी अटारी जलाल। ता बिच साहब सुबहां विशाल॥५॥ खानेच खादार बांदीका जाम। टका लकरूँ मेरा लीजो सलाम॥मौला साहब मेरो मेटोन शंक। मोंसे पतित तैं उधारे असंख्य॥६॥ साहिबा चिदानन्द सतगुरु अलेख। मोंसे पतित है उधार असेख॥ अगह अगम दीप ऊँचा सुमेराकैसे चढौ जु फिरंगी है फेर॥७॥ तुही है तुही है तुही है सुभानाना पैदसे पैदकीन्हा जहान॥तुहीहै तुहीहै तुहीहै अजोख। ना पैदसे पैद कीन्हा है लोक॥८॥तुहीहै

तुही है तुही है हकीम । नापैदसे पैद कीन्हा सुकीम ॥ दुनिया दिवानी विगानी विकार । समझे न बूझे अनारी गंवार ॥ ९ ॥ साहब दयावन्त अविगत अपार । सोऽहं सोऽहं गंवर गुंजार ॥ दुनिया विलो-मान हो तीन होज । कीजो वे प्यारो परमहंस खोज ॥१०॥ फना है फना है फना है लगार । माटी मिलैगा जो करता सिंगार ॥ हस्ती रु घोडे रु जोडा जहान । फनादीन दुनिया जमी आसमान ॥११॥ राजा न रैयत रहेगा न कोय । रहेगा चिदानंद उपजा न सोय । भाई भतीजे रु जोरु जमाल । देखैंगे लडके जो होगा हवाल ॥ १२ ॥ दादी फुफी बहिन रोवैंगी रूह । यम आनि पकडेगा जन दूबदूह ॥ मौसी रु मामा अलामा जहान ॥ शुकदेवको पूछो विरक्त परमान ॥ १३ ॥ हजार बार तोबा जोखैंचे हदीस । कहो कौन मेटेगा यमकी

कशीस। काफिर करद बांधि खातेवकरीद। यमकी तसव कैते होगी रसीद ॥ १४ ॥ मुरगी रु बकरी ढाढा रु ढोर। खूनी भखैं है शरअके जो चोर ॥ चाकर चरवाहा रु देखैं खवास। जब आन बतैगी यमकी त्रास ॥ १५ ॥ करियो वेयारो कुछ चक्षमेका सूल ॥ दरगाह न पहुँचे नवी ओ रसूल ॥ मुहम्मद नवीकूच पाया है राह। अर्शपन्थ बाका है अगमो अथाह ॥ १६ ॥ शरे की शरीकत तजे है न दीन। उलटा अपूटा परा है जमीन ॥ दोजख बिहिश्तका जो देखा है अन्त। या बीच यमराज तोडे है दन्त ॥ १७ ॥ दोजख बिहिस्तको जो देखा उनमान। या बिच यमराय काटे जुबान ॥ दोजख विहस्त हैं जो बांकी उजाड। या बिच यमराय तोडे है जाड ॥ १८ ॥ करियो वे यारो खजाना खरीद। संग ना चलें देखो दीद बरदीद ॥ संग ना

चलेगा सूई रु सुमेरु। काफर कुठन करते घरोहि घेरु
॥ १९॥ झूमू करम कूर काफिर करजान॥ औ हिर-
नकी चोरी सुईका जो दान ॥ मूजी मुजावर व
वापी प्रेत । सूमका ससुरा साईंसे न हेत ॥ २० ॥
सद्गुरु चिदानन्द अविगत अपार । पाजीखाने-
जाद तमर आधार ॥ सातोगुनका सामां जमैयत
जमाल । देखे तमाश सब कुदरत कमाल ॥२१॥
शीलके सरवरमें नहाना हमेश । प्रेम पदसा-
रसका दीजे उपदेश ॥ बुद्धिका दे बखतर और
पाखर प्रतीत । सोहं जपमाला भज अविगत अतीत
॥ २२ ॥ बुद्धिको बंदूक और दृढकी दे ढाल ।
चित्तकी चकमक भरदारू दर हाल ॥ पवनका
पलीता व गोला गुलणार । दोदलकी खिडकीसे
उतारूंगा पार ॥२३॥ ज्ञानकी गादी समाधी गल
तान। दयाकी दुलीचे पे धरमका निशान ॥ द्वादश

दल जीतनेको तत्त्वकी तलवार। अर्द्ध उर्द्ध तकीय
विच दुर्जनको मार ॥ २४ ॥ नामकी नवका कर
मनकूं सलाह। चित्तका चम्पु ले सुरतिसे चलाह ॥
अर्शमें आसन सिंहासन समोय। उदित भानु चन्द्र
संख कला जोय ॥ २५ ॥ उनका तो तिनक करले
गायत्री लाय। शून्य शिखर गढमें तुम जपो अजपा-
जप। असत्ररकान्हाना त्रिवेणीके तीर। सर्वज्ञी साहब
भजका यम कबीर ॥ २६ ॥ मानसरोवर दरिया जहां
चुगते हैं हंस। लगे गैबगोता जहां मेटे परमहंस ॥
अक्षय वृक्ष अर्श बीच फूला गुलजार ॥ अर्थ धर्मकाम
मोक्षपाय दीदार ॥२७॥ पात पात विष्णु बैठे शिव
विरंचि शेषा। सतगुरु कुर्वान जाऊँ ऐसे उपदेशा ॥
सतगुरु चिदानन्द माया न मोह। निर्गुण निरा-
लम्ब जाना है तोह ॥ २८ ॥ कासे कहूं भेव पर-

वरदिगार । जान्या हम जाना है अविमत अपार॥ अर्श बीज बैठा जो मारे गिलोल। देखो वे यारों कुछ नहीं तोल मोल॥२९॥ पिताम्बर पटमें है सूक्ष्मस्व-रूप । सुरति नाल चलता है छाया अनुरूप॥सतगुरु अबाजी निवासी लिलाट ।सुनो अर्जनामा पढनेके जो छोंट ॥३०॥ ब्रह्म तेज तालि हमाली हजूर ॥ अप-ग्रन्थ पाया सनाया जहूर॥ सतगुरु शरीकत हकीकत जुवाब । कहो कौन लेगा शरेमें हिसाब ॥ ३१ ॥ मोले मिहरबान मालिक मुरारि।हीरा हिरम्बरतुही वार पार ॥ सतगुरु दिगम्बर विश्वम्भर दयाल । पलमें निवाजे जो नजरे मिहाल॥३२॥अगम ज्ञानलासा खुलासा जो सैल ।पीपली न पहूँचे जो लादे है बैल।

कहता है गरीबदास छाना है नीरवीर कुर्बान। कुर्बान २ कायम कबीर ॥ ३३ ॥

इति अर्जनामा गरीबदासजीका

अर्जनामा

सतगुरु मिहरबान कीजे करम। गाफिलखुदीदूर दिलका भरम ॥१॥ बहुत रोज बीते मैं तेरीशरन। शाही गई अध सफेदी वरन ॥ २ ॥ मुझे तेहुत अंदेशा किया मैं जोफेल। बदी बहुत कीता जो नेकी निसेल ॥ ३ ॥ मैं क्या करूँ सँगे बुरे सोहबती। किया चाहते वे मुझको ये दुरमती ॥ ४ ॥ अजिज मैं तनय दुशमन जबर। अर्जी मैं करूँ मेरी लीजै खबर ॥ ५ ॥ सतोगुणकी चौंकी व अपनी भगति। इतनी नाथ कीजे सो मेरी मदत ॥६॥ काया कोट

माहीं मैं निशिदिन लहूं ।दुशमनकी लशकरसे नाही डरूँ ॥ ७ ॥ नवे मोरचा खून कायम करूँ। देशमें जमैयतसे लगाकर रहूं ॥८॥ तुम्हारी बत जुहासे दुशमन डरे। हटा अपना माने न मुशकिल करे ॥९॥ निर्भय हरष होय संशय मिटे।सबे रोज दिल बीच रटना रटे ॥१०॥ अन्तकरन प्रेम नैना पगे। जगत सब स्वाद फीका लगे ॥११॥ तुम्हारी बिरह अग्निमें निशिदिन जरूँ। चौथी अवस्थाकी हासिल करूँ॥१२॥ मेरी अरज होवे दरगह कबूल। दिलकी मुरदा दाह कीजे रसूल ॥१३॥ सदगार सकलसन्त रोशन जभीर।सेवक तलवदार दाया कबीर॥१४॥

कवित्त

पवन पतित जिवनके हित प्रभु, भूहि गुरु पुरुष कहलायो घूँ और है।कहत कबीर धर्म धरत न धोर

करे, अचल शरीर न लगे हिम जोर है।।पशु पंछी तारत है निगम पुकारत है, आरतको देखिके निहार रिगको रहै।पीरो पय वेद वाणी हूँ बिरह बन्दीछोर है।।११॥

तजन न वानी सुर मुनिन बखानो प्रभु, शरण में आनी जो करग निहोर है ।तीन लोक ढूंय जाये दूर कहूं न पाये,लग सो चरण दुख हरण जो शोर है॥ नहीं शुभ करनी है बहु दुखभरनी है, उस गुरु शरनी है कलिकाल घोर।अधम उधारनको जगत सुधारनको भक्ति मुक्ति धारन कबीर बन्दीछोर है ॥२॥

बूढे बड ज्ञानी सिद्धिसाधक जो ध्यानी बीनुनाम सहिदानी जिन्हें आशा न तेर है।बल बीज चूसत है सिद्ध साधु दसत है, निशिदिन मूसत है अनचिन्ह चोर हैं।।जीवको है ठौरनहीं सुरमुनि दौंर नहीं,पर, मानंदपोर नहीं पावन दौड हैं । बन्दीछोर बंदीछोर

एक भजु, साहब कबीर टेक सोई बन्दींछोर है ॥३॥

विनय अष्टपदी

प्रभुजी तुम बिन कौन छुडावे ।

महा कठिन यमजाल फांस है तासों कौन बचावे ॥ १ ॥ नाना फांस फँसाय जीवको आपन रूप छिपावे । पंच कोश होय प्रगट ग्रासै तेहिको कौन लखावे ॥ २ ॥ आपहि एक अनेक कहाई त्रयविधि रूप बनावे । सैनपति होय दुष्ट नष्ट सो परलय अन्त दिखावे ॥ ३ ॥ विषय विकार जगत अरुझावे जहां तहां मटकावे । योग ध्यान विगुर्चन भारी ताहि सुरति अटकावे ॥ ४ ॥ आशा नाम नौक बैठावे धोका धीर बहावे । तत्त्वमसि कहि ताहि डुबावे अन्त कोई नहिं पावे ॥ ५ ॥ चारि मुक्ति योनि चौरासी देहि मिलि हेत बढावे। नेम धर्म पूजा और

संगम बहुविधि लागलगावे ॥ ६ ॥ भेष अलेख करे को पावे जीवहिं चैन न आवे । चारवेद षट् अष्ट दशौले शून्यहि शून्य समावे ॥७॥ काल चक्र वशि उत्पति परलय जीव दुसह दुख पावे । साहब दया कीन्ह परखाये राम सहस गुण गावे ॥ ८ ॥

साखी

कपट चतुरता कालवशि, सन्मुख प्रभुके ना होय ।
भ्रमहारी साहब शरण. निश्चय भया विलोय ॥

विनयछन्द

तुम जाहु होहु दयाल सकलो जाल ताकर नाशि हो । तुम बिना नहिं मिटि हैं काल सुकृपाल परख परकाशि हों ॥ का करौं मैं स्तुति आज सद्गुरु कियो बहु उपकार हो । तुम वन्दीछोर कबीर साहब मेटचो भवभार हो ॥ १ ॥

सब करों निछावर तोहि परम गुरु तनमय धन खेल हो। मम सुरति राखो चरणमें यह नाशमान है देह हो॥ परखपदको पाय साहब मिटि गयोसब भास हो। जगत ब्रह्म अनेक स्वामी रही न काहुकि आश हो॥ १॥

अर्जीनामा

(पूर्णसाहबकृत)

हूं सेवक अजान मोपे दया दृष्टि निहारियो। बाल जानकृपाल मोको सुरतिसे नहिं टारियो॥१॥ निपट बुद्धि मलीन जगत आधीन मैं ताते भयो। होय तुम पद लीन सोई विप्रीति मन काहे नारह्यो॥ २॥ वे जक्त जाल कराल मोह विशाल मोहि अछो लग्यो। कनक कामिनी नाल देखि वैराग सब चित्तते भग्यो॥ ३॥ नहीं काम हैं धन धाम सब

बेकाम स्वप्नासो दीखे, परचित छोड़त नाहिं आशाको भयो बहु पढिलिखे ॥ ४ ॥ अब करत दास पुकार बारमवार गुरु सुन लीजियो । सकल राग छुडाईदृढ वैराग मोको दीजियो ॥५॥ तुव नाप पतित आधार मोते ना पारि कोई दीनहो । अन बनोहै युगचार तुम आधार ताते कीनहो ॥ ६ ॥ बानेकी लाज तुम्हारा परख विहार सुख साहेब धनी । मैं पतिहूँ लाचार दास तुम्हारा गुरु साहेब ननी ॥ ७ ॥ दास पूरन कीन्ह विनती सुनहु दीन उधारन । पड्यो जग जंजाल माही माहे साहेब ना नर ॥ ८ ॥

अष्टक

सुख साहेब सुखरूप सुखधन, दुष्ट दुख निवारनं। परखके प्रकाश करता दीन जीवन तारनं ॥१॥ ब्रह्म जक्तको शोकसकलो, थोक भ्रम बिढारनं। महा-

मोह कराल नाशक, सकल भौ भय टारनं ॥ २ ॥ वेद शास्त्र पुराण एक अनेक जालहि खंडनं । झाई संधी ओ काल नाशक, दया धीरज मंडनं ॥ ३ ॥ एक जीवको अनुमान सब, सोफान जग तामें फँस्यो। सोगांस फांस छुडाय, निजपद पाये पारख दृढ ठस्यो ॥ ४ ॥ नहीं कल्पना अनुमानसो परमान अबको करि सके । प्रतक्ष पारख छोडि वेद नाहक भारी बके ॥ ५ ॥ सोइ होहु आप कृपाल तब सब जाल जीवन छूटि है । निज दास होय हुलास तबही आस सकला टूटि है ॥ ६ ॥ मैं चरण सेवक दीन तुव, परदीन दया कीनहो । मैं दीन छीन मलीन प्रभु, बांह ग्रहीकी लीन हो ॥ ७ ॥ बांह ग्रहेकी लाज पूरन, शरण तुमको आज है । नहीं अवर कछु काज गुरुपद, सफल सुखको साज है ॥ ८ ॥

अर्जनामा

ज्ञान स्वरूप अनूपम पूरन । पूररह्यो जडचेतन, माहीं । तीरथ वर्त रु कर्म करे बहु अंध भयो शठ सूझत नाहीं ॥ १ ॥ काल महाबलवंत बड़ो रिपु, डारत ले भवसागर मांहीं । ताहिते सुधीभयो मोहीको अब आइ चरणों मांही ॥२॥ कहा कछु केवल नाम कबीरही । जीव रटे सब चातिक सोही ॥ सर्वमें व्यापक आपकबीरही ॥ स्थावर जंगममें पुनि वोही ॥ ३ ॥ रंग रटना सब लाग रही घट, ताहि बिना नहिं औरही भासे ॥ नित वहे हमारे उर मांही । सुतारक बुद्धि प्रकासे ॥ ४ ॥ जौन प्रकार कटे रजनी तम, सोई उपाय कहो निरधारा ॥ काम रु क्रोध रु लोभ भ्रमावत, ताहिसे दास जो कीन्ह पुकारा ॥ ५ ॥ आप विना नहीं कोइ हमारे । जो पुत्र कलत्र पितु परिवारा ॥

अब मोही तुही सहाय करो प्रभु, बूडतहूँ भवसागर धारा ॥ ६ ॥ माताकूं बालक जो दुख देतही । सो जननी नहीं सोच विचारा ॥ खैंचत केस करे नख घात जो । तोहूँ न छोडइ गोदमें धारा ॥ ७ ॥ त्यों जननी गुरुदेव कबीरहि, शिष्य समान जो बालक होई। डूबत बांह गहो गुरुदेवजु । आपदयाल दयानिधि सोई ॥८॥ आप कृपा विन भाग जगे नहिं । आप कृपा-विन पातक लागे । आपकृपा विन शुद्ध हिरदे नहीं। आप कृपाविन मोक्ष न आगे ॥९॥ आप कृपाविन डूब मरे भव । जीवे अनेक पडे जम त्रासा । ऐसी कृपा जो करो हम ऊपर। पारखबुद्धि सदाजु प्रकाशा ॥ १० ॥ योग रु यज्ञ करे नाना विधि । कहाहुं कष्ट करे बहुतेरा । आंखहु मुन्दत कानहु रुंधत । मान चढाय गगनमें थेरा ॥११॥ नेती धोती धर्म

करे बहु । ध्यान करे पुनि काहु नहेरा । शुद्धि स्वरूपको ज्ञान विना शठ, मेटत नाहिं चौरासीको फेरा ॥१२॥ मैं अपराध कियो बहुत गुरु । सो अपराध कह्यो न जाई ॥ आप दयाल दयानिधि साहब । मम अपराध क्षमा करो सांई ॥ १३ ॥ अन्तर्यामी जु जानत हौ सब । कहा कहूँ मुख बारम्बारा ॥ भूल मिटाये परखाई दियो सब । संधिक झाई जु काल बसारा ॥१४॥ जादिन बन्ध छुडाई दियो सब। ता दिन नाम पड्यो बन्दी छोरा ॥ वैसेही दियो बंधन मोर छोडावहु । वारम्वार करूं जो निहारा ॥ ५ ॥ दासको संकट आयपरे तब । आयके ततक्षण लीन संभारा ॥ बीजकदास यही बर मांगत । नित्त हृदय मांहिं रहु ध्यान तुम्हारा ॥ १६ ॥

इन्द्रविजय

आपेही आप गोसाईं सुसाहब, होइ दयाल दया

करि हेरी । ऐसी कृपा जो करो हम ऊपर, जे विधि होइ तुम्हारेहि चेरो । औरहि व्रत मिटाइके साहब एकही व्रत तुम्हारेहि प्रेरो । शिष्य कहे गुरुदेव सुसाहब, यहि विधि ध्यान तुम्हारेहि मेरो ॥ १ ॥

भांति अनेक करे यह चित्तसो. कर्म विकर्म करे तेहि काजा । तीरथ व्रत करे बहुते विविधि ताहिके काज लगावत साजा ॥ जो गुरु यज्ञ करे क्रिया तप, करे पुनि ध्यान कहे महाराजा ॥ भारी भरोसे हिये गुरु आपसो, आप गुसाईं सुहो शिरताजा ॥ २ ॥

नानाहि भांति विचार करौं बहु एकहु चित्त ना आवत मेरो । जाल अनेकन हाल विहालसो; काल कराल करे घनघेरो ॥ जीवन मारि कियो पिसमानसो कोईके चित्त न आवत हेरो । मोकहँ तो एक आश तुम्हारिहि, भांति अनेक कहो बहुतेरो ॥ ३ ॥

जा दिनसे आप मोहि मिले प्रभु तादिनसे वहु दुखः निवारा। होय अधीन गह्यों शरणागत, भाजि गयो सब धर्म पसारा। आप पर्खाइ भास मिटाइके, जीव छुटाये कियो निस्तारा। शिष्य कहे गुरु देवसु साहेब, मोकहँ तौ एक आप अधारा ॥ ४ ॥

ऐसी कृपा जु करी हम ऊपर, होय अधीन गह्यो जब चर्णा! जन्म रु मर्ण रहे अब कौनको, ये कहि चित्त तुम्हारे शर्णा। सांझ इस संधिक काल सो ग्रासिक, मीटि गयी सब मनको भर्णा। शिष्य कहे गुरुदेव सुसाहिब, और उपाय नहीं मोहिं तर्णा ॥५॥ करुणानिधि आप बनाइ दियो, सकलो अंत विधै ककी आथी। मेरे हृदये दुखःसाल अनेकन्ह आप मिटाइ दियो सुख साथी ॥ मास मिटायके फांस छुटाइ, दियो प्रभु कानहितू अवनाथी ॥ ऐसो दयालको

छाडिकेरे छठ, तू बहुदेह भुले देह भाथी ॥६॥

जो प्रभु आप सहाय करो नहिं, तो यह जीव रहे भौ भीरा। अवगुन बापजी माफ करो अब मैं कछु शील विचारन धीरा ॥ बाल पुकार करे बहुते सर, हे सुख सिंधु करो मन थीरा। साहेब संत समाज मिले जब, आय लगूं गुरु ज्ञानके तीरा॥७॥

तुमही सब लायक जानत हो सद, वेदपुरा ॥ कुरान अनेका। बुद्धि हीन मलीन पुकारतहों अब, हे प्रभु राखहु वेषको टेका। यद्यपि आप बिसार हुवे तब लोक हँसे नरनारी तरेका। ताहिते शिष्यको भाव धरो अब, शिष्य भरोस करे गुरु देका ॥८॥

करसे सुतमाति ना छांडित है, शिर दुःख हजार परे मन जोखा। जोपै पूत कपूत सही जननी न विचार धरे उर धोखा ॥ कबीर गोसाईं मेरे शिरताज,

दूजा कहां जाय करो तनपोखा । विपति शरवान
ढरैं अतिसे तुब, दास लडे चढि ज्ञान झरोखा ॥९॥

कवित्त

बालक ज्यों बोले बात तोतर बनाय करी, मातु
पितु वाके सुख माने प्रेम सानिके । ज्यों पै सुत
भूल्यो आय जननी पुकारे धाय, मारे सुख वचन
कहत सहुं आनिके । रोदन करत पूत चलो जात
दूर धाय, झांझांही विलाप धारि लोटे बहु ठानके ।
हाथही अम्बर लेइ पोंछि कर उर देइ, पीर सब
छिन करी गोद लेबे जानके ॥ १ ॥

दोहा

तैसे गुरु तुम देव प्रभु, देहु सकल सुख साज ।
भवबन्धन जाते मिटे, सो चाहत मैं आज ॥ १ ॥

पारस शुद्ध विचार करी, ताहि मांहि सुख धाम ।
ताते हतहूँ आपसो, मोको राखहु ठाम ॥ २ ॥

सोरठा

खबर लीजिये मोर, पारख रूप किरपाल प्रभु ।
तुम तजी अन्त ना ठोर, अब तो आशा तुमार है ॥ १ ॥
तात मात मित्रादि, नहिं कोई मेरी जगतमें । तुमसुहि-
रदे वर आदि, भवनिधि तारो गाय हम, ॥ १ ॥ अव
गुण देखहु मोर, नहिं कल्याण जु कल्प सुधि । दया
दृष्टि कर तोर, अवगुण चित्त न विचारिये ॥ ३ ॥
साहब परम उदार सुखसागर सुखरूप धन । ताते
करत पुकार, जो गुरु होहु सहाय अब ॥ ४ ॥

कवित्त

दीनोंके दयाल आप कियो है निहाल मोहिं, करो
प्रतिपाल सुख सागर समान हो । नागर विराजमान

आगर कहत सब, जनके दयाल मोहि हियमें सोहात हो ॥ कहत अगम वेद पार नहिं पावतसो, मन भर मात मेरो आपसुखसार हो॥ शुद्ध, बुद्ध, ज्ञानभरी सन्तनके रूपमारी कहे सहदेव भव पारहुके पार हो॥

कवित्त

आपही पूरन गुरु साहेब कब्बीर हीसो, तिनको नम्र होय बंदनी हमारी है। सुखही सरूप रूप ज्ञानकी अनूप मूप परख प्रकाश जहां नसे अन्धकारी है ॥ दरशैही पापु टारी, झाई संधि काल जारी, निजपर आपदेही बडे उपकारी है। दीनको दयाल प्रभु सन्तनके उरगाल, कहे सहदेव गुरु ऐसे सुखधारी है ॥

छन्द त्रोटक दुइपादी

गुणवन्द निधानसर्वज्ञ प्रभुं ।त्रियताप निधारण

धीर्य विभुं ॥ कर्णधार उवारन जीवधनी । स्वयंपारख शोद्धच सुवाक्य मनी ॥ १ ॥

त्रिगुणं रहितं सतभाषण हे । नित परख प्रकाश सुसासनहे ॥ सुगिरामृतधार प्रवाह सरी । पुट श्रावण पानको प्यास हरी ॥ २ ॥

मुझ दासको देव तुही प्रभु हो । दीनानाथके नाथ रखो शर्णु हो ॥ ३३ ॥

छन्द भुजंगी

गुरुजी कृपालो वड़ो तूं दयालो । करो प्रतिपालो मिटों दुःखसालो ॥ करूँ वीनती मैं शिशुजानि तारो । डरो दुःखदेखी भवोंके अपारो ॥ १ ॥

परमसुजान महागुनखान । शीलके निधान सव सुखस्थान ॥ कोई ना कोई ना कोई हमारो । डरों दुःख देखी भवोंके अपारो ॥ २ ॥

परं विरागी क्षमा उरपागी । मैं तो हूँ अभागी तेरो पांव लागी ॥ हूँ अमारी अनारी मेरो दुःख टारो । डरों दुःख देखी भवोंके अपारो ॥ ३ ॥

गिराहे तुमारी हुरे शूल भारी । मया मोह ढारी देही सुख सारी ॥ अनाथा अनाथाहिये हे अधारो । डरों दुःख देखी भवोंके अपारो ॥ ४ ॥

मेरा तुहीं स्वामी तुहीं अन्तर्यामी । नहीं काम कामी प्रभूजी अकामी ॥ दयाला दयाला गुरुजी तुं सारों । डरों दुःख देखी भवोंके अपारो ॥ ५ ॥

मेरी बात मानी कहूं सो तुं जानो । तेरो ज्ञान मानो करे अन्ध दानो ॥ डारो अन्ध जारो उजारो उजारो । डरों दुःख देखी भवोंके अपारो ॥६॥

मेटो भ्रांतिझारी भुमां शोकफारी । ग्रही टेकयारी

करी प्रीति भारी ॥ चहूँ साथ तेरी मेरेकुं उवारो । डरों दुःख देखी भवोंके अपारो ॥७॥

अहो देव देव करूं तेरो सेव । अबे गुरुदेव देहु सुख भेव ॥ प्रकाशी प्रकाशी प्रभुजी पुकारों डरों दुःख देखी भवोंके अपारो ॥ ८ ॥

अथ विनयशब्दावलीप्रारम्भः

शब्द १–देखो अजि सुन्दर छबिनीकी । मंगल-दायक सब सुख लायक, निरखि सकल छबि लागत फीकी ॥टेक०॥ कृपा करत लखि दीन दयाकर भ्रांति मिटाव सकलो जीकी ॥ शरण गये सकलो दुःख मेटत सुख उपजावत देवतसीकी ॥ निज पद मांहि लेत बैठारी गांठ छुडावत मैं ममतीकी । गुरु समको उदार जग-माहीं पूरव कीन्ह परख अति नीकी ॥ १ ॥

शब्द २–शरण तुम्हारी आयों गुरु ॥टे०॥ त्रिगुण मायाके फन्दा परि युगन युगन जहंडायो ॥ चाह न योगध्यानकी अब मोहि, नाम जागीरी पायो ॥ १ ॥ लोक परलोक कछु नहिं, चाहों । सगुण निर्गुण नहिं भायो ॥ पूरण न ज्ञान विज्ञानको भयो जब पारख थिति पायो ॥ २ ॥

शब्द ३– हौं प्रभु दीन जनन प्रतिपालक ॥टे०॥ हौं मतिमन्द छन्द विषयनको महा अज्ञ इंद्रिनको चालक॥ औगुन हरन नाम प्रभु तेरो मैं औगुण अधम कुल घातक ॥ मैं अति पालक ॥ ना मोहिं योग भोग मद नाहीं, धन मद नाहि, बांह बल बालक पूरन दासके तुमहि अधारा; और सकल जगतमें यम जालक ॥ ३ ॥

शब्द ४–पतितपावनको सुन्दर ध्याना ॥ निरखत बदनप्रसन्नसुखदायकदेहआदिविसरसजगभाना।टे०॥

चक्रांकित शिर टोप विराजे, ताऊपर दस्तार वखाना॥ तिलक लिलाट शुभ अति नीको, तुलसीकी माल गले बिच नाना ॥ १ ॥ ज्ञानको अचला मुक्ति मेखला अष्ट सिद्धि सेली प्रमाना ॥ दया सिंहासन आई बैठे पूरणदास चरण लपटाना ॥ ४ ॥

शब्द ५—कहँलो कहौं गुरुपद प्रताप ॥ टे० ॥ जो मुख होय जीव दश लाखा ताऊन वरनिसकत प्रभुजाप ॥ अनेक जन्मको जीव बिहाला तिनको मिटचो महा भ्रम दाप ॥ संकटमें सन्तको तारा, साधुरूप डरे पुनि आप॥ बादशाहको कसनी दीन्हें सिंहरूप धरे पुनि आप ॥ मेषकी टेक राखि करुणा-मय, पूरण कहा कीन धौ पाप ॥ ५ ॥

शब्द ६—तेरा दिल चाहे उधर देख मैं देखूंका तुझे॥टे०॥तुमतो मुख्त्यार यार स्वतः सिद्धि आपी

आप, और कौन जाने एक आशरा तेरा है मुझे ॥ १ ॥ चाहे तो चन्द्रमा चकोरनको त्याग करे, पर चकोरनकी आग कहु चन्द्रविन कैसे बूझे ॥ साहे तो प्रकाश सकल नेत्रको त्याग करे पर बिनु प्रकाश नेत्रको जगमें कह कैसे सूझे । सतगुरु दयाल तेरो सेवकहूँ बाल, बाल-पूरणको तुमही एक और कोई नहि दूजे ॥ ६ ॥

शब्द ७—तेरी खुशी देख या न देख मैं देखूं तेरे चरणोंमें ॥ टेक ॥ मा बाप सकल टारे, जाति पांति सकल सब विसारे, सकल असछांडि गुरु! आनपडा शरणोंमें ॥ १ ॥ त्यागदई सकल लाज, काहूसे न राख्यो काज, घरमें घरले भिखारी हूं नाम सुना कर-नोंमें ॥ २ ॥ हरदम तेरा अभ्यास और कछु नाहीं भास, सबको है गयो निराश जो तनही भरनोंमें

॥ ३ ॥ नाम तेरा है दयाल पूरण फिरत विहाल, कबधौ करिहौ निहाल जाथे जब रनोंमें ॥ ४ ॥७ ॥

शब्द ८—मेरी प्रीतमें निवाहन हारे, लीजे खबरिया हंसपियारे ॥ टेक ॥ हौं अनाथ कहलावत तेरो, काह निकारि बाहिर मोहिं डारे ॥ १ ॥ जो दूरी आव मोहिकों सतगुरु तोहू न छोडो चरण तिहारे ॥ २ ॥ तुम्हारा नाम सुना प्रभु श्रवणन, किं प्रभु पतित अनेक उधारे ॥ ३ ॥ करहु दया निज टेक निबाहो जो तुम बिरद जगतमें धारे ॥ ४ ॥ जो कहो मोहि न जगतसे काजा, रहत अलिप्त सबनसों न्यारे ॥५॥ तो उपदेश कौन गहि बाहीं, अब हम जाव कौनके द्वारे ॥ ६ ॥ डारी देह जीवन हितलागी, दै परचे अनेक उबारे ॥७॥ तार भार दीन्ह तोहि पूरण, क्षमा करो अपराध हमारे ॥ ८ ॥

शब्द ९–धन सतगुरु तुमरी बलिहारी ॥ मैं मति-हीन छीन निज कर्मनि, दीन उधारन लीन उबारी ॥ टेक ॥ जिमि अंकुर तपे बिनु बारी, बाकी अम्बुज सिद्धि खरारी ॥ जानिके वेगहिं लीन जगाई, नहीं तो परते मर्म बिगारी । परस दयाल दयाके सागर, महाकष्ट दुख द्वन्द्व निबारी । सदा रहत दासनके संगा, पुरणपरखावत भर्म विकारी ॥ ९ ॥

शब्द १०–मम बोहित तुम खेवनहारा । जग समुद्र अज्ञान भर्यो जल, तृष्णा तरंग करत लल-कारा ॥ टेक ॥ काम क्रोध जल जन्तु अपर बल, बैठ्या मगर भरि हंकारा ॥१॥ मोहु मर्म विच आनि पराहूं, सूझिपरे नहीं बारो पारा ॥ २ ॥ बूढत नाव उबारो साहब, आदि अन्तके हौ कढिहारा ॥ ३ ॥ अशरण शरण विरद सम्भारो, पूरण आयो शरण तुम्हारो ॥ ४ ॥ १० ॥

शब्द ११—तुमरिहि दरसको बनाहू भिखारी मधुकर इव सब फिरत जगतमें कब धौं मिलोगे कमल सुखारी ॥ टेक ॥ कामक्रोध मद लोभ, दीन शरण तुव आयो, क्षमो अपराध जीवनके अपरबल, तृष्णा उठत लहरि अतिभारी ॥ मन रात्यौ नाना विषयनमें इंद्रिन वाट निपष मोरि पारी ॥ चित चञ्चलको समुझावे, खांड छांडि फांकत है छारी ॥ गुरु विचार, पर छिनहुं रहत नहिं जग अनित्यमां भई मतवारी ॥ ई नाना औंगुनभोंमें रहत है, मांगो दर्शन करि ढिठियारो ॥ जेहि मुनिजन योग करत हैं, त्यागि राज कुटुंब धन नारी ॥ पूरन एक भरोसो आवत हां प्रभुजीवनके हितकारो ॥ शरण आयेको नाहीं. बन्दीछोर बिरद अतिभारी ॥ ११ ॥

शब्द १२—मैं लाचारके तुम रखवारी ॥ टेक ॥

नहिं मोहि द्रव्य बाहुबल नाहीं, नहिं मोहि विद्याबल अधिकारी ॥ ना मैं सिद्ध न साधनको बल, ना मैं मन्त्री ना व्रतधारी ॥ तपसी हौं ना मैं दीन परम गुरु बाँह गहेकी लाज तुम्हारी ॥ बालकके दुलार निर दाहन; तुम विनु कौन पूरण सुखकारी ॥ १२ ॥

शब्द १३–परयो है कष्ट अति भारी मोको कष्ट अतिभारी ॥टेक॥ पाखंडिन पाछो बहु कीन्हों, ताते चोट लगत है कारी ॥ दीन जानि उपहास किया चाहे मैं लाचार गरीब बिचारी ॥ ना मैं सिद्धि न साधनको बल, मुझ कंगालके तुम रखवारी ॥ सगरी जाल तुम्हारी परमगुरु, पूरण तुव पद केर भिखारी ॥१३॥

शब्द १४–तुव चरणाम्बुज विशद प्रयागे ॥टेक॥ मम मन कठिन भवँर अतिदारुण, कारन कौन तन्त्र नहि लागे ॥ अब यह मांगों तोहिं दयानिधि कर

जोरे प्रेमन बहु पागे॥ जो रज पावन करत जगतको सोई आइ मस्तकपर लागे ॥ और न इच्छा होय कबहुं कछु, निशिदिन रहूँ चरणके आगे ॥ चरण प्रताप होस ज्ञान गम, बहुत जीव जाते होत सुभागे। महिमा तुव चरणकी साहब, विनु जाने सब जीव अभागे ॥ ताते कथा रहे जब लौ जग, तोलौं रहौं मैं चरणमें लागे ॥ आखिर चरण होय तैसेही, जैसे सीप बुन्दसों लागे ॥ साहब कबीर सुखरूप कृपा- धन, पूरणदास यही वर मांगे ॥ १४ ॥

शब्द १५–तुम्हरे नामको भरोसो भारी॥ हो प्रभु सेवकके सुखकारी ॥ टे० ॥ सिद्ध चौरासी बंदि परे सब, गुरु गुरु करिके कीन्ह पुकारी ॥ तुरतहिं जाइ छुडायो तिनको, साह सुलतान कीन्ह सुखकारी ॥ एक दिना काशीके माहीं, कुष्टी साह आयो अति-

भारी ॥ पद्मनाभसे परचे दीन्हा. नाम प्रतापसे कष्ट निवारी ॥ नाम लेत तोरे बोहित प्रभु, साह दामोदरकी भयहारी ॥ इन्दुमती जव टेर कियो हैं, नाम प्रताप उतर्यो विषकारी नाम तुम्हारा अटल प्रभु युग युग जीवन अधम अनेक उबारी ॥ यहीते निश्चय भयो पूरण अब, करि हौ सुखी सव दुःख बिडारी ॥१५॥

शब्द १६—कैसे रहौं जगमाहीं करुणायतन बिनु कैसे रहौं ॥ टे० ॥ जैसे जलबिनु मीन दुखित होय, तलफि तलफि मरि जाई ॥ कोई तो आये ब्रह्म बतावे सूर प्रभाकी झांई । कोई तो कहैं यह आतम स्वयम्, जल तरंगकी नाई ॥ कोई तो कहत दूजा है कर्त्ता कोई तो कहत कछु नाहीं ॥ कोई तो कहत यह देहही ब्रह्म है, मेरो मन न पतियाई ॥ कोई योग कोई ध्यान तावे, कोई कोई अलख लखाई ॥ कोई कहै ज्ञान,

विचार करो फिर, आप ब्रह्म जग मांई ॥ गुरु कबीर पारखकी राशि, सब सुखको सुखदाई ॥ ता पदसे कैसे होम न्यारा, आपहि पूर्ण कहाई ॥ १६ ॥

शब्द-१७ क्यों न जपी मन लाई, अक्षर दोउ नीको क्यों न जपो मनलाई ॥ टे० ॥ गुरु गुरु यह महामन्त्र है, और मन्त्र कछु नाहीं ॥ ब्रह्मजपत अरु विष्णु जपत हैं. और जपत शिवराई ॥ शास्त्र पुराण यह साख बखानत, गुरुते परे कोई नाहीं ॥ गुरुते सकल सिद्धि रिद्धि होत है, गुरते परम पद पाई ॥ गुरुते ज्ञान अरु गम्य होत हैं, गुरु बिनु कुछ न बसाई ॥ गुरु बिनु काहूको काज सरे नहिं बहुत भये जगमाहीं ॥ राम कृष्ण तिनहूँ गुरु कीन्हा मूरख चेतत नाहीं ॥ और मन्त्र सब कालस्वरूपी,

जीवन देत भुलाई । गुरु मंन्त्र यह पूरण कृपाधन जीवनके सुखदाई ॥ १७ ॥

शब्द–१८गुरुते और नहिं कोई मन देख विचारि ॥ टेक ॥ ज्ञानी मुनी सब ज्ञान बनावैं रीते गये सब कोई । गुरुके गुण सब गावहिं हो, गज अन्धकी नाईं ॥ टोइ टोइ पार नहिं पावै, मन माने मति भाई । कोई ब्रह्मा कोई विष्णु कहै गुरु, कोई कहै शिव जोई ॥ कोई कहै सतगुरु पार ब्रह्म है, या विधि गैल बिकोई ॥ कोई तो परमगुरु पुरुष बखाने ईश कहत कोई सोई ॥ कोइ कहै गुरु अन्तर्यामी, सबमें भर्यो है सोई ॥ कोइ कर्त्ता कोई माया है गुरु मति बुद्धि सब भई खोई ॥ पूरण त्रिपद लाघे नाहीं, कैसे गुरु पद होई ॥ १८ ॥

शब्द १९-बकबकसब बौराने, गुरु कोई न जाने ।

अन्धाधुन्ध मत प्रगट कियो है सब जीवनको ताने।
टे० ॥ घर घर तो सब गुरुआ बने हैं, कीन्हें बहुत
बन्धाने ॥ बन्दीछोर बिनु नहीं उवारा, ये सब जरा
मलताने ॥ बन्दी छुडावन जगमें निकसे, आइ परे
बन्दीखाने ॥ जो पूछो गुरु कासों कहिये, तौ कहत
आनकी आने ॥ कोई कहै गुरु सच्चिदानन्द, कोई
कहै पुरुष पुराने ॥ कोई मानुष कोई देव कहत हैं,
यहि विधि गर्भ भुलाने ॥ कोई शब्द कोई वेद कहते
हैं, कोई आतम अनुमाने ॥ विपदपरखाय बिनु पूरन,
कैसे परे पहिचाने ॥ १९ ॥

शब्द २०—आप न बूझ कहै और बुझावे, बिनु
पारख नर भटका खावे ॥ टे० ॥ ग्रन्थ पुराण बहुत
जग यांते, याते कहैं आवागमन नसावे। रहनी बिना
ब कहनी कांची, बिनु भोजन कभी भूख न जावे।

बेटी बेटा चेली चेला, मोह जाल कहँ जानि बढावे, घर छोडे मठकी करै आशा, पूरण व्याधि कहँ सीस चढावे ॥ २० ॥

शब्द २१—गुरुजी तेरो भजन भरोसो भारी ॥ टे० ॥ शरणागतकी बांह गहत हौ भवसे पार उतारो ॥ बडे २ अपराधी तारे, हिंदु तुरक नर नारी ॥ गुण औगुण एको नहिं जानत, हौं पशु मूरख अनारी ॥ जगसे भागि आये तुम शरण, पूरण दीन भिखारी ॥ २१ ॥

शब्द २२—मेरो मन बैरागी आज बसिवे साहब चरन ॥ टे० ॥ चरण प्रताप महा अघ नाशत, मेटत जनम मरण ॥ दुखदारिद्र विनाशक गुरुपद, होय रहो अशरन शरन ॥ परखापरकाशी सम सुखराशी, जीवन मुक्ति करन । सबहिनके सुखदाई पूरन सहाइ भवभय रोग हरन ॥ २२ ॥

शब्द २३–होय रहु साहब शरण, मन छांडि-जगतकी आस ॥ टे० ॥ जग आशा औ स्वर्गकी वासा, यही कालकी फांस ॥ नर नारी औ माल खजाना छाडु आयुर्बल फांस ॥ सुन्दर तन अरु सुन्दर जग यह सब, सपनेको भास ॥ पूरण पारण जौलौं नहिं पावे, तौलौं भरम विलास ॥ २३ ॥

शब्द २४–भजुरे मन सद्गुरु कृपालको नाम ॥ टे० ॥ नामप्रताप अटलि तिहुँ लोकमें सब विधि मङ्गल धाम ॥ और नहीं कहुँ जाहुँ महा प्रभु, लागि रहौ निशिनाम ॥ नाम रटन जिन जगमें कीना, ते पाये विश्राम ॥ नाम असंग सकल सुखदाता, करि हैं पूरण काम ॥ २४ ॥

शब्द २५–(रागपिस्ता) जायके सनमसे कहियो मेरी बात । बेगि खबरिया लीजै अब जान निकरी

जात । जाय सनमसे ॥ टे० ॥ तेरे बिरहके मारे मोहिं नींद न आये । नयनोंसे झरि लाई जीव चैन नहिं पाये ॥ एक राहके दरियाव बूडा हैं मेरा मन । एक वक्त गश्त आवता जाता विसर तन ॥ सुरता सहेली जायके तूने कहना अहवाल । वेगिसे दर्श दीजै दासु होत है विहाल ॥ सुख निधान समरत्थ सब सुखको बीज है तेरी शरणमें आयके पूरण अजीज है ॥ २९ ॥

शब्द २६–प्रभु विनु दुख नरकको कौनहरे ॥ टे० ॥ जहँ तहँ कष्ट पड़त दासनको, तहँ तहँ साहब होत खरे ॥ गर्व करौ तो भरो ढरकावे, होत अधीन तो फेरि भरे ॥ भाव भक्तके सदा समीपी, दम्भ पाखण्डते रहे परे ॥ दीनदयाल बिरह है जाको, ताको पूरण ध्यान धरे ॥ २६ ॥

शब्द २७--सुनिय दया निधि अरजदासकी । कृपा किये बहु भर्म मिटाये. शंका हरी न गरभ बासकी ॥ बडे भाग मैं आपन जान्यो, आ पर्‍यो प्रभु चरण खासकी ॥ देह अनित्य कहा अब मानो, नाश होयगी रक्त मांसकी ॥ यहि जगतकी मोह कहां बडवाई, कहा कथा जडबाम मासकी ॥ रिद्धि सिद्धि और मान बडाई, मनमें इच्छा नाहिं तासुकी ॥ अमृत भोजन घाप अघाय, पुनिकस इच्छा होत घासकी । यह संशय मेरा मन आई, भेटहु साहब कठिन फांसकी ॥ परखविलासी सब सुखराशी, जानत हो सब जीव परसकी ॥ काह छिपा तुमसे कहे पूरन टेक निबाहो घोर आसकी ॥ २६ ॥

शब्द २८- तुम बिनु समरथ कौन रखवारा ॥ जीवनको दुख मेटनहारा ॥टेक॥ जब तब कष्ट परत

दासनपर,होते विहाल जीव करत पुकारा।।धारि देह तुरत तहां प्रगटत दुख द्वन्द्वज सब दूरी विडारा ॥ कियऊ सुखी निज दासन लागि, काहे उपेक्षा कीन्ह हमारा।।पूत कपूत लाज जनि ताको,शरण परेनिबहि विचारा।।करुणामय कबीर गोसाई, दीनदयाल बिरद अतिधारा।।दीन जानि अब दाया कीजै, आनि गह्यो अब शरण तुम्हारा ॥ जगमें कछु न मोर अधिकाई, साहब शिर सेवकको भारा ॥ पूरणदुखित होय जो समरथ, तौ लाजत सब विरह तुम्हारा ॥ २८ ॥

शब्द २९--यहींते प्रभु नाम दातारा,सेवक आश पुरावनहारा ॥टेक॥हीन दीन अति दीन भयो तब; याचक आयके कीन्ह पुकारा॥जो नहि आश पुराओ ताको, तौ लाजत हैं बिरद तुम्हारा॥हम ऐसे जाचक तुम्हरे घनेरे, मेरे तो एक तुमहिं आधारा। तजव प्रान

जो याचत तुमसों, तब हम जाब कवनके द्वारा। हंसन नायक सब सुखदायक, सुनिकै अरज भली चित धारा॥जो नहिं हमरी बांछा पुराओ, तो हंसि है सकलो संसारा॥ जाके सेवक होत बिकल अति, ताके साहब कस कल धारा॥ पूरण याहि अन्देशा मोहिं, जानि बूझके चहत बिसारा॥ २९॥

शब्द ३०--तुम बिनु अरज करों केहि आगे। स्वर्ग मृत्यु पाताल लोक लौं, असको तो मोहि करत सुभागे॥ टे०॥ करुणामय कबीर कृपानिधि, साधु सन्त गावत सब जागे॥ कि प्रभु अजर अमर अविनाशी, सुमिरत जाहि सकल दुख भागे॥यहिते मोहि भरोसा आवत, औ प्रतीति भई बहु जागे। अबकी बार कम विलम्ब कियो है, यह अचरज मनमें अति लागे॥ तुम सब लायक हो सुखदायक,अचरज करत

मोरे मन पागे ॥ चाहो तो अपनो टेक निवाहो, नहीं तो हम बने हैं नागे ॥ पूरण अचरज करन सुख साई, तुम कीरती मोको हितलागे ॥ इतनी विनव मानहु मोरी, जो मम सरति निशाना दागे॥ ३०

शब्द ३१--कृपादृष्टि कब हेरो गुरुजी कृपादृष्टि कब हेरो ॥ टेक॥ तुम अस समरथ शिरपर राजत, दुख पावत है चेरो॥सब लायक प्रभु हो सुख दायक, मम अपराध घनेरो ॥ क्षमों अपराध दयाके सागर आज परे शरणौं अब तेरो ॥ पूरनकी यह अरज दयानिधि, चरणन देहु बसेरो ॥ ३१ ॥

शब्द ३२- कभी तोभी दरस दिखाओ गुरुजी मोको कभी तोभी ॥टेक॥ चातकवत मैं पंथ निहारों स्वाती ह्वैके जुडाओ ॥ जिमि चकोर चन्दा तनचितवत, और नहीं चित आवे ॥ तुम्हारे दरस बिनु अति

विहाल जिय, मिलत न परख परभावो ॥ पूरणके साहब सुख पाता, विनवत हौं गहिपावो ॥ ३२ ॥

शब्द ३३ -लीला प्रभु तुम्हारी कही न जाय ॥ टेक ॥ राई सों पर्वत करि डारत, पर्वत राई तुल्य दिखाय ॥ सुर नर मुनि सब खोजत हारे, कृपा मात्रमें सो परखाय ॥ जो पद इन्द्रादिक नहिं पावत, सो पद मांहि दास उठाय ॥ साहब कबीर जीवन सुख दाता, पूरण निज पदमाहि रहाय ॥ ३३ ॥

शब्द ३४—मिले हैं दयाल कृतारथ भये हम ॥टेक॥ शब्द लखायें कियो प्रभु मेरे, निज करते डारो उरमाल ॥ धोका द्वन्द सबै मिटि गयऊ, टूटि गयो सब जमको जाल ॥ स्वर्ग मोक्षकी आशा नहिं, पारख पाप भये हैं निहाल ॥ पूरण प्रकाश और नहीं आशा, सर्वत्र दयाल बन्दीछोर कृपाल ॥३४॥

शब्द ३५–मन हर लीन्हो सत्य कबीर ॥ मन० ॥ टेक ॥ लोग कहत जगभई बावरी, कोई न बूझत पीर ॥ गावन नाचन कछुओ नहिं भावे, व्याकुल भयो है शरीर ॥ बहु विचार केतिक समझाऊँ, जियरा धारत न धीर ॥ पूरन सुख प्रभु आप विराजे, मंच कोशके तीर ॥ ३५ ॥

शब्द ३६–मनहर लीन्हों दीन दयाल, जीवनके रक्ष पाल ॥टेक॥ कहौं कहा मोहि कल न परत हैं, अन्तर होत विहाल ॥ सुख सम्पति मोहि कुछवो न सुहावे, लोग कुटुम्ब यमजाल ॥ तनकी सुधि बुधि सबहो बिसरी, जब दीन्ही उरमाल ॥ पूरण सुख जे रह्यो है । कहा करे भर्म काल ॥ ३६ ॥

शब्द ३७- गुनी अगुनी हौं तिहारो प्रभुजी गुनी ॥ टेक ॥ पुत्र अजान करतु है औगुण, तोहु

पिताको प्यारो ॥ जो मम औगुण लखहू साहब, तो सब विधि यह हारो ॥ मिहर करहु जो दास जानिके, तो हम जग निस्तारो ॥ विरदकी लाज राखु प्रभु मोर, पूरणदीन विचारो ॥ ३७ ॥

शब्द ३८--हमारी लाज तुम्हारे हाथ गुरु नाथके नाथ ॥ ह० ॥ टेक ॥ खर्ची खुटगई वर्षा आई, देश बुरो गुजरात ॥ तुम बिन कौन हमारो वाली, जो अब करत सनाथ ॥ तेरे नामको भरोसा मोको, और न कोई संग सगात ॥ लेहु खबरि कबीर कृपानिधि पूरण नावत माथ ॥ ३८ ॥

शब्द ३९--तुम विना कोन हमारो देश, कठिन कालको वेष ॥ टे० ॥ जोरे मिला सो अपनी मरज को, राजा रंक नरेश ॥ हमरे तो तुमहिं अधारा, दोन दयाल धरेश ॥ वेग खबरि लेहु प्रभु आई

उचित भयो जियरेश ॥ निजदास प्रतिपालन करत प्रभु, साहब कबीर दुर्वेश ॥ ३९ ॥

शब्द ४०--गुरु तेरे दर्शनकी बलिहारी ॥गुरु०॥ ॥ टेक ॥ तुम्हरे दरसते कष्ट हरत हैं, करम मिटत है भारी ॥ सन्त स्वरूपी आप कृपानिधि, खोलत भरम किवारी ॥ जिन्हें दरस सुख दियो निधि, पूरण पारख विहारी ॥ ४० ॥

शब्द ४१--तुम विन कौन खबरिया मोरि लेवे ॥ टेक ॥ देश बिराना कोइ नहि आपन कौन सेवकको सेवे ॥ मेरे तो सतगुरु एक अधारा, जो चाहौ सो देवे ॥ यह जग सबही द्वन्द्व पसारा, कैसे नवरिया खेवै ॥ परख विलास कबीर कृपानिधि, पूरण जानत भेवै ॥ ४१ ॥

राग बिलावल

शब्द ४२--तुमहौ सतगुरु दाता मेरे, मैं अधीन

चरननके चेरे ॥ टे० ॥ तुमको माँगे तुमको जाचे निशिदिन रहत चरनके हेरे ॥ चरण छांडि अनते नहिं जावे, जैसे भँवर कमलको हेरे ॥ तुमको ज्ञान ध्यान जप तुमरो, तुम तजि और तन नहिं नेरे ॥ जिमि पतिव्रता पतिव्रत ठाने, आज्ञा जुगवे सांझ सबेरे ॥ हरिहर ब्रह्मा आदिजे देवा, रिद्ध सिद्धि दातार घनेरे । हमको नहीं इन सबते काजा, एक तुम्हारी दयाके मेरे ॥ वेगि खबर लेहु करुणामय, काहेको अन्त लेत प्रभु मेरे ॥ तुमही जानक तुमही प्रेरक, तुम कबीर हो सुखके डेरे ॥ ४२ ॥

शब्द ४३ सबके जनैयाको कहा जनये, जानत सकलो सुख पैये ॥ टेक ॥ तनकी मनकी सकल लोककी, जाननहारसो कहा छिपैये ॥ निर्मल संगति करहु सन्तकी । निर्मल होमके निर्मल समुझैये । जो

जानत तिहुं लोक रैन दिन, ता साहबको कहा जनैये। जाग्रत सुषोप्ति तुरिया, तुरीयातीत नहिं जहँ पैये॥ वाच्य लक्ष मनकी चतुराई, जहाँ नहिं तहँ कैसे कि जैये। बिनु पारख कछु जानि परे नहिं, उनकी कृपा बिनु परख न पैये॥ हैं लाचार सकल विधि साहब; नियम करो ताको चित्त लैये। सुख स्वरूप कबीर कृपानिधि, पूरनको मन ना ममैंये॥ ४३॥

शब्द-४४ वेगिखबरिया प्रभु लीजे दीन दयाला ॥टे०॥ आनि पर्‌यो परदेश में देख्यो यमको जाला॥ इहाँ न कोई आपनो, तुम बिनु रक्षापाला॥ मोहि जो आधार तेरे नामको, हो दासन प्रतिपाला॥ अब कछु विलम्ब न कीजिये, जीव भये हैं विहाला॥ हौं गुणी औगुणी पर तेरे ई कहा वन बाला॥ साहब कबीर सुखके राशी, हौ करुणाके आला॥ सुनियो अरज निज दासकी, अब करिये निहाला॥४४॥

शब्द ४५—अपने हम भोगे निज भोग ॥ टे० ॥ आनि बूझि कैसे कन्त लेहौं, यह नहिं तुमको योग। जगमें दास कहाये तुम्हारे, भाग्यो भवेको रोग। अस समरथके शरन आयके, छुट्यो नहिं ममसोग ॥ साहब कबीर विरदके पालक, हँसन लगौगे लोग ॥४५॥

शब्द ४६—करुणामय नाम तिहारो ॥ टेक ॥ निठुर भंये कछु काज न सरि हैं, आवत बिदरको हारो ॥ जग हँसि है तब कहाँ बड़ाई, ताते वेगि सम्हारो ॥ तुमरी शरण आयऊँ मैं साहब, और न कोई सहारो ॥ साहब कबीर दया अब कीजै, पूरण आइ पुकारो ॥ ४६ ॥

शब्द ४७—दीननके हौ दयाल दया जनपै करो ॥ शरण आयेगी लाज गई, प्रभु अस जनि करो ॥ दशहूँ द्वार विकार धार नौका वहे, सुगति नाहिं ठह-

राय लगन कैसे लगे ॥ पांच तत्त्व गुण तीन साज सब साजिया, याते रहे भुलाय तो फन्दे २ ॥ त्रिगुण मायाके फंद फँदो जिब आइकै, गहु साधनको संग गुरुते लौ लायके ॥ मोक्ष मुक्ति जब होय दया दिल आवई, परिपूरण करि देव महासुख पावई ॥ साहब कबीर बन्दीछोर अरज एक भाखिये । हमसे अधम उधार शरण प्रभु राखिये ॥ ४७ ॥

आराधना (गद्यमय)

हे सत्य पुरुष ! आपको ही सत्तासे सर्व जड चैतन्य स्थित है । सबके जीवन आपही हो । आपके अतिरिक्त जो कुछ गुप्त परगट है, नाशमान, असत्य और अनित्य है, एक आपही सत्य और अविनाशी हो।

हे सत्य सुकृत ! आपके अतिरिक्त जितनी कीर्ति है सब क्षणिक और मायिक है । सब कीर्ति आपके

अतिरिक्त कालने रचे हैं और काल स्वयम् नाश होने-वाला है इसकारण आपकीही कीर्तिसत्य और नित्यहै।

हे आदि अदली! आपका ही नियम सत्य और सुखदायक है, आपका ही नियम सर्वसे पूर्व प्रकाशित होता है। उसीके सहारे सत्य आनन्दकी प्राप्ति होती है।

हे अजर! आपको जरा नहीं है अर्थात् आप जन्म, मरण और उसके मध्यकी बाल किशोर, युवा, प्रौढ और वृद्धावस्थासे परे सदा एक समान ही रहनेवाले हैं।

हे अमर! आप कालके जालसे छुडाकर अपने हंसोंको अमर करते हो। स्वयम् काल भी आपसे भय करता है।

हे अचिन्त! आप शुद्ध आनन्द स्वरूप हो, चिन्ताका आपसे कोई संबन्ध नहीं, तथापि हम जैसे

दीनोंकी सहायता की चिन्ता आप सदाही करते हो।

हे पुरुष ! आप यद्यपि सर्वत्र एक समान स्थित हो तथापि सच्चे सन्त, सच्चे भक्त, सच्चे हंस और सच्चे पारखियोंके हृदयमें आपका विशेष प्रकाश प्रगट होता है।

हे मुनीन्द्र ! सत्य सुकृत स्वरूपसे आप सदाचारका उपदेश देकर मुनीन्द्र स्वरूपसे सत्यासत्य सारासारके मननका मार्ग बताते हो। अनेक प्रकार के मनन करने पर भी जब यह जीव कालके जालसे नहीं निकल सकता, तब आप करुणामय स्वरूपसे पारखका मार्ग बतलानेको टकसारकी प्रवृत्ति कराते हो और जब टकसारद्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है तब आप साक्षात् सत्य कबीरके स्वरूपसे प्रत्यक्ष पारख बतलाकर कालजालसे छुडा देते हो।

हे बन्दीछोर ! आप बारंबार कहते हो पुकार२ कर बतलाते हो कि, तुम्हारी शरण विना हमारा ठिकाना कहीं भी नहीं है, जिस समय आपका शरण प्राप्त होता है उसी समय कालसे तिनका टूट जाता है ऐसी सर्व सुखदाई शरणको भी पाकर हे अधमउधारण ! हम ऐसे अधम हैं कि आपका शरण नहीं पकडते बरन केवल मुखसे बातें बनाकर दम्भसे अपनेको आपका दास कहते कहलाते हैं परन्तु दास१नके नियम तक नहीं जानते ।

हे दीनानाथ ! आपही सबके सहायक हो हम दीन और अनाथ हैं जिनको नाथ करके पकडते हैं वे सभी स्वयम् आपके शरणकी अभिलाषा रखते हैं इस कारण हे प्रभु! आपही सत्यनाथ हो, आपको छोड कहा जाऊं।

हे ज्ञानमय चैतन्य पुरुष ! आपकेही अस्तित्वसे सर्व जड चैतन्य भासमान हो रहा है, सबही कुंजी

आप हीके हाथमें है। काल भी आपके डरसे डरता है। सर्व ब्रह्मांड आपकी ही आज्ञा पालन करते हैं। जब आप कालके प्रभु हो तब हमारा आपके अतिरिक्त दूसरा क्या सहारा है।

हे निर्भय! जबतक आपका सत्य पारख मेरे हृदयमें वास नहीं करता तबतक हम कालके करतूतोंको जान नहीं सकते। तबतक उसे जानकर हम उससे अलग नहीं होते, तबतक आपकी आज्ञाओंका विरोध करते हैं, तभी तक हमको सर्व प्रकार का भय प्राप्त होता है। परन्तु आप दया करोगे तभी सर्व भयसे छुड़ाकर निर्भय कर दोगे।

हे आनन्दसिन्धु! जबतक हमारी ज्ञानशक्तिमें आपके पारखका प्रकाश नहीं होता तबतक हम आपके सत्य स्वरूपको किस प्रकार जानसकें। जब

आप दया करोगे अपने सारासार विचारिणी ज्ञान-शक्तिको प्रेरणाकर मुझे अपने शरणमें लोगे तभी आपकी आज्ञानुसार कालके जालको परखकर आप की शरणसे निराश नहीं होंगे।

हे सत्यसिन्धु! ऐसी कृपा करो जिससे कि, सर्व असत्यसे छूट कर आपको ही प्राप्त हो जाऊँ॥

हे प्रेममयी! अपने कृपाकटाक्ष द्वारा ऐसी दया करो कि, आपके सत्य प्रेममें मग्न हो जाऊँ।

हे अमृतमयी! ऐसी दया करो जिससे आपकी अमृतरूपी आज्ञाओं पर चलनेकी हममें शक्ति हो।

हे शांतिनिकेत! आपकी कृपासे अतिरिक्त हम उस सौभाग्यताको कैसे प्राप्त हो सकेंगे? जो आपके सच्चे दासको प्राप्त होता है! हम कैसे भी हैं परंतु

अब तो आपके कहलाते हैं, यदि हमको सत्य शांति प्रदान न करोगे तो आपकीही बिरद लज्जायमान होगी।

हे पुण्यमयी! हे सच्चे भ्राता! हमको ऐसी सुमति दो जिससे परस्परके विद्वेषको त्यागकर आपकी सेवामें लग जावें।

हे हंसनायक! अपने ऐसे हंसोंकी संगति मुझे प्रदान करो जिससे आपके अतिरिक्त दूसरेकी वासना हृदयसे उठ जावे।

हे सत्य! असत्यसे बचाकर सर्वदा सत्यकी ओर ले जाओ।

अविश्वासके जालसे निकालकर विश्वास और श्रद्धाको प्राप्त करा दो अप्रेमसे बचाकर प्रेममयी देशमें पहुंचादो अपवित्रतासे निकालकर, पवित्रताको दिखादो। स्वेच्छाचारीपनासे निकालकर अत्याचारसे

छुडाकर तुम्हारी इच्छा और आज्ञाकेअधीन करके सदाचारी बनादो।

हे कल्याणमयी ! अकल्याणके मार्गसे हटाकर कल्याणकी राह दिखा दो।

हे सत्यगुरु ! अन्धकारमय देशसे उठाकर प्रकाशमय देशमें डाल दो।

हे सत्याचार्य ! आपके सत्य धर्म सत्यपंथ और आपके स्थापित आचार्यमें ऐसी श्रद्धा दो जिससे अवनतिके भवनसे निकालकर सत्योन्नतिकी सडकपर चढ जाऊँ।

हमलोगोंको ऐसा उत्साह और ऐसी उत्कंठा दो जिससे आपकी अज्ञाओंको पूर्ण करने, आपके स्थापित सत्यधर्मको फैलाने, आपके सत्यराजकी महिमा प्रगट

कर अपनी तथा और दुखियोंकी आत्माको कालजालसे बचानेमें समर्थ होवें। शांतिः शांतिः शांतिः ॥

सत्य कबीरो जयति

इति एकादश विश्राम

कबीरोपासनापद्धति समाप्ता

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
११/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष - ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००३८.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS

